राजवंश : मौखरी और पुष्यभूति

[Rajvansh Maukhari aur Pushyabhuti]

राजवंश : मौखरी और पुष्यभूति

लेखक
प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी
अध्यक्ष,
इतिहास विभाग,
काशी विद्यापीठ, वाराणसी



बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन-भवन, कदमकुआँ, पटना-३

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ निर्माण-योजना के अन्तर्गत भारत सरकार (शिक्षा एवं समाज-कल्याण मंत्रालय) के शत प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या ८५

प्रथम संस्करण नवम्बर १९७३
२०००

मूल्य रु० १४.०० (चौदह रुपए) मात्र

प्रकाशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन-भवन, पटना-८००००३

मुद्रक
श्री माहेश्वरी प्रेस
गोलघर (भाट की गली),
वाराणसी-२२१००१

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है और मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत सरकार विभिन्न राज्य सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ **राजवंश : मौखरी और पुष्यभूति प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी** की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज कल्याण-मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

पटना,
दिनांक २८ नवम्बर, १९७३

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ग्रंथ राजवंश : मौखरी और पुष्यभूति प्रो० भागवती प्रसाद पांथरी की मौलिक रचना है। प्रो० पांथरी विद्वान और अनुभवी लेखक हैं। इन्हें अध्ययन-अध्यापन का व्यापक अनुभव है। आशा है, यह ग्रंथ पाठकों के लिए अवश्य लाभदायक होगा।

इसका मुद्रण-कार्य श्री माहेश्वरी प्रेस, वाराणसी ने किया है। प्रूफ-वाचन का कार्य लेखक ने स्वयं करने की कृपा की है। आवरण चित्र का निर्माण और छपाई की व्यवस्था प्रेस द्वारा ही की गयी है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना,
दिनांक २८ नवम्बर, १९७२

दो शब्द

राजवंश : मौखरी और पुष्यभूति पुस्तक बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी का अवलम्ब पाकर प्रकाश में आयी, इसके लिये मैं अकादमी का आभारी हूँ।

मौखरी-वंश पर अंग्रेजी में तो एक पृथक पुस्तक है, लेकिन हिंदी में शायद ही मौखरी-वंश पर कोई पुस्तक हो। मौखरी-वंश का इतिवृत्त यद्यपि विस्तार से नहीं मिलता, लेकिन जो कुछ और जितना मिलता है उसे तो अवश्य ही सग्रहित किया जाना चाहिए। मौखरी नृपतियों में कुछ ऐसे हुए हैं जिन्होंने 'रत्न' और 'राष्ट्र' की श्लाघनीय और अनुकरणीय सेवाएँ की हैं। बाण का हर्षचरित और कादम्बरी इसके साक्षी हैं। राष्ट्र को दासता में जकड़ने और भारतीय संस्कृति को मर्दित कर म्लान करने की सामर्थ्य रखनेवाले हूणों को गुप्तवंश के एक ही वीर स्कंदगुप्त की भाँति दलित-विगलित कर उनपर विजय पाने में मौखरियों की हस्तिसेना का भी श्रेय रहा है। महान् नाट्यशास्त्री और रचयिता विशाखदत्त बहुत सम्भव मौखरी-दरबार का ही रत्न था। शायद इन्हीं कारणों से मौखरियों का वंश भुवन की ऐसी ख्याति अर्जित कर गया था कि बाण कहता है—"मौखरी-वंश सकल भुवन द्वारा नमस्कृत था"—"सकलभुवन नमस्कृतो मौखरि वंशः" (हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास)।

मौखरी क्षत्रियों की तरह स्थाण्वीश्वर के पुष्यभूतियों का क्षत्रिय वंश भी बहुत यशस्वी हुआ। आर्यावर्त्त अथवा उत्तरी भारत पर सार्वभौम सत्ता स्थापित करनेवाला अंतिम छत्रधारी क्षत्रिय देव हर्षवर्धन पुष्यभूतिवंश के ही गौरव थे। पुष्यभूति-वंश के सभी राजा, जैसा कि बाण के हर्षचरित से प्रकट है, राजधर्म के प्रतिष्ठाता हुए। सभी वर्णों, सम्प्रदायों, जातियों तथा जनता के प्रति अपने दायित्वों को निभाने और राष्ट्र को सुरक्षित तथा समुन्नत करने में पुष्यभूति राजा सदा जागरूक, सचेष्ट और सक्रिय रहनेवाले थे।

महान् पुष्यभूति राजाओं में अंतिम और अद्वितीय महाराजाधिराज हर्षवर्धन हुए, जिन्होंने अपने बलाक्रोश से शत्रुओं के हर्ष को विषाद में बदल दिया था और अपने सुशासन से प्रजा को हर्ष देकर विषाद को विस्मृत करवा दिया था।

देव हर्ष ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र और जनों को अर्पित कर दिया था। वह लेने में नहीं देने में रुचि रखता था, और दान, त्याग तथा दूसरों के यश को बढ़ाना उत्तम धर्म मानता था। अपने ताम्रपत्र लेखों में देव हर्ष ने स्पष्ट घोषित किया है—"दानं फलं परयशःपरिपालनं च'।

सम्राट हर्षवर्धन धर्म के तत्वार्थज्ञाता थे। वे धार्मिक थे, परंतु साम्प्रदायिक नहीं, वे वंश-परंपरा से भट्टारक परमेश्वर शिव के अनुरक्त भक्त और आदित्यदेव अथवा विष्णु के आराधक थे और बौद्धधर्म ग्रहण करने के बाद भी बुद्ध के साथ-साथ अपने वंशानुगत ब्राह्मण, देवी-देवताओं का भी पूजन-अर्चन करते रहे।

ब्राह्मण-श्रमण तथा अन्यान्य सम्प्रदाय, सभी उनकी पूजा और दान के पात्र थे। प्रयाग की महादान भूमि में सभी धर्मों, वर्णों और जातियों तथा दीन-दुखियों को देव हर्ष इस मुक्तहस्तता के साथ दान निछावर किया करते थे कि बाण कहता है, "उनका दान इतना था कि उसके लिए पर्याप्त याचक नहीं मिल पाते थे" (हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास)। निस्सन्देह विश्व के इतिहास में ऐसे दानी व्यक्ति का अन्यत्र दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है।

देवहर्ष के जीवनचरित के अध्ययन से सूर्य के प्रकाश की तरह यह प्रकट है कि सम्राट हर्ष 'देने' को ही पाना मानते थे और 'पर' की सेवा में ही परमेश्वर की सेवा समझते थे। वे महापुरुष थे और महापुरुष अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जिया करते हैं, इसलिए देव हर्ष अपने सुकृत्यों तथा सुकर्मों में आज भी जीवित हैं और आज भी वे भारत की प्रजा के प्राणवन्त मार्गदर्शक हैं और सन्मार्ग पर अग्रसर होने की हमें सदा प्रेरणा देते रहेंगे। हमारे इतिहास, हमारी सभ्यता तथा संस्कृति के आधार-स्तंभ हमारे ये महापुरुष ही हैं जिनके जीवन और चरित्र का इतिहास केवल छात्रों को ही नहीं, समस्त भारतवासियों को अध्ययन-मनन करना चाहिए। हमारे महान् इतिहास के वे ही तो आधार हैं।

देव हर्ष जैसे महामानवों के कृतित्व से अनुप्रेरित होकर ही शायद कार्लाइल ने इतिहास को परिभाषित करते हुए कहा है, "The history of what man has accomplished in the world is at bottom the history of the great man who have worked here" और कजिन के शब्दों में, 'great men sum up and represent humanity'

अंत में मैं इस पुस्तक के प्रकाश में आने के लिए बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, निदेशक डॉ० शिवनन्दन प्रसाद और प्रकाशन-अधिकारी श्री वैजनाथ सिंह 'विनोद' का आभारी हूँ, जिन्होंने इसे यथाशीघ्र प्रकाशित करने में सराहनीय रुचि से योग दिया। साथ ही, श्री माहेश्वरी प्रेस के व्यवस्थापकों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने हर प्रकार से इसे सुंदर और सुरम्य ढंग से प्रस्तुत करने में पूरा-पूरा सहयोग दिया है। यत्र-तत्र थोड़ा-बहुत मुद्रण की जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं, वे द्वितीय संस्करण के अवसर पर दूर कर दी जाएँगी।

दिनांक २३ दिसम्बर, १९७३ भ० प्र० पाथरी

अध्याय-विवरण

परिशिष्ट

अध्याय १

मौखरी राजवंश



महान् गुप्तों के बाद 'धरणिबंध' अश्वमेध पराक्रमी सम्राट समुद्रगुप्त और शकों के यशस्वी विजेता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का महान् गुप्त-साम्राज्य उनके उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त (लगभग ४५५-४६७ ई० सन्) के बाद हूणों के आघातों और प्रत्याघातों के फल से छठी शताब्दी के आरम्भ होते-होते छिन्न-भिन्न हो चला था। स्कन्दगुप्त के निर्बल उत्तराधिकारियों की शक्तिहीनता का लाभ उठा कर तोरमाण और उसके बेटे मिहिरकुल के नेतृत्व में बर्बर हूण पश्चिमोत्तर से मध्यभारत में फैल गये। हूणों का आधिपत्य यद्यपि स्थायी न हो सका, लेकिन गुप्त-साम्राज्य की रीढ़ उन्होंने तोड़ कर रख दी। ह्वेनसांग के अनुसार बालादित्य (द्वितीय), जिसे अभिलेखों के भानुगुप्त से मिलाया जाता है, ने मिहिरकुल को मध्यभारत (ग्वालियर और मालवा) से हटा दिया था और उसके बाद हूणों की शक्ति केवल पश्चिमोत्तर भारत में सीमित रह गयी थी।

भानुगुप्त यद्यपि मध्यभारत से हूणों को हटाने में सफल रहा, लेकिन उनके आक्रमण के आघात से वह अथवा उसके उत्तराधिकारी गुप्त साम्राज्य को टूटने से न रोक सके। लगभग ५२० ई० के आसपास मालवा में यशोधर्मन विष्णुवर्द्धन नाम के एक यशस्वी जनेन्द्र (नायक) का भारत के राजनीतिक रंगमंच पर उदय हुआ जिसकी विजयों की ज्योतिर्मय प्रभा ने गुप्तों के सूर्य को भी निस्तेज कर दिया था।

सम्राट् यशोधर्मन विष्णुवर्द्धन के मन्दसौर (दशपुर) प्रस्तर-स्तम्भलेख[1] के अनुसार (५३२-३३ ई०) उसने उन प्रदेशों पर भी विजय स्थापित की जिन पर गुप्तों ने भी आधिपत्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त नहीं की थी, और जहाँ तक हूण

---

१ अस्योदपानाधिपतेश्चिराय
यशांसि पायात्पयमा विधाता ॥४॥
अथ जयति जनेन्द्र श्री यशोधर्म्म-नामा
प्रमद-वनमिवान्त शत्रु-सैन्य विगाह्य
व्रण—
किसलय भङ्गैर्यो (ऽ)ङ्ग भूषा विधत्ते
तरुण-तरु-लतावद्वीर-कीर्त्तीर्व्विनाम्य ॥५॥
आजौ जितौ विजयते जगतीम्पुनश्च
श्री विष्णुवर्द्धन-नराधिपति स एव ॥६॥

(Select Inscriptions, Dr D C Sarkar, No 53, pp 387-388)

स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणता प्रापित नोत्तमाङ्ग
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्या वहति हिमगिरिर्दुर्ग-शब्दाभिमान (म) ।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट मूर्द्धा
(चू)डा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्च्चित पाद-युग्म ॥६॥
(गा) मेवोन्मातुमूर्द्ध्व विगणयितुमिव ज्योतिषा चक्रवाल
निर्द्देष्टु मार्ग्गमुच्चैर्द्दिव इव (सु) कृतोपार्ज्जिताया स्व-कीर्त्तेः ।
तेनाकल्पान्त-काल्पावधिरवनिभुजा श्री-यशोधर्म्मणाय
स्तम्भ स्तम्भाभिराम स्थिर-भुज-परिघेणोच्छ्रिति नायितो (ऽ) त्र ॥७॥
(श्ला) घ्ये जन्मास्य वश्ये चरितमघहर दृश्यते कान्तमस्मि-
न्धर्म्मस्याय निकेतश्चलति नियमित नामुना लोकवृत्तम ।
इत्युत्कर्षं गुणाना लिखितुमिव यशोधर्म्मणश्चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुचिमान्य पृथिव्या विभाति ॥८॥

(Select Inscriptions, No 54, pp 394-395)

मन्दसौर में प्राप्त तीन प्रस्तर स्तम्भलेखो में से दो—न० 33 व 34 (Fleet, C I, I, Vol III) में यशोधर्मन (यशोधर्मा) का उल्लेख है और न० 35 में यशोधर्मन (जनेन्द्र) तथा विष्णुवर्द्धन नराधिपति, राजाधिराज परमेश्वर नाम से उसकी दिग्विजयों का उल्लेख किया गया है ।

भी प्रविष्ट न हो सके थे। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेन्द्र पर्वत तक और हिमालय से पश्चिम समुद्रतट तक के समस्त प्रदेश पर उसने प्रभुत्व स्थापित किया और हिमगिरि का दुर्ग होने के अभिमान को मिटा कर रख दिया। यशोधर्मन, जिस ने

डा० फ्लीट यशोधर्मन और विष्णुवर्द्धन को दो भिन्न व्यक्ति मानते हैं यद्यपि उनका अनुमान है कि विष्णुवर्द्धन ने कुछ अंश में यशोधर्मन की प्रभुता स्वीकार कर ली थी —"V ishnu Varadhana who, though he had the title of Ra adhira a and Parmeshwara, would appear to have acknowledged the supremacy on the part of vashodharman" (C I I Vol III, p 151 & 155, fn 5)

डा० फ्लीट ने अनुमान किया है कि यशोधर्मन मात्र जनेन्द्र (जनों अथवा जाति का नेता) था, राजाधिराज नहीं। यह असंगत है। मन्दसौर लेख न० 33 (C I I Vol III) की तीसरी पंक्ति में स्पष्ट उल्लेख है कि यशोधर्मा, जो मनु, भरत, अलर्क और मान्धाता जैसे नृपतियों से गुणों में कुछ ही कम था, के नाम के साथ सम्राट् शब्द सुवर्ण में खचित भास्वान मणि की तरह शोभा देता था—

"स श्रेयो-धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क्क (मान्धा) तृ-कल्पे
कल्याणे हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरां भ्राजते यत्र शब्द ।"

(Select Inscriptions No 54, pp 393-394)

राजाधिराज (परमेश्वर) सम्राट का ही पर्याय है। अत यशोधर्मन मात्र जातीय जनेन्द्र नहीं सम्राट था और न० 35 (C I I Vol III) में जिन विष्णुवर्द्धन को राजाधिराज परमेश्वर कहा गया है वह यशोधर्मा ही हैं। वस्तुत जनेन्द्र और नराधिप दोनों का अर्थ राजा ही है।

होरनॅल (Hornle) भी यशोधर्मन और विष्णुवर्द्धन को एक ही व्यक्ति मानते हैं, (JRAS 1903, p 550, 1909, p 93)।

डा० काशी प्रसाद जायसवाल ने भी मन्दसौर लेख के यशोधर्मन और विष्णुवर्द्धन को एक ही व्यक्ति माना है। उनका यह अनुमान असत्य है कि विष्णुवर्द्धन सम्भवतया यशोधर्मन का विरुद था, (मञ्जुश्रीमूलकल्प—The Imperial History of India pp 40-41)।

डा० एलन ने मन्दसौर लेख के यशोधर्मन को 'जनेन्द्र और विष्णुवर्द्धन को नराधिप कहकर उन्हें दो भिन्न व्यक्ति इंगित किया है तथा डा० फ्लीट की तरह यशोधर्मन को विष्णुवर्द्धन का स्वामी बताया है, यद्यपि वह 'जनेन्द्र'

'स्थाणु' (शिव) के सिवा किसी के आगे मस्तक प्रणत् नही किया था, उसने भुजबल से दबकर सुप्रसिद्ध हूण नृपति मिहिरकुल ने उसके पादयुग्मों की, अपने सिर के चूडा-पुष्पो के उपहार से अर्चना की थी (C I I, Vol III, p 147-48)। मन्दसौर के इस विवरण से सुस्पष्ट है कि जिस जनेन्द्र यशोधर्मन ने मिहिरकुल को परास्त कर हूणा की रही-सही शक्ति को नष्ट किया था उसीके अभ्युदय के फलस्वरूप गुप्तो की टूटती हुयी राजनैतिक शक्ति पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो चली थी,

---

से फ्लीट की तरह 'जन अथवा जातीय नेता' (tribal leader) का अर्थ नही स्वीकार करते। डा० एलन के मतानुसार—"no stress need be laid on the titles janendra and Naradhipati, which are synonyms and mean no more or less than king (Catalogue of the coins of the Gupta Dynasties-John Allen, Introduction, pp lvii & lvii)"।

डा० फ्लीट के मत को अमान्य करते हुए, डा० सरकार ने भी यह मत व्यक्त किया है कि यशोधर्मन को 'जनेन्द्र' (tribal ruler) और विष्णुवद्धन को 'नराधिपति' (राजा) कहकर दो भिन्न व्यक्ति मानना सगत नही है क्योकि दोनो शब्दो का अर्थ 'राजा' मे ही है।

डा० फ्लीट के मत का उल्लेख करते हुए, डा० सरकार ने लिखा है—"He thinks that Yasodharman was a जनेन्द्र=tribal ruler, and Vishnuvardhana a नराधिपति=king of men But both the words mean 'a king' and the context shows that they were used for the sake of alliteration It should further be noted that Yasodharman is also called a Samrat (the same as rajadhiraja—paramesvara) in infara, No 54 The passage स एव, Vishnuvardhana's title राजाधिराज—परमेश्वर, and the facts that Mandsor was possibly the capital of Yasodharman and that the engraver was very probably an officer of Yasodharman, go very strongly to suggest that Yasodharman and Vishnuvardhana were names of one and the same king" (select Ins, No 536, fn 2 p 306)

और परिणामतः भारत में तब पुनः अनेक नये प्रादेशिक राज्य उत्पन्न हो चले जिनमें मौखरी और पुष्यभूति राजवंश मुख्य थे।

मौखरी राजवंश

मौखरी राजवंश के इतिहास का वृत्तांत प्रस्तुत करने के लिए हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। कतिपय अभिलेखों, सिक्कों तथा थोड़ा-बहुत साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर हम मौखरियों के इतिहास का एक संक्षिप्त विवरण ही उपस्थित कर सकते हैं। मौखरियों का वृत्तांत नीचे लिखे आधारों पर आधारित है —

(१) सर्ववर्मन की असीरगढ़ मुद्रा—असीरगढ़ बुरहानपुर के उत्तर-पूर्व में ११ मील की दूरी पर एक पार्वत्य दुर्ग है। यह मध्यप्रान्त के निमाड़ जिले में स्थित है। सर्ववर्मन की मुद्रा यहीं प्राप्त हुई थी।

(२) ईश्वरवर्मन का जौनपुर प्रस्तर-अभिलेख—यह अभिलेख जनरल कनिंघम को जौनपुर की जामा मस्जिद के प्रस्तर खण्ड पर मिला था। इस अभिलेख में असीरगढ़ मुद्रा में उल्लिखित ईश्वरवर्मन का उल्लेख है जो सर्ववर्मन का पितामह था।

(३) मौखरियों का थोड़ा-बहुत वृत्तांत हमें परवर्ती गुप्त राजाओं के अभिलेखों से भी प्राप्त होता है। परवर्ती गुप्तवंशी राजा के अफसड़ पाषाण अभिलेख के विवरण से हमें परवर्ती गुप्तों और मौखरियों के सम्बन्ध के विषय में थोड़ा-बहुत जानकारी उपलब्ध होती है। अफसड़, गया जिले के जहानपुर गाँव का ही दूसरा नाम है। अभिलेख में मुख्यतः आदित्यसेन द्वारा विष्णु मंदिर के निर्माण का उल्लेख है तथा आदित्यसेन की माता महादेवी श्रीमती द्वारा एक मठ के निर्माण और उसकी मित्र भार्या श्री कोणदेवी के द्वारा एक सरोवर के निर्माण का उल्लेख है।

(४) ईशानवर्मन का हड़हा पाषाण अभिलेख—यह लेख बाराबंकी के हड़हा ग्राम में प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख में ईशानवर्मन के पुत्र सूर्यवर्मन द्वारा दिये गये दान का उल्लेख है (Ep Ind Vol XIV pp 110–11)।

(५) देव-बरनार्क अभिलेख—देव-बरनार्क अभिलेख परवर्ती गुप्त सम्राट जीवितगुप्त द्वितीय का है। इस अभिलेख में सर्ववर्मन और अवन्तिवर्मन का उल्लेख है जो मौखरि राजा थे। यही एक अभिलेख है जिसमें अवन्तिवर्मन का

उल्लेख मिलता है। बाण के हर्षचरित में भी अवन्तिवर्मन का उल्लेख है जो अंतिम मौखरी राजा ग्रहवर्मन का पिता था (C I I Vol, No 46 p 215)।

देव-बरणार्क अभिलेख में उल्लिखित प्राचीन वार्रणिका ग्राम था जो आरा से दक्षिण-पश्चिम में २५ मील की दूरी पर स्थित है।

(६) मौखरियो के सिक्के—१९०४ में मौखरियो और थानेश्वर के पुष्यभूति राजाओं के कुछ सिक्के फैजाबाद के भिटौरा ग्राम मे प्राप्त हुए थे। इन सिक्कों में ईशानवर्मन, सर्ववर्मन, अवन्तिवर्मन तथा हर्षवर्धन के सिक्के प्राप्त हुए हैं, (J R A S 1906, p p 843–50)।

(७) भोजदेव का वराह ताम्रपत्र—इससे सर्ववर्मन के साम्राज्य-विस्तार पर प्रकाश पडता है।

(८) बाण के हर्षचरित और कादम्बरी में भी मौखरियो का उल्लेख आया है।

(९) बिहार के नालन्दा म ईशानवर्मन और सर्ववर्मन की मुद्रायें प्राप्त हुयी हैं। ईशानवर्मन की मुद्रा पर उसकी प्रशसा में कहा गया है कि वह ससार को आनन्द देने वाला था क्योंकि वह विभिन्न वर्णों और धर्मों के कर्त्तव्यो का ज्ञाता था।

मौखरी कौन थे ?

मौखरी राजाओ के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है कि वे मौखरी नाम से क्यो विश्रुत थे। हरहा-अभिलेख के अनुसार मौखरी अश्वपति के उन सौ पुत्रो की सतान में से थे जो उसने वैवस्वत से प्राप्त किये थे। कतिपय विद्वान् इस वैवस्वत का मनु से मिलाते है, लेकिन महाभारत के कथानक के आधार पर, जैसा प्रोफेसर रायचौधरी ने इगित किया है[1] कि 'हरहा-अभिलेख में उल्लिखित वैवस्वत से अभिप्राय यम से है, जिससे सावित्री को मिले वरदान के फलस्वरूप अश्वपति ने सौ पुत्र प्राप्त किये थे।'

---

1 "The reference is undoubtedly to the hundred *sons that* Asvapati obtained as a boon from Yama on the intercession of his daughter Savitri It is surprising that some writers still identify the 'Vaivasvata' of the Maukhari record with Manu—PHAI, Sixth ed p 603 fn 2

मौखरी वंश मुखर और मौखर (अथवा मौखरी) दोनों नामों से सुप्रसिद्ध था। मौखरियों का उल्लेख करते हुये हर्षचरित में बाण ने उन्हें सकलभुवन द्वारा नमस्कृत मौखरवंशीय कहा है और दूसरे स्थान पर उन्हें मुखरवंशी भी कहा है—

धरणीधराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वर पादन्यास इव सकलभुवन-नमस्कृतो मौखरो वंश —' मानमूर्ध्वमावित पुष्पभूतिमुखरवंशौ"
(हर्षचरित, सम्पादक प० जगन्नाथ पाठक, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४१-२५०)।

बाण के वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि जिस प्रकार पुष्यभूति वंश का संस्थापक अथवा आदिपुरुष पुष्यभूति था, उसी प्रकार मौखरी वंश का आदि पुरुष मुखर या मौखर था जिसके नाम पर उसका वंश मौखरी नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाण ने पुष्यभूति और मुखर वंश की उपमा सोम और सूर्य से दी है। अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि पुष्यभूति राजा आदित्यभक्त थे जिससे प्रकट है कि पुष्यभूति वंश सूर्यवंशी था और मौखरी सोम अथवा चन्द्रवंशीय क्षत्रिय थे। हरहा-अभिलेख से भी मौखरियों का सम्भ्रान्त क्षत्रिय होना सिद्ध है।

कन्नौज के सुप्रसिद्ध मौखरी राजवंश के अलावा इस राजकुल की एक शाखा के तीन अभिलेख (बाढ़व पाषाण-यूप अभिलेख) राजपूताना के कोटा राज्य में प्राप्त हुये हैं। तीसरी शताब्दी ई० सन् (मालव संवत् २९५ = २३८ ई० सन्) के इन अभिलेखों में मौखरियों के एक महासेनापति कुल का उल्लेख है, (Epi Ind Vol XXIII, No 7, pp 42-43 and Select Ins, p 12)। ये मौखरी महासेनापति सम्भवतः पश्चिमी भारत के किसी नराधिप, सम्भवतया उज्जैन के शक-क्षत्रप (Select Ins, p 93, fn 2) के अधीन सामन्त अथवा सैनिक गवर्नर थे—"The Badva Mankharis had the office of general or military governor under some prince of Western India in the third Century A D" (PHAI p 604)।

मौखरी राजकुल की एक अन्य शाखा गया में भी मिली है। गया के मौखरी वैश्य कहे गये हैं। किन्तु डा० जायसवाल इन्हें प्राचीन सुप्रसिद्ध क्षत्रिय-कुल के मौखरियों के वंशज मानते हैं। यदि डा० जायसवाल का मत सही माना जाय तो जैसा कि डा० त्रिपाठी ने मत व्यक्त किया है, "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि समय के परिवर्तन, राजत्व के ह्रास अथवा कर्म के परिवर्तन के फलस्वरूप गया के मौखरी क्षत्रिय से वैश्य हो चले थे (History of Ancient India, p 288)।

मौखरी नाम पाणिनी और पतजलि को भी विदित था जो उनकी प्राचीनता का द्योतक है (Patanjali's Mahabhasya, Vol II, Sutra 107, Keilbern, pp 397-98)।

मौखरियो की प्राचीनता जनरल कनिंघम द्वारा गया मे प्राप्त उस मुहर से भी सिद्ध है जिस पर मौर्ययुगीन ब्राह्मी-लिपि मे 'मोखलीनाम्' (मौखरियो की) अकित है (C I I Vol III, p 14, Introduction)। अत प्रकट है कि मौखरी कुल ई० पू० की तीसरी व चौथी शताब्दी में भी विद्यमान् था। जनरल कनिंघम का अनुमान है कि मौखरी 'मौय' का ही दूसरा रूप है (Arch Sur Ind Rep XV, pp 166,67)। किन्तु यह अनुमान सगत नही है। गया में प्राप्त मौखरी मुहर किसी राजा के नाम पर न होकर पूरी जाति के नाम से प्रेषित हुयी है, जिसमे प्रतीत होता है कि सुदूर प्राचीन काल में मौखरी मूलत एक गणजाति थी।

अध्याय २

हरिवर्मन, आदित्यवर्मन और ईश्वरवर्मन



अभिलेखों के अनुसार महाराज हरिवर्मन मौखरी वंश का संस्थापक था। हरहा-पाषाण अभिलेख में कहा गया है कि महाराज हरिवर्मन पृथ्वी के योगक्षेम के लिये अवतरित हुए थे और वह 'ज्वालामुख' (ज्वाला की तरह मुख वाला) के नाम से प्रसिद्ध था। मौखरी राजा सर्ववर्मन की असीरगढ़ मुद्रा में मौखरियों की वंशावली इस प्रकार दी गयी है—

महाराज हरिवर्मन-पत्नी-भट्टारिका देवी जयस्वामिनी
महाराज आदित्यवर्मन-पत्नी-भट्टारिका देवी हर्षगुप्ता
महाराज ईश्वरवर्मन-पत्नी-भट्टारिका देवी उपगुप्ता
महाराजाधिराज ईशानवर्मन-पत्नी-भट्टारिका महादेवी लक्ष्मीवती
महाराजाधिराज सर्ववर्मन।

असीरगढ़ मुद्रालेख में कहा गया है कि महाराज हरिवर्मन ने अपनी शक्ति व अनुराग की नीति से (प्रताप, अनुराग) अन्य राजाओं को अपने अधीन किया। हरहा अभिलेख में कहा गया है कि उसका सुयश चतुर्दिक फैला हुआ था। असीरगढ़ मुद्रा लेख में हरिवर्मन को चक्रधर भगवान विष्णु के जैसा कहा गया है, जो प्रजा के दुःखों अथवा आर्तों को हरने वाला था और जिसने वर्ण तथा आश्रम धर्म को सुनियोजित किया था। प्रजा को अपने धर्म पर अवस्थित रखना तथा

प्रजा का पालन व रक्षा करना राजा के ये दो मुख्य कर्त्तव्य माने गये हैं। महाभारत के शांतिपर्व मे राजा का यही आदर्श उपस्थित करते हुए कहा गया है कि समस्त प्रजा को अपने धर्मों मे नियत कर के जो राजा शांतचित्त हो प्रजा का पोषण करने मे आनन्द लेता है वह अन्य कर्म करे या न करे इन्द्र की तरह बलवान होकर "ऐन्द्र" कहा जाता है।

> स्वेषु धर्मेष्ववस्थाप्य प्रजा सर्वा महीपति ।
> धर्मेण सर्वकृत्यानि शमनिष्ठानि कारयेत् ॥ १९ ॥
> परिनिष्ठितकार्यस्तु नृपति परिपालनात् ।
> कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिन्द्रो राजन्य उच्यते ॥ २० ॥ अध्याय ६०

कौटिल्य ने भी लोकरक्षा के लिये सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना तथा चारो वर्णो के कर्त्तव्यो का समुचित रूप से सचालित करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य माना है, और इसीलिये उसे 'धर्मप्रवर्त्तक' की सज्ञा प्रदान की है—

> चतुर्वर्णाश्रमस्याय लोकस्याचाररक्षणात् ।
> नश्यता सर्वधर्माणा राजधर्म प्रवर्तक ॥ अधि० ३, अ० १, श्लोक १ ॥

इस वृत्त मे कि हरिवर्मन ने वर्ण-आश्रमो को सुसचालित किया था यह इंगित होता है कि उसके समय में उत्तरी भारत मे सम्भवतया सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था विचलित व विकृत हो चली थी जिस कारण उसे वर्ण व आश्रम धर्म को पुन सुसचालित करना पड़ा। हरहा अभिलेख म भी कहा गया है कि उसने मनु की भाँति धर्म के नियमो को पृथ्वी पर प्रतिष्ठित किया था (Ep Ind Vol, XIV pp 118–19)। अत प्रकट है कि हरिवर्मन एक प्रजापालक और धार्मिक राजा हुआ जिस कारण उसे असीरगढ मुद्रालेख मे चक्रधर की तरह प्रजा का आर्त्त हरण करने वाला घोषित किया गया है।

हरिवर्मन तथा उसके बाद के दो उत्तराधिकारियो का विरद केवल महाराज मिलता है जिससे अनुमान होता है कि ये मौखरी नृपति प्रारम्भ मे सामत राजा थे, और प्रजा का पालन व रक्षण वे अपना परमकर्त्तव्य मानते थे।

आदित्यवर्मन

हरिवर्मन के बाद उसका पुत्र आदित्यवर्मन गद्दी पर बैठा। अपने पिता की तरह आदित्यवर्मन भी ब्राह्मण धर्म और सस्कृति का महान् पोषक था। उसने भी वर्ण और आश्रम धर्म को सुसचालित रखा। हरहा अभिलेख मे कहा गया है कि उसने वर्ण व आश्रम धर्म के नियमन के लिए वैदिक क्रियानुसार नियम निर्धा-

रित कर दिये थे तथा उसने अनेक यज्ञों का भी अनुष्ठान किया था। उसके द्वारा अनुष्ठानित यज्ञों का हरहा अभिलेख में काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है (Ep Ind Vol XIV p 119)।

आदित्यवर्मन की रानी हर्षगुप्ता सम्भवतया मगध के परवर्ती गुप्तमहाराज हर्षगुप्त की बहन थी (C I I Vol III Intr duction p 14)। इस पारिवारिक सम्बन्ध के फल से कन्नौज के मौखरियों और मगध के गुप्तों के बीच कुछ समय के लिये मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये होंगे यह अनुमान किया जा सकता है। किन्तु आगे चलकर इन दोनों राजकुलों के सम्बन्ध बिगड़ चले थे और वैवाहिक सम्बन्धों के होते हुए भी आदित्यवर्मन के बाद मौखरी और परवर्ती गुप्तों के बीच सत्ताक्रम की प्रभुता के लिए भीषण संघर्ष छिड़ गया था। शक्ति के इस मद ने दोनों राजकुलों में परम्परागत पारस्परिक वैमनस्य को उभाड़ दिया था। जनरल कनिंघम ने इंगित किया है कि मौखरी और गुप्तों के बीच का वैमनस्य उनके सिक्कों से भी प्रकट है। मौखरी राजाओं का मुख सिक्कों पर बाईं ओर और गुप्त राजाओं का मुख दाईं ओर दर्शाया गया है (Arch Sur Rep, Vol XVI, p 81)।

ईश्वरवर्मन

आदित्यवर्मन के बाद उसका और भट्टारिका देवी हर्षगुप्ता का पुत्र ईश्वरवर्मन सिंहासन पर बैठा। उसकी रानी उपगुप्ता भी सम्भवतः परवर्ती गुप्त राजवंश की कुमारी थी। यद्यपि मौखरी और गुप्त राजकुलों में वैवाहिक सम्बन्ध था, किन्तु इन सम्बन्धों के बावजूद दोनों कुलों के बीच का वैमनस्य रुक न सका। फलतः ईश्वरवर्मन के बाद राजशक्ति के लिए दोनों कुलों में सर्वनाशक संघर्ष छिड़ गया था।

ईश्वरवर्मन के जौनपुर पाषाणाभिलेख में मौखरियों को मुखर-वंश का कहा गया है (C I I Vol III No 51, p 230)। बाण ने जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं मौखरियों को मौखर व मुखर दोनों नामों से सम्बोधित किया है।

जौनपुर पाषाणलेख खण्डित अवस्था में मिला है। किन्तु उससे जो विवरण प्राप्त होता है, उससे प्रकट है कि विजयों द्वारा मौखरी शब्द का प्रसार प्रथमतः ईश्वरवर्मन के समय में आरम्भ हुआ। अभिलेख की चौथी, पाँचवीं व छठी पंक्ति में उल्लेख है कि "ईश्वरवर्मन ने क्रूर लोगों के शासन के कारण पैदा हुए उपद्रवों से लोकानन्द को जो क्षति पहुँची थी उसे अपनी करुणा व अनुग्रह से शान्त किया और शत्रु राजाओं के लिए सिंहरूप ईश्वरवर्मन तब सिंहासन पर अधिष्ठित हुआ।"

आगे अभिलेख की सातवीं पंक्ति में धार के राजा, आन्ध्र के राजा व रैवतक (सौराष्ट्र) के राजा के साथ हुए संघर्षों का उल्लेख है। यद्यपि संघर्ष का विवरण संपूर्ण नहीं है, खण्डित है, लेकिन उसमें इतना अवश्य मालूम हो जाता है कि धार, आन्ध्र, व सौराष्ट्र के लोगों के आक्रमणों को ईश्वरवर्मन ने विफल कर दिया था। इस विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अभिलेख में उल्लिखित क्रूर लोगों के आगमन से उत्पन्न उपद्रव और लोकानन्द को विचलित करने वाले तत्व ये शत्रु राजा ही थे, जिनके लिए ईश्वरवर्मन सिंहसम साबित हुआ।

हरहा अभिलेख (Ep Ind Vol XIV, pp 199–200) के विवरणानुसार ईश्वरवर्मन अपने पूर्वजों की भांति ही ब्राह्मण धर्म का परमपोषक और धर्मनिष्ठ व्यक्ति था। उसने अनेक यज्ञ संपादित किए थे। धार्मिक होने के साथ ही वह एक महान् पराक्रमी दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और विदग्ध बुद्धि का व्यक्ति भी था। यह सब होते हुए भी अपनी शक्ति व समृद्धि का उसे अहंकार अथवा अभिमान न था। वह एक विनम्र, सत्यशील व संयमी व्यक्ति था और निजी जीवन में श्रुतिपथ का अनुगमन करने वाला था। राजकीय कर्तव्यों के पालन में सोत्साह बिना थके पराक्रमरत् रहना उसका सर्वोत्तम गुण था।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने आदर्श राजा के इसी रूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि प्रजा का हित-सुख ही राजा का हित-सुख है—

'प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्'

(अधिकरण १ अध्याय १८)

महाभारत में भी राजधर्म का मूल 'उत्थान' अथवा उद्यम घोषित किया गया है—

उत्थानं हि नरेन्द्राणां बृहस्पतिरभाषत।
राजधर्मस्य तन्मूलं ॥१३॥

(शांतिपर्व, अध्याय ५८)

अतः प्रकट है कि मौखरी नृपति राजधर्म के शास्त्र सम्मत मार्ग पर चलने वाले थे और अहंकार रहित होकर प्रजा का पालन एवं रक्षण अपना परम कर्त्तव्य मानते थे।

अध्याय ३

महाराजाधिराज ईशानवर्मन और उसके उत्तराधिकारी



ईश्वरवर्मन के बाद उसका और भट्टारिका देवी उपगुप्ता का पुत्र ईशानवर्मन गद्दी पर बैठा। ईशानवर्मन की रानी भट्टारिका महादेवी लक्ष्मीवती थी। ईशानवर्मन की माता परवर्ती गुप्तवंश की राजकुमारी थी और उसकी दादी भी गुप्तकुल की ही कुमारी थी, परन्तु इन वैवाहिक सम्बन्धों के बावजूद मौखरी और गुप्तकुल में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित न हो सका। ईशानवर्मन के समय में दोनो राजवंशों के बीच राजशक्ति के लिए घातक संघर्ष तीव्रता पकड़ चुका था।

हरहा अभिलेख के विवरण में कहा गया है कि ईशानवर्मन के उदय होने पर समाज में फैली अव्यवस्था इस प्रकार दूर हो गयी जिस तरह सूर्य की किरणों के उदय होने पर प्रातःकाल का कुहरा छट जाता है। उसने टूटी नाव की नाईं पृथ्वी को अपने गुणों की सैकडों रस्सियों से बांध कर उसे सुरक्षित कर दिया। (Ep Ind Vol XIV, pp 115–20)। इस उद्धरण से प्रकट है कि ईशानवर्मन जब सिंहासनासीन हुआ उस समय मौखरी साम्राज्य राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल से अव्यवस्थित था, परन्तु ईशानवर्मन ने अपनी सुनीति, बल और विक्रम से साम्राज्य की अव्यवस्था और विचलित श्री को पुनः प्रतिष्ठित और प्रतिस्थापित कर दिया।

हरहा अभिलेख में कहा गया है कि 'ईशानवर्मन ने हजारों हाथियों की सेना वाले आन्ध्रपति को पराभूत कर विजित किया। उसने युद्ध में शूलिकों को हराया जिनके पास अनगिनत अश्वों की सेना थी, उसने समुद्रतटीय गौड़ों को दबाया और उन्हें अपनी सीमाओं में रहने को विवश किया।' इस प्रकार इन राजाओं को हरा कर जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तो अनेक सामंत राजाओं ने उसे मस्तक नवाया। हरहा-अभिलेख के शब्दों में वह राजाओं के मण्डल में चन्द्र की द्युति के समान भासमान था।

'राजराजकमण्डलाम्बरशशी'

इन विजयों के फलस्वरूप ही ईशानवर्मन अपने वंश का प्रथम स्वतंत्र महाराजाधिराज हुआ। असीरगढ़ ताम्रमुद्रा में ईशानवर्मन के लिए ही प्रथमतः महाराजधिराज का उपाधि प्रयुक्त हुयी है। ईशानवर्मन और उसके उत्तराधिकारियों की मर्धन्य स्थिति का हर्षचरित भी साक्ष्य उपस्थित करता है।

मौखरियों का उल्लेख करते हुए हर्षचरित में बाण ने कहा है कि—मौखरी क्षत्रियों का वंश शिवजी के चरणन्यास की भांति सब राजाओं का सिरमौर और समस्त भुवन के जनों द्वारा नमस्कृत अथवा समादरित है—

'धरणीधराणां च मूर्ध्नि स्थितो, माहेश्वरः पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरो वंशः।' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४१)।

निःसंदेह मौखरी वंश की सम्प्रभुता का युग ईशानवर्मन के द्वारा सिंहासनारोहण के साथ आन्ध्र, शूलिक और गौड़ों पर विजय के साथ प्रारम्भ होता है।

आन्ध्र

ईश्वरवर्मन के जौनपुर पाषाण-अभिलेख में भी आन्ध्रों पर विजय का उल्लेख है (C. I. I., Vol. III, p. 230 Political History of Ancient India, H. Ray Chaudhari, p. 604 fn. 4)। मालूम होता है कि ईश्वरवर्मन के बाद आंध्रों ने पुनः अपनी शक्ति को संगठित कर लिया था और वे अपने विजेता मौखरियों के प्रति फिर से विद्रोही हो चले थे। यही कारण था कि ईशानवर्मन को दुबारा उनके विरुद्ध अभियान करना पड़ा। हरहा अभिलेख में स्पष्ट उल्लेख है कि ईशानवर्मन ने आन्ध्रों की सहस्रों हस्तियों की तीन पंक्ति वाली विशाल सेना का चूर्ण विचूर्ण कर डाला था। हरहा-अभिलेख में ईशानवर्मन की तिथि मालव संवत् ६११ अर्थात् ई० सन् ५५४ दी गयी है। अतः

प्रकट है कि ईशानवर्मन ने इस तिथि से पूर्व आन्ध्रों, शूलिकों तथा गौडों पर विजय स्थापित कर ली थी (Ep Ind Vol XIV, P 110–20)। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार आन्ध्र राजा सम्भवतया विष्णुकुंडिन वंश का माधववर्मन (जनाश्रय प्रथम) था जिस ने पोलमुरु-पत्रों (प्लेट) के लेखानुसार पूर्वीय प्रदेशों की विजय के लिये गोदावरी को पार किया और ग्यारह अश्वमेध यज्ञ अनुष्ठानित किये थे (Political History of Ancient India p 602)।

शूलिक

हरहा अभिलेख में असंख्य अश्वों की सेना वाले शूलिकों का कोई परिचयात्मक विवरण नहीं दिया गया है। अतः शूलिकों के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से यह कहना कि वे कौन थे कठिन है। डा० फ्लीट का अनुमान है कि शूलिक बृहत्संहिता में उल्लेखित शूलिक हैं जो उत्तर-पश्चिम (गान्धार आदि प्रदेश) में रहते थे (PHAI p 602)।

डा० मजुमदार ने भी डा० फ्लीट के मत का समर्थन किया है (I A 1897, p 127)। डा० रायचौधरी के अनुसार सम्भवतया शूलिक चालुक्य थे। महाकूट स्तम्भ-लेख में चालुक्यों के लिए 'चालिक्य' नाम आया है। इस लेख में उल्लेख है कि छठी शताब्दी ई० सन् में चालिक्य वंश के कीर्तिवर्मन प्रथम ने वंग, अंग और मगध आदि पर विजय स्थापित की थी और उसके पिता ने अश्वमेध यज्ञ किया था। सम्भवतया यज्ञ के अश्व की रक्षा का भार कीर्तिवर्मन को सौंपा गया था। गुजरात में प्राप्त अभिलेखों में चालुक्यों का सोलकी व सोलंकी नाम से भी उल्लेख मिलता है। अतः रायचौधरी का अनुमान है कि 'शूलिक' भी चालुक्यों के लिए किसी बोली का रूप हो सकता है।[1]

---

1 "The Sulikas were probably the Chalukyas In the Mahakuta pillar Inscription the name appears as Chalikya In the Gujarat records we find the forms Solki and Solanki Sulika may have been another dialectic variant The Mahakuta Pillar Inscription tells us that in the sixth century A D Kirtivarman I of 'Chalikva' dynaty gained victories over the kings of Vanga, Anga, Magadha etc" (Political History of Ancient India pp 652-553)

हरहा अभिलेख में शूलिकों को अन्ध्रा व गौडा के बीच में रखा गया है। यह भौगोलिक दृष्टि से उनकी स्थिति को इंगित करता है। अतः यह भी अनुमान किया जा सकता है कि शूलिकों का राज्य आन्ध्रों व गौडों के बीच कहीं स्थित था। बृहत्संहिता में शूलिकों का कलिंग, वंग, विदर्भ, आन्ध्र और चेदि के साथ उल्लेख हुआ है (IA Vol XXII, 1893, pp 185-86, Ep Ind Vol XIV, p 112)। मार्कण्डेय पुराण में भी बृहत्संहिता की तरह शूलिकों को दक्षिणपूर्वी प्रदेशों के साथ रखा गया है (Ep Ind Vol XIV, p 112)। इन साक्ष्यों से अनुमान होता है कि पूरब व दक्षिण के अभियान के समय गौड व आन्ध्रों के साथ-साथ ईशानवर्मन ने शूलिकों पर भी आक्रमण किया था। तलचुर और पुरी दान लेखों में शूलिकों का उल्लेख है जो उड़ीसा में राज्य करते थे (Ep Ind Vol XII p 158)। इससे भी प्रकट है कि शूलिक गौड व आन्ध्रा के पड़ोसी थे।[1]

शूलिक वंश के राजा कुलस्तम्भ के अभिलेख से विदित होता है कि शूलिक शिव अथवा हर के भक्त थे (J R A S, 1912, p 128)। इस लेख में शिव की स्तुति के साथ कुलस्तम्भ और उसके पूर्वजों का 'शूलिक वंश के भूषण' विरद के साथ उल्लेख हुआ है। शूल अथवा त्रिशूल शिव का पवित्र अस्त्र अथवा चिह्न है। प्राचीन भारतीय राजवंश अपना उद्भव देवी-देवताओं से सम्बन्धित करते रहे हैं। उदाहरण के लिए चालुक्य वंश का आदि पुरुष ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न हुआ था इस कारण वे चालुक्य कहलाये (The Dynastic History of India-Ray, Vol II, p 433, pt 1)। सम्भव है शूलिक अपना उद्भव शिव के शक्तिशाली त्रिशूल से मानते रहे हों, जिस कारण उन्होंने अपने राजवंश को शूलिक नाम दिया।

गौड :

गौडा को पराजित कर ईश्वरवर्मन ने उन्हें समुद्राश्रयी कर दिया था, समुद्राश्रयी अर्थात् समुद्रतटीय प्रदेशों में निवास हेतु परिसिमित कर दिया था। इस प्रकार हरहा लेख में उल्लेखित तिथि ई० सन् ५५४ से कुछ समय पूर्व गौड

---

१ तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने भी शूलिकों को दक्षिण का इंगित किया है (Indian Antiquary IV, 364, Political History of Ancient India, p 602 fn 5)।

राजाओं को बुरी तरह हरा कर ईशानवर्मन ने उनका राज्य अपने अधिकार में लेकर उन्हें समुद्र का आश्रय लेने को विवश कर दिया था। डा० गांगुली के अनुसार गौड़ से अभिप्राय बंगाल के वर्तमान राजशाही प्रदेश से है जहा के राजा को पराजित होने के बाद दक्षिणी बंगाल के समुद्रतटीय प्रदेश में चला जाना पड़ा था (J B O R S, 1933, p 423)।

इस तरह छठी शताब्दी के मध्य में ईशानवर्मन की विजयों के फलस्वरूप मौखरी राज्य की सीमाएँ उत्तर प्रदेश में कन्नौज से लेकर बंगाल में राजशाही तक प्रसारित हो गयी थीं। इससे यह भी अनुमान होता है कि बीच में स्थित मगध का प्रदेश भी सम्भवतया ईशानवर्मन के आधिपत्य में चला आता था। ईशानवर्मन की एक मुहर भी नालन्दा में प्राप्त हुयी है (The Kaveri, the Maukhari and the Sangam Age, p 86)।

हूण और मौखरी

आदित्यसेन के अफसड़ पाषाण अभिलेख में मौखरी सेना द्वारा हूण-सैन्य को पराजित कर विघटित करने का उल्लेख आया है (C I I Vol III, p 206)। मौखरी सैन्य ने किस राजा के नेतृत्व में हूणों की सेना को पराजित किया था इसका अभिलेख में कोई उल्लेख नहीं है। डा० जायसवाल का अनुमान है कि मौखरी प्रारम्भ में मन्दसौर के विजेता राजा यशोवर्मन के सामन्त थे। अत यशोवर्मन ने जब हूणों के विरुद्ध अभियान किया तो शायद सामन्त रूप में ईशानवर्मन भी अपनी सेना लेकर यशोवर्मन के साथ हो गया था। हूणों के साथ के युद्ध में मौखरी-सेना ने अपने प्रबल आक्रमण द्वारा हूण-सैन्य को विगलित व विघटित कर दिया था। किन्तु यशोधर्मन के भारत के राजनैतिक रंगमंच से विदा हो जाने के बाद (लगभग ई० सन् ५३२-३३ या ५४३-४४), ईशानवर्मन ने उत्तरी भारत में अपनी स्वतन्त्र सम्प्रभुता स्थापित कर ली थी (An Imperial History of India, p 57)।

जौनपुर पाषाण-अभिलेख में मौखरी सैन्य का हिमगिरि तक (हिमालय) पहुँचने का उल्लेख है (C I I Vol III, p 230)। डा० बसाक (History of North-West India, p 109) भी इस लेख के आधार पर यह मानते हैं कि मौखरी सेना हिमालय के प्रदेश तक पहुँच गयी थी, लेकिन हिमालय का यह अभियान किस मौखरी राजा के नेतृत्व में हुआ, यह पता नहीं चलता क्योंकि अभिलेख खण्डित है। इस अभियान का नेता ईश्वरवर्मन अथवा उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी ईशानवर्मन हो सकता है। ईशानवर्मन की विजयों को देखते हुए यह

अनुमान किया जा सकता है कि हिम-प्रदेश पर पहुँचने वाला मौखरी विजेता ईशान-वर्मन ही रहा होगा।

ईशानवर्मन का अन्त

परवर्ती गुप्त राजा आदित्यसेन के अपसद पाषाण-अभिलेख में गुप्त राजा कुमारगुप्त द्वारा ईशानवर्मन की पराजय का उल्लेख है। इस अभिलेख में कहा गया है कि कार्तिकेय-सम कुमारगुप्त ने राजाओं में चन्द्रमा के समान क्षितिज-पति ईशानवर्मन की सैन्य रूपी दुग्ध-सिन्धु को लक्ष्मी-सम्प्राप्ति हेतु इस तरह विलोल दिया था जिस तरह मन्दार पर्वत ने क्षीर-समुद्र को विलोया था।[1] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि ईशानवर्मन को कुमारगुप्त के हाथों बहुत भारी पराजय उठानी पड़ी थी। सम्भवतया महान् मौखरी नृपति ईशानवर्मन को यह पराजय वृद्धावस्था में शासन के अन्तिम काल में उठानी पड़ी होगी।

हरहा अभिलेख में ईशानवर्मन को पृथ्वी का विजेता कहा गया है जिसने धर्म के प्रकाश द्वारा कलि के अन्धकार से ग्रसित पृथ्वी के मुख को समुज्ज्वल कर दिया था। हरहा अभिलेख से यह भी प्रकट है कि वह ब्राह्मण धर्म का बहुत बड़ा पोषक और संरक्षक था। हरहा-अभिलेख में कहा गया है कि उसके द्वारा पृथ्वी तथा तीनों वेद पुनर्जीवित कर दिये गये थे। अत: इस अभिलेख में उसे प्रात: उदित होने वाले बालरवि के समान कहा गया है और महानता तथा श्रेष्ठता का उसे निकेतन उद्घोषित किया गया है (Ep. Indi, Vol XIV, p. 119)।

मौखरी सर्ववर्मन

ईशानवर्मन के बाद उसका और भट्टारिका महादेवी लक्ष्मीवती का पुत्र सर्ववर्मन सिंहासन पर आया। असीरगढ़ मुद्रा में उसे महाराजाधिराज श्री सर्ववर्मन मौखरी कहा गया है (C. II, Vol. III, p. 220)।

---

१ " the illustrious Kumaragupta, of renowned strength, a leader in battle, just as Karttikeya who rides upon the peacock,—by whom, playing the part of (the mountain) Mandara, there was quickly churned that formidable milk-ocean, the cause of the attainment of fortune, which was the army of the glorious Isanavarman a very moon among kings " (C. I. I. Vol. III, p. 206)

हरहा-अभिलेख में ईशानवर्मन के दूसरे पुत्र सूर्यवर्मन का भी उल्लेख है जिसने शिव (त्र्यम्बक) के एक पुरातन जीर्ण मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया था (Ep Ind , Vol XIV, p 120)। इस उल्लेख के अतिरिक्त सूर्यवर्मन के सम्बन्ध में अन्य कोई दूसरा लेख नहीं मिला है और न उसके नाम के कोई सिक्के ही मिले हैं। सम्भवतया सूर्यवर्मन अपने पिता के समय में ही कालकवलित हो गया था जिस कारण आगे उसका कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। प्रोफेसर हेमचन्द्र रायचौधरी ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि महाशिवगुप्त के सिरपुर पाषाण अभिलेख में उल्लिखित वर्मन वंश का सूर्यवर्मन शायद ईशानवर्मन का पुत्र था जिसका मगध पर भी आधिपत्य रहा। इस अनुमान के आधार पर निश्चय के साथ यह कहा जा सकता है कि कुछ समय के लिए मगध का आधिपत्य परवर्ती गुप्तों के हाथ से निकल कर मौखरियों के हाथों में चला गया था।[१] किन्तु सिरपुर अभिलेख में उल्लिखित सूर्यवर्मन आठवीं-नवीं शताब्दी का व्यक्ति था और इसलिये उसे ईशानवर्मन के पुत्र सूर्यवर्मन से एकीकृत नहीं किया जा सकता। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सिरपुर वाला सूर्यवर्मन वर्मन वंश का कहा गया है, मौखरी वंश का नहीं।

आदित्यसेन के अफसड़ अभिलेख में कुमारगुप्त के उत्तराधिकारी दामोदरगुप्त और मौखरी राजा के बीच हुए भीषण युद्ध का उल्लेख है। अभिलेख में मौखरी राजा का नाम उल्लिखित नहीं है। किन्तु अनुमानतः दामोदरगुप्त का जिस मौखरी राजा के साथ युद्ध हुआ वह सम्भवतया ईशानवर्मन का उत्तराधिकारी सर्ववर्मन था। अफसड़ अभिलेख में कहा गया है कि दामोदरगुप्त ने मौखरियों के हाथियों की उस शक्तिशाली सेना का उच्छेद कर डाला जिसने युद्ध में हूणों की सेना को विध्वस्त कर दिया था। किन्तु वह स्वयं युद्धक्षेत्र में मूर्च्छित होकर स्वर्ग सिधार गया (C I I Vol III, p 206)।

---

१ A Suryavarman is described in the Sirpur stone inscription of Mahasiva Gupta as "born in the unblemished family of the Varmans, great on account of their adhipatya (supremacy) over Magadha " If this Suryavarman be identical with, or a descendant of, Suryavarman, the son of Isanvarman, then it is certain that for a time the supremacy of Magadha passed from the hands of the Guptas to that of the Maukharis (Political History of Ancient India, H C Ray Choudhary, p 605, fn 5)

इस उल्लेख से प्रकट है कि मौखरियो और परवर्ती गुप्तो के बीच हुये इस युद्ध में सर्ववर्मन पराजित हुआ लेकिन विजयी होने पर भी गुप्त राजा दामोदरगुप्त सम्भवतया माघातिक घाव लगने के कारण युद्धक्षेत्र में ही चल बसा था। लेकिन कतिपय विद्वानो का यह अनुमान करना कि चूँकि दामोदरगुप्त की युद्धक्षेत्र में मृत्यु हो गयी थी, इसलिए वह युद्ध में विजय नही पा सका था—सगत नही है।[1]

महाराजाधिराज सर्ववर्मन शिव अथवा महेश्वर का परम उपासक था। भोजदेव के वाराह ताम्रपत्र में सर्ववर्मन द्वारा कान्यकुब्ज भुक्ती के उदुम्बर विषय में ब्राह्मणो को अग्रहार गाँव दान देने का उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज प्रदेश मौखरियो के आधिपत्य मे था और सर्ववर्मन के समय में कन्नौज मौखरियो की मुख्य राजनगरी बन चुकी थी। इस समय से लेकर उसके अंतिम उत्तराधिकारी ग्रहवर्मन के समय तक कन्नौज मौखरियो की राजधानी बनी रही।

अंतिम मौखरी

सर्ववर्मन के बाद अवंतिवर्मन कन्नौज के सिंहासन पर आसीन हुआ। देववरणार्क-अभिलेख मे सर्ववर्मन के बाद अवंतिवर्मन का उल्लेख है। डा० फ्लीट के अनुसार इस अभिलेख का सर्ववर्मन, असीरगढ ताम्रमुहर का सर्ववर्मन मौखरी है और अवंतिवर्मन बाण के हर्षचरित मे उल्लेखित अंतिम मौखरी महाराजाधिराज ग्रहवर्मन का पिता है (C I I Vol III, p 215)। किन्तु सर्ववर्मन और अवंतिवर्मन के बीच क्या कौटुम्बिक सम्बन्ध था यह ठीक से ज्ञात नही है। कतिपय विद्वान् अवंतिवर्मन को अपसद-अभिलेख में उल्लेखित सुस्थितवर्मन का पुत्र और सर्ववर्मन का पौत्र मानते हैं (हर्ष—डॉ० आर० के मुकर्जी, पृ० ५५ अंग्रेजी), (H C Thomas & Cowell, Intro C I I Vol III p 15)।

किन्तु अवन्तिवर्मन के नालन्दा मुद्रा लेख से प्रकट है कि अवन्तिवर्मन, सर्ववर्मन और महादेवी इन्द्र भट्टारिका का पुत्र था और शिवभक्त (परममाहेश्वर) था।

अपसद-अभिलेख में उल्लेखित सुस्थितवर्मन जिसे परवर्ती गुप्त राजा महासेन गुप्त ने युद्ध में पराजित किया था, लौहित्य के प्रदेश से सम्बन्धित था। इससे यह अनुमान होता है कि यह सुस्थितवर्मन कामरूप अथवा आसाम का राजा था।

१　इस सन्दर्भ में देखिए—History of Kannauja Dr R S Tripathi, pp 44-45, History of North Eastern India, Dr R G Basak, p 116, J B O R S, 1933, p 404

विशानपुर ताम्रपत्र, नालन्द में प्राप्त मुहर, और बाण के हर्षचरित में कामरूप (आसाम) के राजा सुस्थितवर्मन का उल्लेख है जो महाराज हर्ष के मित्र कामरूप के राजा भास्करवर्मन का पिता था (Ep Ind Vol XII, pp 74-77, हर्षचरित Thomas & Cowell, p 270, J B O R S Vol V, pp 302-04)। अतः यह स्वीकार करना कठिन है कि अपसद-अभिलेख का सुस्थितवर्मन मौखरी वंश का था और अवन्तिवर्मन उसका पुत्र था।

सर्ववर्मन के जो सिक्के मिले हैं उनकी तिथि ई० सन् ५५८ से ५५६ तक मिलती है और अवन्तिवर्मन के सिक्कों में जो तिथि मिलती है वह ५६६-६७ से ५७० ई० सन् तक मिलती है। सिक्कों में अंकित तिथियों से यह प्रकट है कि अवन्तिवर्मन सर्ववर्मन के बाद ही मौखरी-सिंहासन पर आया था। यद्यपि यह कहना कठिन है कि वह सर्ववर्मन का पुत्र था अथवा अनुज (History of North Eastern India, R G Basak, p 170)। डॉ० त्रिपाठी अवन्तिवर्मन को सर्ववर्मन का पुत्र मानते हैं।

अवन्तिवर्मन अपने वंश का अन्तिम प्रतापी राजा हुआ, जैसा कि हर्षचरित में बाण के इस उल्लेख से प्रकट है "शिव जी के चरणन्यास की भाँति और सब लोगों द्वारा नमस्कृत मौखरी क्षत्रियों का वंश है और उसमें भी सबसे बड़े अवन्तिवर्मन हैं—

> 'सर्वाी-धराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वरः पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरो वंशः। तत्रापि तिलकभूतस्यावन्तिवर्मणः' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृष्ठ—२४१)।

मौखरी राजा विद्यानुरागी और विद्वानों के आश्रयदाता थे। हरहा-अभिलेख में सूर्यवर्मन को शास्त्रों का ज्ञाता और कला मर्मज्ञ कहा गया है। कादम्बरी में कहा गया है कि बाण के आचार्य (भत्सु, भर्त्सु, भर्व) का मुकुटधारी मौखरी अर्चन अथवा पूजन किया करते थे (नमामिभर्त्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्—पूर्व भाग, श्लोक ४)। मौखरी परम्परा में अवन्तिवर्मन भी एक विद्यानुरागी राजा हुआ। मुद्राराक्षस के महान् प्रणेता विशाखदत्त का अवन्तिवर्मन ही संभवतया संरक्षक या आश्रयदाता था (J R A S 1900, pp 535-36)।

ग्रहवर्मन—अन्तिम मौखरी राजा

हर्षचरित के विवरणानुसार अवन्तिवर्मन के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मन कन्नौज के सिंहासन पर बैठा। उसने थानेश्वर के पुष्यभूतिवंश के महाराज प्रभाकर-

वर्धन की कन्या राज्यश्री से विवाह किया। यह विवाह-सम्बन्ध ग्रहवर्मन ने स्वयं स्थापित किया था। इससे प्रकट है कि इस प्रणय सम्बन्ध से पूर्व उसके पिता दिवंगत हो चुके थे, जिस कारण ग्रहवर्मन को स्वयं ही महाराज प्रभाकरवर्धन के पास अपना मुख्य दूत भेज कर राज्यश्री के हाथ के लिये प्रार्थना करनी पड़ी थी। इस प्रसंग का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि प्रभाकरवर्धन ने अपनी रानी को ग्रहवर्मन का परिचय देते हुये कहा था—श्रेष्ठ अवन्तिवर्मा का पुत्र ग्रहवर्मा पृथ्वी पर उगे सूर्य के समान है। वह अपने पिता से गुणों में न्यून नहीं। उसने राज्यश्री के लिये प्रार्थना की है—

> "तिलकभूतस्यावन्तिवर्मण सूनुरग्रजो ग्रहवर्मा नाम ग्रहपतिरिव गा गत पितुरन्यूनो गुणैरेना प्रार्थयते" (चतुर्थ उच्छ्वास—पृ० २४१)।

आगे बाण ने लिखा है कि रानी की स्वीकृति के साथ प्रभाकरवर्धन ने तब शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मन के द्वारा विवाह की प्रार्थना के हेतु भेजे गये प्रधान दूत व पुरुष के हाथ पर समस्त राजकुल की उपस्थिति में कन्यादान का जल गिराया—

> "शोभने च दिवसे ग्रहवर्मणा कन्या प्रार्थयितु प्रेषितस्य पूर्वागतस्यैव प्रधान-दूतपुरुषस्य करे सर्वराजकुलसमक्ष दुहितृदानजलमपातयत्" (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४२)।

इस विवाह सम्बन्ध ने दो महान् वंशो को एक सूत्र में ग्रथित कर उन्हें सोम (चन्द्र) और सूर्य (वंश) की भाँति तेजोमय और सकल जगत द्वारा वन्दनीय बना दिया था। इस प्रणय सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए महाराज प्रभाकरवर्धन के गम्भीर नामक प्रणयी विद्वान् ब्राह्मण ने इसीलिये ग्रहवमन से कहा था—'हे पुत्र राज्यश्री के लिये तुम्हे प्राप्त कर पुष्यभूति और मुखर (मौखरी) दोनो वंश चन्द्र और सूर्य वंशो की भाँति तेजस्वी एव सकल जगत द्वारा वन्दनीय और बुध (सोम वंशी) और कर्ण (सूर्य वंशी) के आनन्दकारि गुणों वाले हो गये है—

> 'तात! त्वा प्राप्य चिरात्खलु राज्यश्रिया घटितौ तेजोमयौ सकलजगद्गीय-मानबुधकर्णानन्दकारिगुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखरवंशौ' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २५०)

किन्तु दैव ने इस महाघटन पर शीघ्र ही तुषारपात कर दिया। पुष्यभूति महाराज प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होते ही (लगभग ई० सन् ६०५–६०६) मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर ग्रहवर्मन को मार डाला। परिणामत

ग्रहवर्मन की मृत्यु के साथ ही कन्नौज के मौखरी राजकुल की सत्ता भी समाप्त हो गयी। इस घटना का विस्तार से विवरण 'पुष्पभूतिवंश के अभ्युदय' शीर्षक प्रकरण में दिया जायेगा।

गया के मौखरी

कन्नौज के महान् मौखरियों के अलावा मौखरियों की एक शाखा दक्षिण बिहार (गया) में राज्य करती थी। इन मौखरी सामन्त राजाओं का बराबर और नागार्जुनी के अभिलेखों में उल्लेख हुआ है।

अनन्तवर्मन के नागार्जुनी गुफा लेख में इस वंश के प्रथम राजा का नाम नृप यज्ञवर्मन मिलता है। लेख में उसे समृद्ध यज्ञ महिमा (अनेक यज्ञ करने की महिमा रखने वाला), यशस्वी (प्रख्यात), विमल-इन्दु के समान निर्मल यश वाला और क्षत्रियों के सुयश का धाम कहा गया है।

यज्ञवर्मन का पुत्र शार्दूलवर्मन हुआ, जिसने युद्धों द्वारा यश लाभ (अर्जित) किया था, तथा जिसने अपने सम्बन्धियों और मित्रों के प्रति अनुग्रह बरतने में कल्पवृक्ष की ख्याति अर्जित की थी।

शार्दूलवर्मन का पुत्र अनन्तवर्मन अनन्त कीर्ति और यश वाला हुआ, जिसने नागार्जुनी के विन्ध्य-भूधर (शैल) की गुहा में देवी कात्यायिनी (पार्वती) अथवा देवी भवानी की मूर्ति स्थापित की थी और भोग-पूजन के लिये एक गाव देवी को अर्पित कर दिया था (C I I Vol III, pp 227-28)।

अनन्तवर्मन के नागार्जुनी गिरि के दूसरे अभिलेख में भी यज्ञवर्मन और शार्दूलवर्मन का उल्लेख है। इस लेख में यज्ञवर्मन को 'अनु' (ययाति का एक पुत्र) के समान कहा गया है जो पृथ्वी के समस्त महीपतियों (समस्तमहीक्षितम् अनुरत्व) को क्षत्रियों के धर्म की दीक्षा देने वाला था। इस लेख में पर-हितकारी और सौम्य की श्री से युक्त अनन्तवर्मन द्वारा भूतपति (शिव) और देवी (पार्वती) की अद्भुत मूर्ति को गुफा में आश्रित करने का उल्लेख है। सम्भवतया यह मूर्ति शिव और पार्वती की संयुक्त अर्द्धनारीश्वर रूप की मूर्ति थी (C I I Vol III, pp 227-25)।

अनन्तवर्मन के बराबर-गिरि (प्राचीन नाम-प्रवरगिरि) गुहा-लेख में अनन्तवर्मन को मौखरी कुल का कहा गया है और उसके पिता शार्दूल को क्षत्रिय कुल का दीपक (दीप क्षत्रकुलस्य) घोषित किया गया है। इस अभिलेख में अनन्त-

वर्मन द्वारा अपनी ही कीर्ति की प्रतिकृति के रूप में प्रवरगिरि की गुहा में भगवान् कृष्ण की मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख है।

अनन्तवमन के बराबर और नागार्जुनी अभिलेखों को, लिपि के आधार पर पाँचवी शताब्दी ई० सन् का माना गया है। इन अभिलेखों में यज्ञवर्मन को क्षत्रियो के सुयश का धाम और महीपतियो को क्षत्रिया के धर्म की दीक्षा देने वाला कहा गया है, तथा शार्दूल को क्षत्रिय कुल का दीपक (दीप क्षत्रकुलस्य) विरुद से विभूषित किया गया है। अत प्रकट है कि गया के मौखरी भी कन्नौज और राजपूताना के मौखरियो की ही भाँति मूर्धन्य क्षत्रिय-कुल के थे।

अध्याय ४

पुष्यभूति वंश

□

पुष्यभूति अथवा पुष्पभूति वंश का संस्थापक, जैसा कि कविवर बाण के हर्षचरित से विदित है, पुष्यभूति नाम का एक राजपुरुष हुआ, जिसने श्रीकण्ठ (पूर्वी पंजाब) में राज्य स्थापित किया था। स्थाण्वीश्वर उसकी सुप्रसिद्ध राजधानी थी।

बाण ने पुष्यभूति के यशस्वी कृतित्व और चरित्र की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उसने इन्द्र के समान सर्ववर्णों की रक्षार्थ धनुष धारण किया था, (सर्ववर्णधर धनुर्धरान) कल्याण-प्रकृति का होने के कारण वह कल्याण के सुमेरु से निर्मित था, वह लक्ष्मी को आकर्षित करने में मन्दराचल के समान था, मर्यादा में समुद्र के समान था, यश रूप शब्द को उत्पन्न करने में आकाश के समान था, कलाग्रह में चन्द्रमा के समान था, लोक को धारण करने में धरती के समान था, वाणी में बृहस्पति के समान था, विपुलता में वह पृथु-सदृश था। मन का विशाल था, परिषद् में बुध (पण्डित) था, यश में अर्जुन था, धनुष चलाने में भीष्म (भयंकर) था, शरीर में शिव अथवा अनर्पणीय था, समर में शत्रुघ्न (शत्रु का हनन करने वाला) था, शूरों (की सेना) पर आक्रमण करने में शूर और प्रजा का कार्य करने में दक्ष था—

'वज्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधर धनुर्धरान, मेरुमय इव कल्याण-प्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादानाम्,

आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे—गुरुवचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, बुध सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्न समरे, शूर शूरसेनाक्रमणे, दक्ष प्रजाकर्मणि'—(हर्षचरितम्, तृतीय उच्छ्वास, सम्पादित श्री जगन्नाथ पाठक साहित्याचार्य—पृ० १६८–१६९—H C Thomas & Cowell, pp 128–129)

आगे बाण लिखता है कि जैसे शूर-नायक यदुराज से दुर्जेय (विष्णु) और बल (बलराम) से संयुक्त अजेय सैन्य वाला हरिवंश चला उसी प्रकार पुष्यभूति से एक राजवंश चला, जिसमें अनेक राजा उत्पन्न हुए—

"दुर्जयबलसनाथो हरिवंश इव शूरान्निर्जगाम राजवंश —सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीधरादजायन्त राजान " (हर्षचरित पृ० २०२)।

हर्षचरित के विवरणानुसार पुष्यभूति राजा ने, श्रीकण्ठ नामक नाग को, जिसके नाम पर स्थाण्वीश्वरराज्य का जनपद श्रीकण्ठ नाम से प्रसिद्ध था, अपने पराक्रम द्वारा पराभूत कर सुयश और लक्ष्मी का वरदान प्राप्त किया था। अनुमान होता है कि सम्भवतया श्रीकण्ठ जनपद मूलत नागो के अधीन रहा, और पुष्यभूति ने नागो से ही उसे छीन कर अपने अधीन किया था। श्रीकण्ठ नाग को पराभूत करने की घटना का वर्णन करने के बाद बाण ने लक्ष्मी द्वारा पुष्यभूति का यह वर दिये जाने का उल्लेख किया है कि 'वह (पुष्यभूति) अपने बल के उत्कर्ष और भगवान् शिव भट्टारक की अनन्य भक्ति से महान् राजवंश का कर्त्ता होगा और सूर्य व चन्द्रमा के बाद तृतीय स्थान प्राप्त करेगा'—

अनेन सत्त्वोत्कर्षेण भगवच्छिवभट्टारकभक्त्या चासाधारणया भवान्भुवि सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय—महतो राजवंशस्य कर्ता भविष्यति—(हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १९६)।

प्रकट है कि स्थाण्वीश्वर और कन्नौज के महान पुष्यभूति वंश का संस्थापक पुष्यभूति नाम का एक प्रवीर पुरुष था, और वह शिव का उपासक तथा महान् भक्त था।

हर्षचरित के विवरण से यह सर्वथा स्पष्ट है कि पुष्यभूति अथवा पुष्पभूति वंश क्षत्रिय वंश था। देव हर्ष के बाल्यकाल का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि उसके गले में बाघ-नखो की पंक्ति सुवर्ण में गढ कर पहना दी गयी थी, जिसकी आभा से उनका सहज क्षत्रिय-तेज अभिव्यक्त हो रहा था—

"ममनिष्पद्यमानमहजभ्रातृतेजसीव हाटकबद्धविकटव्यालनखपंक्ति-मण्डितग्रीवके"—(हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२८)।

इसी प्रकार दूसरे स्थल पर बाण ने राज्यवर्धन के लिये 'वीरजेतृत्वप्रभव-त्वाच्च जन्मन' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२२)—जन्म से वीर वंश में उत्पन्न कहा है और हर्ष को पुण्यवान् राजर्षि (अविनवादिन राजर्षिम्) तथा पुण्यराजर्षि के विरुदों से सम्बोधित किया है (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११९ और तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५५)।

हर्षचरित के षष्ठ उच्छ्वास में बाण ने हर्ष को अभिजात्य और सहज तेज वाले पुष्यभूति वंश में सम्भूत कहा है—'पुष्यभूतिवंशसम्भूतस्याभिजनस्याभिजात्यस्य सहजस्य तेजसो'—(पृ० ३५०)। ये सब उद्धरण निर्विवाद रूप से पुष्यभूतियों के क्षत्रिय होने का पुष्ट प्रमाण उपस्थित करते हैं।

चतुर्थ उच्छ्वास में बाण ने पुष्यभूति और मौखरी वंश को चन्द्र तथा सूर्य वंश के समान तेजस्वी और समस्त संसार द्वारा गेय, स्तुत्य एवं आनन्दकारी गुणों वाला उद्घोषित किया है—

"तेजोमयौ सकलजगद्गीयमानबुधकर्णानन्दकारिगुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखरवंशौ" (पृ० २५०)।

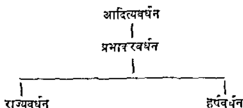
इसी प्रसंग में राज्यश्री के होने वाले पति मौखरीराज ग्रहवर्मा से महाराज प्रभाकरवर्धन के प्रार्थी विद्वान् ब्राह्मण गम्भीर ने कहा था कि जिस प्रकार शिव ने चन्द्र को सिर पर धारण किया, उसी प्रकार तुम भी महाराज (प्रभाकरवर्धन) के शिरोधार्य हो रहे हो—"इदानीं तु शशीव शिरसा परमेश्वरेणासि वोढव्यो जात"—(वही)। प्रभाकरवर्धन द्वारा ग्रहवर्मा को चन्द्र की तरह शिरोधार्य किये जाने का उल्लेख मौखरी क्षत्रियों का सोम वंशी होना इंगित करता है। अतः स्पष्ट है कि मौखरी चन्द्रवंशीय क्षत्रिय थे और आदित्यभक्त प्रभाकरवर्धन और उसके पूर्वज सूर्यवंशी पुष्यभूति कुल के क्षत्रिय थे।

प्रभाकरवर्धन, उसके पितामह राज्यवर्धन और पिता आदित्यवर्धन को हर्ष के अभिलेखों में परम-आदित्यभक्त कहा गया है। प्रभाकरवर्धन की आदित्य-भक्ति का उल्लेख करते हुए बाण ने लिखा है—वह राजा स्वभाव से ही आदित्यभक्त था। प्रतिदिन सूर्य के उदय के समय स्नान करके, श्वेत दुकूल धारण कर, सिर को धवल वस्त्र से ढक कर, पूर्व की ओर मुँह कर, जानुओं पर स्थित होकर, रक्तकमल से, जो पद्मराग मणि के पवित्र थाल में सूर्य के प्रति अनुरक्त मानो

उसके हृदय के रूप में रखा हुआ था, कुंकुम के पंक से बनाये हुए सूर्यमण्डल में अर्घ देता था—

> "निसर्गत एव च स नृपतिरादित्यभक्तो बभूव। प्रतिदिनमुदये दिनकृत स्नान सितदुकूलधारी धवलकर्पटप्रावृतशिरा प्राङ्मुख क्षितौ जानुभ्या स्थित्वा कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके पवित्रपद्मरागपात्रीनिहितेन स्वहृदयेनेव सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्घं ददौ"—(चतुर्थ उच्छ्वास पृ० २०८)।

मंजुश्रीमूलकल्प[1] के अनुसार पुष्पभूतिवंश का पहला राजा आदित्य अथवा आदित्यवर्धन था और उसके बाद प्रभाकरवर्धन और फिर राज्यवर्धन व हर्षवर्धन क्रमानुसार राजा हुए। अत मंजुश्रीमूलकल्प के विवरणानुसार पुष्पभूतिवंश की वंश-तालिका इस प्रकार है —



---

१ बौद्धग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार श्रीकण्ठ के पुष्पभूति वंश के राजा वैश्य जाति के थे। उनका आदि पूर्वज विष्णु नाम का एक पुरुष था (डा० जायसवाल के अनुसार विष्णु सम्भवतया मन्दसौर अभिलेख का यशोधर्मन—विष्णुवर्द्धन था)। डा० जायसवाल का यह अनुमान तर्कसंगत नहीं है। पुष्यभूति राजाओ में प्रथमत महाराजाधिराज का विरद धारण करने वाला प्रभाकरवर्धन हुआ है। उससे पूर्व के राजाओं को केवल महाराज कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि प्रभाकरवधन स पूर्व के पुष्यभूति राजा श्रीकण्ठ के साधारण सामन्त राजा थे। अत मंजुश्रीमूलकल्प में उल्लेखित विष्णु एक सामन्त राजा था जिसे सम्राट् विष्णुवर्द्धन से नहीं मिलाया जा सकता। डा० जायसवाल के अनुसार सम्भवतया पुष्यभूति राजा पहले मौखरियों के मन्त्री (The Imperial History of India, pp 128-29) रहे थे। किन्तु बाण के हर्षचरित से ऐसा कोई आभास नहीं मिलता।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी हर्षवधन का वर्ण वैश्य (फी—से) कहा है। किन्तु, जैसा कि 'हर्षचरित' के आधार पर हम पहले निरूपित कर चुके

बाण ने भी पुष्यभूति के बाद अनेक राजाओं के होने का उल्लेख किया है। लेकिन उनके वंशजों में नाम केवल प्रभाकरवर्धन का दिया है। बाण ने लिखा है कि जिस प्रकार विष्णु से भवभूतों पर आश्रित विश्व के अन्त उत्पन्न हुए उसी प्रकार इस राजवंश (पुष्यभूति) में अनेक राजा हुए और उन राजाओं के क्रम में राजाधिराज प्रभाकरवर्धन हुआ—

> सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीपादजन्त राजान। तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु क्रमेणोदपादि—प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराज— (चतुर्थ उच्छ्वास पृ० २०२–३)।

सम्राट हर्षवर्धन के मधुबन-लेख (संवत् २५—६३१ ई० सन्) में उनके पूर्वजों की नामावली इस प्रकार दी गयी है—

नरवर्धन—वज्रिणी देवी
|
राज्यवर्धन—(प्रथम)—अप्सरो देवी
|
आदित्यवर्धन—महासेन गुप्तादेवी (परवर्ती गुप्त महाराज महासेन गुप्त की बहिन)

प्रभाकरवर्धन—यशोमति देवी[1]

हर्षवर्धन की सोनपत ताम्र-मुहर पर भी उनके वंश की तालिका अंकित है, किन्तु लेख की पहली पंक्ति के अक्षर मिट गये हैं जिस कारण नरवर्धन का नाम इसमें नहीं है। दूसरी पंक्ति में परम आदित्यभक्त महाराज श्री प्रभाकरवर्धन और अन्त में परम सुगत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्धन का नामोल्लेख है।[2]

है, पुष्यभूति क्षत्रिय थे। पीटर पीटरसन ने भी पुष्यभूति-कुल पर मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि हर्षवर्धन क्षत्रिय कुल का था (The Bana's Kadambari, Peter Peterson, p 11 & p 62, fn 1)।

१ श्री राधाकुमुद मुकर्जी का अनुमान है कि यशोमति पश्चिमी मालवा के यशोवर्मन विक्रमादित्य की बहिन थी (Harsh, p 10)।

२ C I I Vol III p 232

प्रभाकरवर्धन

अभिलेखों व हर्षचरित में पुष्यभूति राजाओं में प्रथमत प्रभाकरवर्धन को परमभट्टारक और महाराजाधिराज कहा गया है। अत उसके पूर्व के राजा, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, किसी महाराजाधिराज के अधीन केवल सामंत राजा रहे। हर्षचरित के विवरण से प्रकट होता है कि प्रभाकरवर्धन ने अपने भुजबल से अनेक राजाओं को युद्ध में न्यस्त कर दिग्विजय द्वारा अपने राज्य का विस्तार कर पुष्यभूति वंश की स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता स्थापित करने का श्रेय ग्रहण किया था। अपने इस विक्रम के कारण अथवा 'प्रताप' से बाण ने लिखा है कि वह प्रतापशील नाम से भी विख्यात हो चला था अर्थात प्रभाकरवर्धन का दूसरा नाम 'प्रतापशील' था—

> "प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराज"
> (चतुर्थ उच्छ्वास् पृ० २०३)।

प्रभाकरवर्धन की प्रचण्ड शक्ति और बल-विक्रम का उल्लेख करते हुए बाण ने लिखा है कि वह—

> 'हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गूर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशु' (वही)—

'हूण रूपी हरिणों के लिये सिंह, सिन्धुराज के लिये ज्वर, गुर्जर प्रदेश के लोगों की नींद उचाट करने या हरने वाला, गान्धारराज के लिये कूटपाकल नामक महामारी, लाट के लोगों की चंचलता या पटुता (चालाकी) को हरने वाला और मालवराज की लक्ष्मीरूपी लता को काट गिराने वाला परशु अथवा कुठार था।' हर्षचरित के इस सक्षिप्त विवरण से यह अनुमान लगाना कठिन है कि सिंध, गान्धार, गुर्जरप्रदेश (गुजरात)[1] लाट तथा मालवा पर प्रभाकरवर्धन ने स्थायी प्रभुत्व स्थापित कर दिया था या केवल उन्हें अपने आतंक से दबा कर रखा था।[2]

---

१ स्मि० स्मिथ का अनुमान है कि गुर्जरों से अभिप्राय राजपूताना के गूजरों से हो सकता है, लेकिन यह अधिक सम्भव है कि ये गुर्जर पंजाब के ही गुर्जर थे जिनके नाम पर दो जिले आज भी गुजरात और गुजरानवाला कहलाते हैं (The Early History of India, IIIrd Ed p 336)।

२ अभिलेखों में भी प्रभाकरवर्धन की विजयों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि उसकी कीर्ति चारों समुद्रों को लांघ गयी थी और बहुत से राजाओं ने

हर्षचरित (तृतीय उच्छ्वास पृ० १५४) में बाण ने प्रभाकरवर्धन के लिये 'सिन्धुराजज्वरो' कहा है, लेकिन हर्ष को सिन्धुराज के मद का मथन कर उसकी राजलक्ष्मी को आत्मीकृत अथवा अपना लेने वाला घोषित किया है (सिन्धुराज प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता—तृतीय उच्छ्वास पृ० १५४)। सिन्धुराज के सन्दर्भ में हर्ष के प्रति इन कथन से प्रकट है कि प्रभाकरवर्धन ने सिन्धुराज (आदि) को आतंकित किया था, लेकिन उसे विजित नहीं कर सका था। अत: प्रतीत होता है कि सम्भवतया पंजाब के अधिकांश भाग पर प्रभुत्व स्थापित करके प्रभाकरवर्धन ने अड़ोस-पड़ोस के राज्यों को अपनी बढ़ती हुई शक्ति से आतंकित कर दबा दिया था,[1] लेकिन उन्हें वह अपने अधीन नहीं कर सका था।

हर्षचरित के विवरणानुसार प्रभाकरवर्धन ने अपने पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचरों के रूप में, मालवराज के दो पुत्रों—कुमारगुप्त और माधवगुप्त को नियुक्त किया था और निर्देशित किया था कि मालवराज-पुत्रों के साथ, जो उसकी दो भुजाओं के समान उसके शरीर से पृथक् नहीं हैं, सामान्य परिजनों जैसा व्यवहार न किया जाय—

"मालवराजसूनो भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्त-माधवगुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वायमिमौ निर्दिष्टौ। अनयोरपरिजन-समुचितमनिवृत्तिभ्यां भवितव्यम्"—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २३५–३६)।

इस उद्धरण से प्रकट है कि यद्यपि कुमारगुप्त और माधवगुप्त राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर अथवा कुमारामात्य नियुक्त किये गये थे लेकिन मालव-कुमार निश्चय ही निकट सम्बन्धी थे जिस कारण प्रभाकरवर्धन ने उन्हें अपनी दो भुजाओं की तरह अपने शरीर का ही अंग बताया था और उनके साथ सामान्य परिजनों के साथ का जैसा व्यवहार न किये जाने का निर्देश दिया था।

यहाँ पर मालवराज से अभिप्राय मगध और मालवा के परवर्ती गुप्तराजवंश के महाराज महासेनगुप्त से प्रतीत होता है। डा० डी० सी० गांगुली के अनुसार

उसके आतंक और स्नेह से दब कर उसे आत्मसमर्पण कर दिया था। लेकिन ये उल्लेख अभिलेखों के प्रशस्तिकारों की अतिरंजना ही प्रतीत होते हैं।

१ जनरल कनिंघम के अनुसार प्रभाकरवर्धन के राज्य में दक्षिणी पंजाब और पूर्वी राजपूताना के कुछ भाग शामिल थे। ह्वेनसांग ने थानेश्वर राज्य की परिधि ७०० ली अथवा १२०० मील बतलायी है।

कलचुरियों के अभिलेखों के अनुशीलन से विदित होता है कि ५९० और ५९५ ई० सन् के लगभग मालवा गुप्तों के हाथ से निकल कर कलचुरियों के अधिकार में चला गया था। सम्भवत ई० सन् ५९५ के आसपास कलचुरि राजा कृष्णराज के बेटे शंकरगण ने परवर्ती गुप्तसम्राट महासेनगुप्त को हराकर मालवा उससे छीन लिया था। इस संघर्ष में सम्भवतया सम्राट महासेन युद्ध में काम आए जिस कारण उसके दोनो बेटे निराश्रय हो चले, और इसलिये उन्हें अपनी बुआ के लड़के प्रभाकरवर्धन के यहाँ शरण ग्रहण करनी पड़ी। यहा पर यह स्मरण रहे कि प्रभाकरवर्धन की माता महासेनगुप्ता परवर्ती गुप्तसम्राट महासेनगुप्त की बहिन थी। शायद अपने मामा महासेनगुप्त का पक्ष लेकर प्रभाकरवर्धन ने कलचुरि शंकरगण पर चढ़ाई कर उसे मालवा से खदेड़ने का उपक्रम भी किया हो। लेकिन प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के तत्काल पश्चात् मालवराज ने मौखरी एवं पुष्यभूतियों पर जिस प्रकार आघात किया था, उससे प्रकट है कि प्रभाकरवर्धन मालवराज के प्रति सफल न हो सका था, फलत मालवा पर कुछ समय तक (लगभग ई० सन् ६०८–०९ तक) कलचुरियों का अधिकार बना रहा।[1] अत "मालवलक्ष्मीलतापरशु" से मालवा के जिस राजकुल के प्रति सम्राट प्रभाकरवर्धन की शत्रुता प्रतिलक्षित होती है वह सम्भवतया कलचुरि कुल ही था।

प्रभाकरवर्धन के दो बेटे राज्यवर्धन (जन्म अनुमानत ५८६ ई० सन्) और हर्षवर्धन (जन्म अनुमानत ५९० ई०) और एक बेटी राज्यश्री (जन्म अनुमानत ५९३ ई० सन्)[2] थी।

राज्यवर्धन हर्ष से लगभग चार वर्ष और राज्यश्री से ६ वर्ष जेठा था। हर्षचरित के विवरणानुसार राज्यश्री का जन्म होने पर, महादेवी यशोमति के भाई ने (उस का नाम नहीं दिया गया है), अपने आठ वर्ष की उम्र वाले भण्डि नाम के पुत्र को राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर के रूप में रहने के लिये थानेश्वर भेजा था। भण्डि के बाल्साथी नियुक्त होने के कुछ समय बाद ही महासेनगुप्त के पुत्र भी बाल्सखा नियुक्त किये गये थे (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २३०–३१, २३९)।

भण्डि, जैसा कि हर्षचरित के विवरण से प्रकट है राज्यवर्धन और हर्षवर्धन दोनों का विश्वासपात्र सेनापति रहा। राज्यवर्धन ने जब दुष्ट मालवराज के विरुद्ध अभियान किया तो भण्डि साथ गया था और राज्यवर्धन के मारे जाने पर वह

1 J B O R S, 1933, p 407

2 Harsha, R K Mukherji, p 69

सेना के साथ बन्दी मालवा आदि को लेकर वापस हर्ष के पास पहुँचा था। हर्षवर्धन ने जब राज्यश्री की खोज के लिए विन्ध्य अटवी में जाने का निश्चय किया, तो गौड़ पर चढ़ाई करने का दायित्व भण्डि को ही सौंपा गया था (सप्तम उच्छ्वास पृ० ४०२–४०४)। भण्डि निकट सम्बन्धी होने से ही विश्वासपात्र नहीं हुआ वह बलवान योद्धा भी था जिस कारण बाण ने उसके शैशव का उल्लेख करते हुए उसे पराक्रम के वृक्ष का बीज (शैशवेऽपि सावष्टम्भ बीजमिव वीर्यद्रुमस्य भण्डिनामानमनुचरं कुमारमर्पितवान्—चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २३१) कहा है और उसे विष्णु और शिव के संयुक्त अवतार का स्वरूप वाला बतलाया है (सम्पृक्तावतारमिव हरिहरयोर्दर्शयन्तम वही पृ० २३०)।

प्रभाकरवर्द्धन ने जैसा कि पूर्ववर्णन किया जा चुका है राज्यश्री का विवाह कन्नौज (कान्यकुब्ज) के मौखरी महाराज ग्रहवर्मन से सम्पन्न किया था। राजनीतिक दृष्टि से यह वैवाहिक सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि थानेश्वर और कन्नौज के दोनों प्रतापी राजवंश जब संयुक्त होकर अपने समान शत्रुओं, हूणों और मालवों (कलचुरियों) का दृढ़ता से प्रतिरोध कर सकते थे। मौखरी राजवंश जो कि एक प्राचीन प्रतापी राजकुल था से विवाह-सम्बन्ध प्रभाकरवर्द्धन के बढ़ते हुए राजनैतिक प्रभाव को भी प्रकट करता है।[1]

हर्षचरित के विवरण से मालूम होता है कि प्रभाकरवर्धन के शासन के अंतिम काल में हूण पुनः प्रबल हो उठे थे और उन्होंने अपने उपद्रवों से उत्तर-

---

1 इस विवाह-सम्बन्ध पर सम्मति देते हुये श्री आर० जी० बसाक लिखते हैं —"Owing to Prabhakar's great political power, the Maukharis remained somewhat in submission to him, *for we find him giving his daughter Rajyasri, in marriage with Avantivarman's son, King Grahvarman, then ruling in Kusasthala or Kanyakubja (Kanauj)*" History of North Eastern India, R G Basak, p 142

डा० आर० एस० त्रिपाठी लिखते हैं —"From the political point of view it was a very important alliance It linked up the two powerful houses of the Maukharis of Kanauj and Vardhans of Thanesvara, and was largely instrumental in shaping the course of history during that momentous period"—History of Kanauj, p 51

पश्चिमी सीमात को फिर से आक्रात कर दिया था। इसीलिये जैसा कि बाण लिखता है[1] बर्बर हूणो को दबाने के लिये प्रभाकरवर्धन को अपने बेटे राज्यवर्धन (द्वितीय) को उत्तरापथ भेजना पडा था। राज्यवर्धन तब १८ वर्ष का हो चुका था, जो आयु बाण के अनुसार राजकुमार के कवचधारण के लिये समुपयुक्त थी। सम्भवतया वृद्ध और अस्वस्थ होने के कारण "हूण-हरिण-केसरी" तब स्वय उपरी पहाडो में घुसने में समर्थ न रह गया था, जिस कारण उसे अपने पुराने विश्वस्त मत्री और सामतो सहित युवराज राज्यवर्धन को सैन्यदल के साथ उत्तरापथ[2] के लिये रवाना करना पडा। अभियान की कुछ मजिलो तक 'राज्य' का छोटा भाई

---

१ हर्षचरित—अथ कदाचिद्राजा राज्यवर्धन कवचहरमाहूय हूणान्हन्तु हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरमपरिमितबलानुयात चिरतनैरमात्यैरनुरक्तैश्च महासामन्तै कृत्वा साभिसरमुत्तरापथ प्राहिणोत्"—

किसी समय राजा प्रभाकरवर्धन ने कवच पहनने योग्य राज्यवर्धन को बुला कर हूणो के हनन के लिये उत्तरापथ की ओर भेजा, जैसे सिंह हरिणो को मारने के लिये अपने किशोर (बालसिंह) को भेजता है। पुराने मत्रियो और अनुरक्त महासामतो के अलावा अपरिमित सेना भी उसके साथ भेजी गयी (पचम उच्छ्वास, पृ० २५७)।

२ उत्तरापथ —बाण के इस कथन से कि राज्यवर्धन उत्तरापथ को भेजा गया, यह सिद्ध होता है कि उत्तरापथ प्रदेश थानेश्वर से आगे था। काव्यमीमासा के लेखक राज-शेखर (नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) ने लिखा है कि पृथुदक से आगे का प्रदेश उत्तरापथ है। अत पृथुदक (कारनूल, जिला-पजाब) आर्यावर्त की अतिम सीमा थी और उसके आगे का प्रदेश उत्तरापथ कहलाता था। बृहत्सहिता के अनुसार उत्तरापथ में गाधार, तक्षशिला और पुष्कलावती (वर्तमान पेशावर) के जनपद शामिल थे। इससे मालूम होता है कि हूण तब भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमात के इन्ही हिस्सो को आक्रात किये हुये थे। किन्तु हर्षचरित के विवरणानुसार राज्यवर्धन ने हूणो पर आक्रमण करने के लिये कैलाश पर्वत की प्रभा से भासित हिमालय के प्रदेश में प्रवेश किया था (प्रविष्टे च कैलास प्रभाभासिनी पचम उच्छ्वास, पृ० २५७), और उसका छोटा भाई हर्ष हिमालय की तराइयो (तुषारशैलोपकण्ठे, वही, पृ० २५८) में आखेट करता रहा। इस वृत्त से प्रकट होता है कि हर्षचरित में उल्लिखित उत्तरापथ से अभिप्राय हिमालय प्रदेश से है और हूण शायद तब कैलाश से लगे तिब्बत में केन्द्र बनाये हुये थे।

हर्ष भी, जो तब लगभग १४ वर्ष का बालक था, उनके पीछे-पीछे कुछ पड़ावों तक गया, लेकिन जब राज्यवर्धन सेना लेकर उत्तरदिशा में कैलाश पर्वत में घुसा तो हर्ष हिमालय की घाटी में आखेट में लग गया। इसी बीच शीघ्र ही थानेश्वर से कुरंगक नामक राजदूत ने आकर हर्षवर्धन को महाराज प्रभाकरवर्धन के अत्यन्त बीमार होने का समाचार दिया। समाचार को पाकर हर्ष तेजी से राजधानी लौट आया। महल में पहुँचने पर पिता के भवन के द्वार पर उसे वैद्यकुमार सुषेण मिला जिसका मुख दुःख से खिन्न हो रहा था। हर्ष ने सुषेण से पूछा कि क्या उसके पिता की हालत में कोई अन्तर आया है? वैद्यकुमार सुषेण ने सूचित किया कि हालत वैसी ही चिन्ताजनक बनी हुई है, लेकिन उनके पहुँच जाने से शायद कोई अन्तर आ सके—

"सुषेण! अस्ति तातस्य विशेषो न वा?"—'नास्तीदानीं यदि भवेत्कुमार दृष्ट्वा'—(पंचम उच्छ्वास, पृ० २६४)।

इसी राजकुमार ने तब धीरे-धीरे पिता के भवन में प्रवेश किया, जहाँ उसकी माता पति के दुःख से बेचैन हो कर रो रही थी, क्योंकि महाराज के बचने की कोई आशा न रह गयी थी। हर्ष के राजधानी लौटने के कुछ ही समय पश्चात् (राज्यवर्धन के पहुँचने से पूर्व ही) प्रभाकरवर्धन ने हमेशा के लिये आँखें मूँद लीं। महारानी यशोमति भी अपने पति की आसन्न मृत्यु को न सहकर सरस्वती के तीर पर चिता में जल कर पति से पूर्व ही स्वर्ग सिधार गयी। महादेवी यशोमति के चितारोहण का उल्लेख करते हुए बाण लिखता है कि सरस्वती तीर पर, 'स्त्री स्वभाव के कारण कातर एवं खिले हुए रक्तकमल के पुञ्जों की भाँति अपने दृष्टिपातों से अर्चना करके वे अग्नि में इस प्रकार प्रवेश कर गयीं जिस प्रकार भगवान सूर्य में चन्द्रमा की मूर्ति'—

तत्र (सरस्वतीतीरे) च स्त्रीस्वभावकातरैर्दृष्टिपातैः प्रविकसितरक्तपङ्कजपुञ्जैरिवार्चयित्वा भगवन्तं भानुमन्तमिव मूर्त्तिरैन्दवी चित्रभानुं प्राविशत्"—पंचम उच्छ्वास, पृ० २९३)।

महादेवी यशोमति के चितारोहण के कुछ ही समय बाद महाराज प्रभाकरवर्धन भी स्वर्ग सिधार गये। इस बीच हर्ष ने अपने बड़े भाई राज्यवर्धन को बुलाने के लिये शिघ्र दीर्घाध्वग दूत और वेगगामी साड़नी-सवारों को रवाना कर दिया था—

"तत्र च त्वरमाणो भ्रातुरागमनार्थमुपर्युपरि क्षिप्रयायिनो दीर्घाध्वगानतिजविनश्चोष्ट्रपालान्प्राहिणोत्"—(पंचम उच्छ्वास, पृ० २७७)।

हर्षचरित में बाण ने उल्लेख किया है कि राजधानी पहुँचने पर जब हर्ष रोगशय्या पर पड़े पिता से मिले थे तो उन्होंने अपने पुत्र (हर्ष) से कहा था कि—"वत्स, तुम पितृ-प्रिय और मृदुहृदय के हो। मेरे सुख, राज्य, वंश, प्राण, परलोक सब तुम्ही में स्थित है। जिस तरह तुम मेरे हो, उसी तरह तुम समस्त प्रजा के हो। तुम अनेक जन्मों में किये गये पुण्यों का फल हो। तुम्हारे लक्षण बतलाते हैं कि चारों समुद्रों का आधिपत्य तुम्हारे करतल पर होगा। मैं तुम्हारे जन्म से ही कृत-कृत हूँ,—

> "वत्स। जानामि त्वा पितृप्रियमतिमृदुहृदयम्। सुख च राज्य च वंशश्च प्राणाश्च परलोकश्च त्वयि मे स्थिता। यथा मम तथा सर्वासां प्रजानाम्। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मण। करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्य ते लक्षणानि। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि"—(पंचम उच्छ्वास, पृ० २७३–७४)।

दूसरे दिन मृत्यु से पूर्व, बाण ने आगे लिखा है कि महाराज प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को धैर्य बँधाते हुए कहा था—"तुम सूर्य के समान तेजस्वी-चक्रवर्ती के लक्षणों वाले, स्वयमेव लक्ष्मी द्वारा गृहीत्, दोनों लोकों की विजय करने की कामना या सामर्थ्य वाले, भुवन का भार ग्रहण करने की क्षमता वाले और तीनों भुवनों का भार ग्रहण करने योग्य हो, आदि—

> दिवमकरसदृशतेजसस्ते, लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य, स्वयमेव श्रिया परिगृहीतस्य इत्युभयलोकविजिगीषोरपुष्कलमिव। तथा, तुम्हें यह कहना कि "स्वीक्रियता कोश"—'कोष स्वीकार करो,—उह्यता राज्यभार'—राज्य का भार वहन करो, प्रजा परिरक्ष्यन्ताम्'—प्रजा की रक्षा करो,—अनावश्यक सा है, क्योंकि तुम में इस सब की क्षमता है' (पंचम उच्छ्वास, पृ० २९४)।

इस विवरण के आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह अनुमानित किया है कि सम्भवतया प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन की जगह हर्ष को उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। किन्तु हर्ष की प्रशंसा में मृत्युशय्या पर पड़े पिता के स्नेह-द्रवित हृदय से निःसृत उद्‌गारों से इस तथ्य पर पहुँचना कि प्रभाकरवर्धन राज्यवर्धन को उत्तराधिकार से वंचित कर हर्ष को उत्तराधिकार सौंपना चाहता था, हर्षचरित के सम्पूर्ण विवरण के परिप्रेक्ष्य में संगत नहीं प्रतीत होता। अतः इन उद्‌गारों के आधार पर वि० स्मिथ की तरह इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि राज्यवर्धन की जगह हर्ष को सिंहासनारूढ़ करने का राजधानी में षड्यन्त्र चल रहा था, जो उसके तत्काल लौट

जाने से विकल हो गया—हर्षचरित के विवरण के सन्दर्भ में सरासर गलत और अनर्गल कल्पना है।[1]

---

१ थॉमस और कॉवेल (Thomas & Cowell) ने हर्षचरित के सदर्भित अश का अनुवाद करते हुये लिखा है कि प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को सबोधित कर कहा था—" Succeed to this world, appropriate my treasury, support the burden of royalty protect the people, guard well your dependants "

इस पर हर्ष ने 'राज्यग्रहण' के बजाय सब कुछ त्याग देने का विचार करते हुये कहा था—" Let sovereign glory flee to a hermitage, and "let valour mortify herself in forest seclusion, let heroism put on rags "

(Hc Thomas & Cowell pp 156 & 158-159)

थॉमस और कॉवेल के अनुवाद के पूर्व अश के आधार पर ही वि० स्मिथ ने यह कल्पना की है कि थानेश्वर में हर्ष को सिंहासनारूढ करने का षड्यन्त्र चल रहा था, किन्तु ठीक समय से राज्यवर्धन के राजधानी लौट आने से यह योजना सफल न हो सकी—"There are indications that a party at court was inclined to favour the succession of the younger prince, but all intrigues were frustrated by the return of Rajyavardhana who ascended the throne in due course"—The Early History of India, 3rd ed p 336

वि० स्मिथ का यह मत, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, असगत और हर्षचरित के विवरण के विपरीत है। पहली बात यह स्मरण रखनी चाहिए कि राज्यवर्धन को बुलाने हर्ष ने स्वय ही शीघ्रता के साथ दूत रवाना किये थे। पितृ शोक से सतापित राज्यवर्धन के 'राज्य-ग्रहण' की अनिच्छा से समस्त अधिकारी व दरबारी जन आदि दुखी हो चले थे, और हर्ष स्वय (जिसे वि० स्मिथ समझते हैं षड्यन्त्र द्वारा राज्य प्राप्ति में सचेष्ट था) राज्यवर्धन की राज्यग्रहण की अनिच्छा और उत्तराधिकार उसे सौंप जाने की बात से उद्विग्न हो चला था। उसे लगा था कि जैसे बडे भाई उसे 'पुष्यभूतिवश में जन्मा, प्रभाकरवर्द्धन का पुत्र और उसका अनुज नहीं समझ रहे हैं, जो ऐसा अनुचित प्रस्ताव उसके सामने रखा गया। हर्ष को भाई की इस अनिच्छा

हर्षचरित के विवरणानुसार पिता की आसन्न मृत्यु से उद्विग्न और व्यग्र होकर हर्षवर्धन ने स्वय राज्यवर्धन को तुरन्त वापस लौटा लाने के लिये शीघ्रगामी दूत और साडनी-सवार रवाना किये थे। इसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं।

फिर हर्षचरित मे पितृशोक से विह्वल और राज्य के प्रति विरक्त हुये राज्यवर्धन और हर्ष के बीच सवाद से भी यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हर्ष का अपने भाई

और प्रस्ताव से स्वय यह सोच हुआ था कि कही किसी ने उस के बारे में भाई के प्रति कोई ऐसी बात तो नही कह दी जिस कारण उन्हे उसमे कोई कलुष प्रतीत हुआ हो। हर्ष के इन भावो से स्पष्ट है कि हर्षवधन अपने भाई राज्यवर्धन के प्रति किसी षडयन्त्र मे सलग्न नही था, अपितु भाई की बातो से उसे यह अवश्य प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसके विपरीत षडयन्त्र कर भाई को राज्य के प्रति अन्यमनस्क बना दिया है। (देखिये—हर्षचरित, पचम्, उच्छ्वास, पृ० २७७, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३१८–३२०)।

हर्षचरित के विवरण मे सुस्पष्ट है कि राज्यवर्धन को भी हर्ष की ओर से कोई दुश्चिन्ता न थी, अपितु हर्ष को यह दुश्चिन्ता थी कि कही पितृशोक से राज्यवर्धन, राज्य-ग्रहण के प्रति विमुख हो तपोवन में प्रविष्ट न हो जाय— "भ्रातृगतहृदयश्चाचिन्तयत्—'अपि नाम तातस्य मरण महाप्रलयसदृशामिदमुपश्रुत्य आर्यो बाष्पजलस्नाता न गृह्णीयाद्वल्कले। नाश्रयेद्वा राजर्षिराश्रमपदम्" (पचम उच्छ्वास, पृ० ३०४)। हर्ष की दुश्चिन्ता सही निकली, और राज्यवर्धन मालवराज द्वारा उत्पन्न विकट परिस्थिति से विवश होकर ही शस्त्र ग्रहण अथवा राज्यग्रहण करने को उद्यत हो सके थे—

"शस्त्रग्रहणमुदितराजलक्ष्मी " " गतोऽहमद्यैव मालवराजकुलप्रलयाय। इदमेव तावद्वल्कलग्रहणमिदमेव तप शोकापगमोपायश्चायमेव यदत्यन्ताविनीतारिनिग्रह"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२३–२४)।

पणिक्कर ने ठीक ही मत व्यक्त किया है कि राज्यवर्धन को हर्ष से अपने उत्तराधिकार के प्रति कोई चिन्ता नही थी, इसीलिये—"Rajyavardhan did not abandon the field of war in order to hasten to the capital where he knew the administration will be conducted in his name by Harsha"

Shri Harsha of Kanauj, K m Panikkar, p 52

बाण ने लिखा है कि रोष से दीप्त राजवर्धन के कपोलो का लाल (कपिल) रग ऐसा दिखाई पडने लगा मानो उसके शस्त्रग्रहण से मुदित राज्यलक्ष्मी

के प्रति अगाध भक्ति और अनुराग था, और हर्ष अपने बड़े भाई को ही सर्वस्वेण राज्यग्रहण का अधिकारी मानता था।

हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि राज्यवर्धन जब समर में हूणों को पछाड़ कर लौटा तो पिता की मृत्यु से कातर हो वह राज्य के प्रति विरक्त हो उठा था —

'राज्ये मे विरक्तं', (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३१७)।

जब उसने अपने छोटे भाई हर्ष से कहा था—'उसका मन श्री को छोड़ देना चाहता है—

'श्रियं त्यक्तुमभिलषति मे मनः' —(षष्ठ उच्छ्वास पृ० ३१७),

इसलिए जिस प्रकार पुरु ने पिता की आज्ञा से यौवनसुख छोड़कर जरा को अपनाया था तुम मेरी राज्यचिन्ता ग्रहण करो और हरिण के समान सकल बाल-क्रीडाओं को छोड़ कर अपना वक्ष लक्ष्मी को दो। मैंने शस्त्र का परित्याग कर दिया है—

'पदुरुरिवमन्तरितयौवनसुखानभिनन्दताऽपि जरामिव पुरुराजन्या गुरोर्गृहाण मे राज्यचिन्ताम्। त्यक्तसकलबालक्रीडेन हरिणेव दीयतामुरो लक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३१७)।

बाण आगे लिखता है कि बड़े भाई के इन वचनों को सुनकर हर्ष अत्यन्त आहत हुए और सोचने लगे कि क्या उनकी अनुपस्थिति में किसी असहिष्णु ने आर्य (राज्यवर्धन) से कुछ कह दिया जिससे वे कुपित हो ऐसा कह रहे हैं। राज्यग्रहण के लिये भाई का आदेश हर्ष को ऐसा लगा मानो उन्हें कुलकलत्र के समान व्यभिचार में लगाया जा रहा है, और उन्हें ऐसा समझा जा रहा है जैसे वे "पुष्यभूति वंश में उत्पन्न नहीं, तात का पुत्र नहीं, भाई नहीं, भक्त नहीं (बड़े भाई का सेवक)"। इन विचारों ने हर्ष के हृदय को विदीर्ण कर दिया और भाई द्वारा राज्य करने की आज्ञा को उन्होंने दाहकारिणी और अंगारवृष्टि के जैसा अनुभूत किया। बड़े भाई का यह विचार अथवा आदेश हर्ष को अत्यन्त अनुचित लगा, और वह सोचने लगे कि

अपनी नाभ्यवृद्धि पर सिंदूर की धूल उड़ाने लगी हो, अर्थात् राज्यवर्धन द्वारा राज्यग्रहण से राज्यलक्ष्मी प्रसन्न हो चली थी—

"राज्यग्रहणानुदितराजलक्ष्मीक्रीडनादिष्टवृद्धिविधुतसिन्दूरधूलिरिव कपिल-कपोलोदरेदृश्यत रोषरागः"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२३)।

'क्या बडे भाई ने उन में कोई कलुष देखा, क्या वे (राज्यवर्धन) लक्ष्मण और भीम जैसे छोटे भाइयो को विस्मृत कर गये, अपने आत्मजनो के प्रति 'आर्य' पहले तो ऐसे नही थे'—

> 'अथ तच्छ्रुत्वा निशितशिखेन शूलेनेवाहत प्रविदीर्णहृदयो देवो हर्ष समचिन्तयत्—'कि नु खलु मामन्तरेणाय केनविदसहिष्णुना किंचिद्ग्राहित कुपित स्यात्। मामपुष्यभूतिवशसभूतमिव, अतातनयमिव, अनात्मानुजमिव, अभक्तमिव, मुकलनमिव व्यभिचारे, अतिदुष्करे कर्मणि समादिष्टवान् (वडे भाई के रहते राज्यग्रहण के कार्य को हर्ष ने अति दुष्कर कर्म कहा है), या तु मयि राजाज्ञा सा दग्वेऽपि दाहकारिणी धन्वनीवाङ्गारवृष्टि ॥ कथमिव सम्भावितमन्यन्तमनुचितमिदमार्येण। सौमित्रिविस्मृता वा वृकोदरप्रभृतय। अनपेक्षितभक्तजना नासीदियमार्यस्येदृशी प्रभविष्णुता' (षष्ट उच्छ्वास, पृ० ३१७–३२०)।

अत हर्ष ने मन ही मन निश्चित कर लिया कि यदि राज्यवर्धन तपोवन चले जायेंगे तो वे मन से भी पृथ्वी की चिन्ता न करेंगे और वृथा बहुत से विकल्प करने के बजाय वे चुपचाप आर्य के पीछे चल देंगे—"अपि चार्ये तपोवन गते जिजीविषु को मनसापि मही ध्यायेत्।—किंवा ममानेन वृथा बहुधा विकल्पितेन तूष्णीमेवार्यमनुगमिष्यामि" (षष्ट उच्छ्वास, ३२०)।

हर्षचरित के उपरोक्त विवरण से प्रकट है कि हर्ष ने अपने बडे भाई की वितृष्णा का जोरदार प्रतिरोध किया था, और पुष्यभूतिवश की परम्परा और भारतीय सस्कृति के आदर्शानुसार राज्यवर्धन को 'राज्यग्रहण' करने को विवश कर दिया था, तथा स्वय लक्ष्मण और भीम की तरह उनका भक्त अथवा सेवक होने मे ही अपना गौरव माना था।

राजभवन में जब राज्यवर्धन और हर्ष के बीच यह सब वार्तालाप चल रहा था कि उसी समय सहसा शोक से विह्वल आँखो से आँसू बहाता, और क्रन्दन करता हुआ राज्यश्री का सवादक नाम का सुपरिचित परिचारक सभाभवन में आकर उनके सामने गिर पडा—

> "सहसैव प्रविश्य शोकविवश्य प्रगरितनयनसलिलो राज्यश्रिय परिचारक सवादको नाम प्रज्ञाततमो विमुक्ताक्रन्द सदस्यात्मानमपातयत्"—(षष्ट उच्छ्वास, पृ० ३२१)।

सवादक ने बडे दु ख के साथ राज्यवर्धन और हर्ष को यह शोकपूर्ण समाचार दिया—"देव पिशाचो के जैसे नीच आत्मा वाले प्राय छिद्र देख कर

प्रहार करते हैं, क्योंकि जिस दिन अवनिपति (प्रभाकरवर्धन) के निधन का समाचार मालवराज को मिला, उसी दिन उस दुष्ट ने महाराज ग्रहवर्मन की हत्या कर डाली और महारानी राज्यश्री को एक लुटेरे की स्त्री की तरह पैरों में बेड़ी पहना कर कान्यकुब्ज के कारागार में डाल दिया। यह भी खबर है कि वह दुष्ट सेना को नेता-विहीन समझ कर इस प्रदेश (थानेश्वर) पर भी आक्रमण कर अधिकार स्थापित करना चाहता है—

> 'देव! पिशाचानामिव नीचात्मनां चरितानि छिद्रप्रहारीणि प्रायशो भवन्ति। यतो यस्मिन्नहन्यवनिपतिरुपरत इत्यभूद्वार्ता तस्मिन्नेव देवो ग्रहवर्मा दुरात्मना मालवराजेन जीवलोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजितः। भर्तृदारिकापि राज्यश्री कालायसनिगडयुगलचुम्बितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता। किंवदन्ती च यथा किलानाथं साधनं मत्वा जिघृक्षुः दुर्मतिरेतामपि भुवमाजिगमिषति'—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२७)।

इस परिस्थितिपूर्ण समाचार को सुनकर राज्यवर्धन का खून खौल उठा। दुर्मद मालवराज के इस कुकृत्य से पिता की मृत्यु का शोक भूल कर क्रोध से उबलते हुये राज्यवर्धन ने तपोवन जाने का विचार त्याग शस्त्रग्रहण करने का निर्णय घोषित करते हुए कहा[1]— 'पुष्यभूतियों के प्रति मालवराज का यह दुर्व्यवहार वैसा ही है जैसा कि हरिणों का सिंह की पूँछ खींचना, मेंढकों का नाग पर प्रहार करना, बछड़ों का व्याघ्र को बन्दी बनाना, अथवा अन्धकार द्वारा सूर्य का तिरस्कार किया जाना।'

फलतः अत्यन्त आवेश के साथ राज्यवर्धन ने मालवराज को उसके कुकर्मों का स्वाद चखाने के लिये[2] अपने सेनापति और बाल्यसाथी भण्डि के साथ दस

---

1 "सोऽस्य कुरङ्गकैः कचग्रहः केसरिणः, भेकैः करपातः कालसर्पस्य, वत्सकैर्वन्दिग्रहो व्याघ्रस्य तिमिरैस्तिरस्कारो रवेः, यो मालवैः परिभव पुष्यभूतिवंशस्य"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२८)।

2 मालवराज के विरुद्ध कूच की घोषणा करते हुए राज्यवर्धन ने कहा था—

'गतोऽहमद्यैव मालवराजकुलप्रलयाय'

'मैं मालवराज के कुल के प्रलय अथवा विनाश के लिये आज ही चला'—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२८)।

हजार घुड़सवार सेना लेकर शीघ्र ही कन्नौज की ओर कूच करने की घोषणा कर दी—

"अयमेको भण्डिरयुतमात्रेण तुरङ्गमाणामनुयातु माम्।" इत्यभिधाय चानन्तरमेव प्रमाणपटहमादिदेश" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२४)।

अभियान से पूर्व राज्यवर्धन ने हर्ष को आदेश दिया कि वह सब सामंतों और शेष सेना के साथ राजधानी में ही बना रहे। हर्ष जो संवादक से राज्यश्री की दुखभरी कहानी सुन कर बड़े भाई की तरह ही मालवराज पर कुपित हो रहा था, राजधानी में ही रुके रहने के आदेश से बहुत दुखी हुआ। व्यथित राजकुमार ने साथ लेजाये जाने के लिये बहुत आग्रह किया और स्वीकृति प्राप्त करने के लिए नतमस्तक होकर भाई के चरणों पर गिर पड़ा। दुख से कातर अपने छोटे भाई को राज्यवर्धन ने हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया और सस्नेह उसे समझाया कि दो सिंहों का मिल कर एक हिरन का पीछा करना शोभनीय नहीं है, इसलिये उसे रुके रहने में क्लेश नहीं मानना चाहिए—

"हरिणार्थमतिक्लेषेण सिंहस्य भार। तिष्ठतु भवान्।" इत्यभिधाय च तस्मिन्नेव वासरे निजगामाम्यमित्रम्" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२६–२७)।

इस तरह हर्ष को समझा-बुझा कर राज्यवर्धन बिना समय गवाये मालवराज को ग्रसने के लिए द्रुतवेग से थानेश्वर से कन्नौज की ओर बढ़ चला।

हर्षचरित में मालवराज का नाम उल्लिखित नहीं है। यह मालवराज कौन था, उसका नाम और वंश क्या था, इस प्रश्न का समाधान विद्वानों के लिये एक जटिल समस्या बना हुआ है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी का अनुमान है कि यह मालवराज शायद पश्चिम-मालवा के राजा यशोधर्मन विक्रमादित्य का पुत्र शीलादित्य था, और उसने हर्ष के मधुबन लेख में उल्लिखित पूर्वी मालवा के राजा देवगुप्त से मिलकर कन्नौज पर आक्रमण किया था।[1]

अन्य बहुत से विद्वान् कन्नौज के आक्रमणकारी और ग्रहवर्मन के हत्यारे मालवराज को अनुमानतः हर्ष के मधुबन-लेख वाला देवगुप्त मानते हैं। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, ५९५ ई० सन् के लगभग कल्चुरि राजा शंकरगण ने मालवा पर अधिकार कर लिया था। शंकरगण के बाद उसका बेटा बुद्धराज कल्चुरि सिंहासन पर बैठा। चालुक्य महाराज

---

[1] Harsha, p 16

मालवा के महाकूट स्तम्भलेख,[1] जो ५०२ ई० सन् का माना जाता है, से मालूम होता है कि उस ने बुद्ध नाम के राजा को युद्ध में पराजित किया था। यह बुद्ध कल्चुरि राजा बुद्धराज माना जाता है। अत: प्रकट है कि बुद्धराज लगभग ६०२ ई० सन् तक अपने पिता के सिंहासन पर बैठ चुका था। इस बुद्धराज के विदिशा अभिलेख से, जो कल्चुरि सवत् ३६० अथवा ई० सन् ६०७-०८ में पड़ता है, ज्ञात होता है कि उसका अपने पिता शंकरगण की तरह मालव-प्रदेश पर भी अधिकार था। बुद्धराज के अन्य अभिलेखों से यह भी मालूम होता है कि मालवा के अलावा लाट और गुजरात पर भी कुछ समय तक उसका अधिकार रहा[2] और अंत में लगभग ६२८-२९ ई० सन् में सौराष्ट्र अथवा वल्लभी के मैत्रिक राजाओं ने कल्चुरियों को वहा से निकाल बाहर किया (J B O R. S, 1933, p 407)।

ऊपर दिये गये प्रमाणों के आधार पर हमें यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नही प्रतीत होती कि जिस मालवराज ने ग्रहवर्मन की हत्या की थी, वह शायद कल्चुरि बुद्धराज ही रहा होगा।[3]

---

१ Indian Antiquary, Vol XIX, p 16

२ Sarasvami Plates, E I, VI, pp 294–300

३ श्री हेमचन्द्र रायचौधरी यह स्वीकार करते हैं कि लगभग ६०८ ई० में मालवा के विदिशा पर कल्चुरियों का अधिकार हो गया था और लाट प्रदेश भी छठी शताब्दी के अन्त और सातवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उनके प्रभुत्व में चला आया था। यदि शंकरगण के अभिलेखों को ध्यान में रखा गया होता तो डा० गांगुली के इस कथन को भी अमान्य नहीं किया जा सकता था कि लगभग ५९५ ई० में ही मालवा पिछले गुप्तों के हाथ से निकल कर कल्चुरियों के हाथों में चला गया था। ऐसी स्थिति में यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि शायद बुद्धराज ही ग्रहवर्मा का हत्यारा और हर्षचरित का मालवराज था। देखिये—Political History of India, VI ed., p 606, fn 2, & p 607, fn 3

देवगुप्त को हर्षचरित के मालवराज से समीकृत करते हुये उसे परवर्ती गुप्तवंश का बताते हुये श्री रायचौधरी लिखते हैं —"It is difficult to determine the position of Deva Gupta in the dynastic list of the Guptas He may have been the eldest son of

मधुबन और बांसखेड़ा के अभिलेखों वाला देवगुप्त शायद कन्नौज पर अधिकार करने वाला हर्षचरित में उल्लेखित 'गुप्त' (गौड़ का राजा) था। सम्भवतया माल्वराज (बुद्धराज) के कन्नौज आक्रमण में वह उसका मुख्य साथी और सहयोगी रहा। लेकिन प्रतीत होता है कि माल्वराज के पराभव के बाद उसने राज्यवर्धन को मारकर कुछ समय के लिये कन्नौज अपने अधिकार में कर लिया था। इसका आगे उल्लेख किया जायेगा।

हर्षचरित के विवरण से यह भी लक्षित है कि कन्नौज पर अधिकार करने के बाद मालवराज थानेश्वर की ओर बढ़ा जा रहा था—

Mahasen Gupta, and an elder brother of Kumar Gupta & Madhava Gupta "—Political History of Ancient India, pp 607-608

हारनोल देवगुप्त के सम्बन्ध में लिखते हैं—"Deva Gupta may have represented a collateral line of the Malva Family who continued to push a policy hostile to the Pushyabhuties and the Maukharis, while Kumar, Madhava, the Gupta Kulputra who connived at the escape of Rajyashri from Kushasthala (Kanauj), and Adityasen, son of Madhava, who gave his daughter in marriage to a Maukhari may have belonged to a friendly branch "—(J R A S, 1903, p 562)

श्री राधाकुमुद मुखर्जी लिखते हैं—"Deva Gupta must have been the elder brother of Madhav Gupta (as well as Kumar Gupta), and preceeded to the throne of Malwa afrer his father Mahasen Gupta" Harsha, p 54

'देवगुप्त' को परवर्ती गुप्तवंश का अनुमान करने के लिये, कल्पना के सिवाय उपरोक्त विद्वानों ने कोई ठोस व प्रामाणिक साक्षी नहीं उपस्थित की है। श्री रायचौधरी, परवर्ती गुप्तवंश की तालिका में देवगुप्त का स्थान निश्चित करने में इसीलिये कठिनायी का अनुभव किये हैं। अतः 'देवगुप्त' को परवर्ती गुप्तवंश का माना जाना मात्र अनुमान है।

'किंवदन्ति च यथा किल तं बलमनायकं मत्वा जिघृक्षु सुदुर्मतिरिमामपि भुवमाजिगमिषतीति' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२२)।

इसमें सन्देह नहीं कि थानेश्वर को दबाये बिना मालवराज कन्नौज पर अधिकार नहीं रख सकता था। कन्नौज का महाराज ग्रहवर्मन थानेश्वर की राजकन्या का पति था। अतः थानेश्वर और कन्नौज परस्पर प्रकृत मित्र व सम्बन्धी थे और इसलिये कन्नौज का शत्रु स्वभावतः थानेश्वर का भी शत्रु था। मालवराज का थानेश्वर की ओर बढ़ने से यह भी प्रकट है कि राज्यवर्धन और मालवराज में मुठभेड़ कन्नौज और थानेश्वर के बीच ही कहीं हुयी होगी। इस मुठभेड़ में राज्यवर्धन ने बहुत ही सरलता से मालवराज के मद को चूर्ण कर उसकी सेना और शक्ति को रौंद डाला था। और मालवराज की सेना साज-सामान के साथ बन्दी बना ली गयी थी। मालव शिविर की लूट में मालवराज के सहस्रों हाथी, घोड़े और चमकीले और रंग-बिरंगे अलंकार अथवा आभूषण, शुद्ध मोतियों के हारहार, श्वेत चवर, सुवर्णदण्डयुक्त श्वेतछत्र, सिंहासन आदि राजोपकरण शामिल थे। मालव सेना के साथ मालवा के राजागण भी बेड़ियों में जकड़ कर कैद कर लिये गये थे। यह विवरण मालवराज के पूर्ण पराभव को तो प्रकट करता है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि मालवराज युद्ध में काम आया था या मालवा के अन्यान्य सामन्त राजाओं की तरह कैद कर लिया गया था (हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०५)।

कुमार हर्षवर्धन राजधानी में उत्सुकता के साथ अपने भाई की विजययात्रा के समाचारों और उनको वापसी की प्रतीक्षा कर रहा था, किन्तु दैव इस सुन्दर प्रतीक्षा को शोक में डुबा देगा, यह हर्ष को तब मालूम हुआ जब कुछ समय बीतने पर अन्त में एक दिन राज्यवर्धन की अश्वसेना के प्रधान बृहदश्वार कुन्तल ने अभियान से लौटकर राजकुमार को यह दारुण समाचार दिया कि यद्यपि राज्यवर्धन ने खेल ही खेल में सरलता से मालवराज को जीत लिया था, किन्तु गौडाधिपति के मिथ्या व्यवहार पर विश्वास करने से वह शस्त्रहीन अवस्था में अपने ही भवन में मार डाला गया—

> "तस्माच्च हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचित-विश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितम-श्रौषीत्"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२१)।

हर्षचरित के विवरण से प्रतीत होता है कि इस गौडाधिप का नाम 'गुप्त' था। बाण ने सप्तम उच्छ्वास में यह सूचित किया है कि राज्यवर्धन की हत्या हो

जाने अथवा निधन हो जाने पर 'गुप्त' नाम के व्यक्ति ने कुशस्थल अथवा कन्नौज पर अधिकार कर लिया था—

"देव ! देवभूय गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०४)।

राज्यवर्धन की हत्या गौडाधिप ने कुशस्थल लेने की आकांक्षा से प्रेरित हो कर ही की थी, अतः राज्यवर्धन की हत्या अथवा निधन के बाद जिस 'गुप्त' नाम के व्यक्ति ने कुशस्थल (कन्नौज) पर अधिकार स्थापित किया वह गौडाधिप ही था।[1] सम्भव है इस 'गुप्त' का ही हर्ष के मधुबन और बांसखेड़ा के अभिलेखों में 'देवगुप्त' नाम से उल्लेख हुआ है, जो दुष्ट अश्व के सदृश्य (दुष्टवाजिन इव श्री देवगुप्त) था।

ह्वेनसांग ने राज्यवर्धन के हत्यारे गौडाधिप का नाम शशांक दिया है। चीनी यात्री ने लिखा है कि हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन को, सिंहासनारूढ़ होने के शीघ्र बाद ही कर्णसुवर्ण (पूर्वी भारत) के दुष्ट राजा शशांक ने, जो बौद्धधर्म का विनाशक हुआ, धोखे से मार डाला था।[2]

बाण और हर्षचरित के विवरणों को देखते हुए प्रकट है कि गौडाधिप का पूरा नाम शशांकगुप्त या देवगुप्त शशांक था।[3]

---

१ डा० आर० जी० बसाक का अनुमान है कि गौडाधिप शशांक सम्भवतया मञ्जुश्रीमूलकल्प में उल्लेखित नागवंशी गौड राजा जय (जयनाग) और डा० बॉरनेट द्वारा प्राप्त अभिलेख में उल्लेखित कर्णसुवर्ण के राजा जयनाग के कुल से सम्बन्धित था—अथवा वह गुप्त व नाग किसी से भी सम्बन्धित नहीं था।
History of North-Eastern India, pp 138–140

२ On Yuan Chwang's Travels, Thomas Watters, Vol I p 343 Records of the Western World, Beal, Vol I, pp 210-11

३ श्रीहॉल का मत है कि जिस गौडाधिप ने राज्यवर्धन की हत्या की थी 'गुप्त' उसी का नाम है (Vasavadatta p 52)।
डा० ऐलन ने कुशस्थल लेने वाले 'गुप्त' और राज्यश्री को कन्नौज के बन्धनागार से मुक्त कराने वाले 'गुप्तकुलपुत्र' को एक मान कर हॉल के मत का खण्डन करते हुये कहा है कि 'गुप्त शशांक नहीं हो सकता—"Hall

हर्षचरित के विवरण से अनुमान होता है कि मालवराज को थानेश्वर और कन्नौज के मध्य किसी स्थान पर युद्ध में पछाड़ने के बाद राज्यवर्धन कन्नौज पर अधिकार करने और अपनी प्रिय बहिन राज्यश्री को मुक्त करने हेतु मौखरी राजधानी कन्नौज की ओर बढ़ा जा रहा था, लेकिन अपने गन्तव्य को पहुँचने से पूर्व वह मार्ग में ही गौडाधिपति द्वारा धोखे से मार डाला गया। फलतः नेतृत्वविहीन होने पर सेनापति भण्डि भी तब बंदी मालव सेना को लेकर कन्नौज अधिकृत करने का कार्य अधूरा छोड़ थानेश्वर वापस चला आया।

---

supposed the man who slew Rajyavardhana to be the same as he who took Kanyakubja but it is clear from the second reference to Gupta as a 'Kulputra' or noble, that he cannot be Sasanka" Coins of the Gupta Dynasties, Intro, p LXIV

डा० ऐलन का मत कि कुशस्थल लेने वाले 'गुप्त' और राज्यश्री को मुक्त करने वाले 'गुप्त कुलपुत्र को' एक मानना सही नहीं है, ठीक है।

हर्षचरित के सप्तम उच्छ्वास में बाण ने राज्यवर्धन के भूलोक से सिधारने पर गुप्त नाम के व्यक्ति द्वारा कुशस्थल पर अधिकार करने का उल्लेख किया है और अष्टम उच्छ्वास में बाण ने लिखा है कि 'गुप्त नाम के एक कुलपुत्र' ने गौड से डरते-डरते छिप कर राज्यश्री को बन्धनमुक्त कर दिया था—

"कान्यकुब्जाद्गौडसंभ्रमं गुप्तितो गुप्तनाम्ना कुलपुत्रेण निष्कासनं" (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४३)।

प्रकटतः सप्तम उच्छ्वास में उल्लेखित 'गुप्त' कुशस्थल पर अधिकार करने वाला व्यक्ति था और अष्टम उच्छ्वास में उल्लेखित 'गुप्त नामक कुलपुत्र' कुशस्थल अथवा कान्यकुब्ज के बन्दनागार से राज्यश्री को मुक्त करने वाला व्यक्ति था और यह कार्य उसने कान्यकुब्ज पर अधिकार करने वाले गौडाधिप गुप्त या देवगुप्त की आँख बचाकर छिपकर किया था। अतः स्पष्ट है कि जिस गुप्त ने कन्नौज अधिकृत किया वह ह्वेनसांग-उल्लेखित गौडाधिप शशांक था, और जिस गुप्त कुलपुत्र ने राज्यश्री को मुक्त किया वह कन्नौज अधिकृत करने वाले से भिन्न अन्य व्यक्ति था। सम्भवतया वह शशांक गुप्त के अधीन कोई उच्च सेनाधिकारी रहा हो।

गौडाधिप शशांक गुप्त ने राज्यवर्धन के विरुद्ध किस तरह षडयन्त्र रचा या जाल सिरजा था, इसका हर्षचरित में स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है, फिर भी उक्त घटना के सम्बन्ध में कुन्तल ने जो विवरण दिया था उसमें गौडाधिप के जाल का भेद अन्ततः बहुत कुछ आभासित हो जाता है। कुन्तल ने हर्ष को 'राज्य' के निधन का समाचार देते हुये, कहा था, 'गौड के अधिपति' ने 'राज्य' को मिथ्या व्यवहार से विश्वास में फँसा कर अकेले शस्त्रविहीन दशा में उसे अपने ही भवन में मार डाला।[1] कुन्तल के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि गौडाधिपति ने कूटनीति और छल से राज्यवर्धन को भुलावा देकर उसे अकेले भेंट करने के लिये अपने शिविर में आमंत्रित किया और योजनानुसार उसे धोखे से मार डाला। हर्ष के बांसखेडा और मधुवन लेखों में भी राज्य के धोखे से मारे जाने का उल्लेख किया गया है। इन लेखों के अनुसार राज्यवर्धन अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद, सत्य के अनुरोध पर (सत्यानुरोधेन) शत्रु के शिविर में गया और मार डाला गया। हर्षचरित के विवरण से यह भी प्रकट होता है कि गौडाधिप शशांक अपनी कपटपूर्ण कूटनीति के लिये कुप्रसिद्ध था। अपने भाई के निधन की चर्चा करते हुये हर्षचरित में एक स्थल पर हर्ष ने कहा है कि सिवाय गौडाधिप के दूसरा कौन इस तरह की घृणित हत्या का कार्य कर सकता है—

> गौडाधिपाधममपहाय कस्तादृशं महापुरुषं तत्क्षण एव निर्व्याजभुजवीर्यनिर्जितसमस्तराजकं मुक्तशस्त्रं कल्यायोनिमिव कृष्णवर्त्मप्रसूतिरीदृशेन सर्ववीरलोकविगर्हितेन मृत्युना शमयेदेवमार्यम्'—(हर्षचरित उच्छ्वास ६, पृ० ३३१)।[2]

हर्षचरित के इन उद्धरणों से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि गौडाधिप शशांक ने राज्यवर्धन को धोखे से अपने शिविर में बुला कर उसके प्राणपखेरू हरे

---

१ 'गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत'—षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२९

२ मधुवन और बांसखेडा अभिलेखों में 'देवगुप्त' को भी राजाओं में प्रमुख और दुष्ट अश्व की तरह कह कर हर्ष ने निन्दा की है, जिससे हमारे हमारे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि निन्दनीय देवगुप्त और गौडाधिप दोनों एक ही व्यक्ति थे।

थे।[1] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हर्षचरित के विवरण की पुष्टि की है। उसने लिखा है कि राज्यवर्धन के समय में शशांक कर्णसुवर्ण का राजा था। शशांक 'राज्य' के

१ श्री रायबहादुर आर० पी० चंदा और श्री आर० सी० मुजमदार का मत है कि शशांक ने राज्यवर्धन को न्यायोचित युद्ध में परास्त किया था। उनका यह भी कहना है कि राज्यवर्धन कैद कर लिया गया था और उसी हालत में वह शशांक द्वारा मार डाला गया (Gaudaraimala, pp 8-10 Early History of Bengal, p 17)

इन विद्वानों के अनुमान का श्री आर० जी० बसाक ने खण्डन करते हुए अपना मत व्यक्त करते बहुत सही कहा है कि " We cannot accept *the Rai Bahadur's view, which has been supported by* Dr R C Majumdar that Rajyavardhana was possibly 'defeated in a fair fight,' and subsequently killed by Sasanka while in a captive state Had it been a case of death in a fair fight, Harsha probably would not have started on a expensive and elaborate expedition against Sasanka at this tender age He obtained ready help from his vassals and other independent rulers, because of his appeal to them against the treachery comitted by the Bangal King There is no record of any fight fought between Rajya & Sasanka, and it may be presumed that after the Malava King's defeat by the enormous army of Rajya, Sasanka did not consider it expedient to enter into an open fight Both these Writers are reluctant to hold the view that there was at all any treachery played by Sasanka in killing Rajyavardhan, inspite of the clear accounts of both *Bana and Yuan Chwang* *Majumdar* remarks that we should 'revise the opinion about Sasanka as handed down by historians' The spirit of Bana's work is to give vent to his patron king Harsha's, as well as his

सुयश और शक्ति से भय खाता था, इसलिये उसने षड्यन्त्र रच कर उसे (राज्य को) एक सभा में आमन्त्रित किया और मार डाला।[1]

शशांक ने राज्य को किस बात के लिए आमंत्रित किया था—हर्षचरित में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। लेकिन हर्षचरित के भाष्यकार शंकर ने शशांक को 'राज्य' का हत्यारा बतलाते हुये कहा है कि गौड के राजा ने एक दूत द्वारा थनेश्वर के राजा राज्यवर्धन को अपनी बेटी देने का वचन देकर उसे अपने शिविर में आमंत्रित किया था। अतः 'राज्य' जब अपने अनुचरों सहित शत्रु-गृह में भोजन कर रहा था तभी छल से शशांक ने उसकी हत्या कर दी।[2] हर्षचरित

---

own wrath against Sasanka for his treachery that Bana gives him contemptuous epethets like Gaudabhuanga "

History of North Eastern India, pp 146-47

डा० गांगुली की सम्मति है कि यदि राज्य शशांक द्वारा खुले युद्ध में परास्त किया गया होता तो हर्ष इस पराभव की घटना का उल्लेख अपने लेखों में कभी न करता, क्योंकि प्राचीन काल में अपने पराभव और पराजय का अपने ही अभिलेखों में उल्लेख करने का रिवाज नहीं मिलता। डा० गांगुली की पूरी सम्मति जानने के लिये देखिये—Indian Historical Quarterly, Sept 1936, Vol XII, No 3 p 463

१ ह्वेनसांग ने भी शशांक के द्वारा राज्यवर्धन का षड्यंत्र से मारे जाने का उल्लेख किया है—"Rajyavardhana came to the throne as the elder brother, and ruled with virtue At this time the king of Karnasuvarna (Kei-Lo-na-su-fa-la-na) a kingdom of Eastern India—whose name was Sasanka (She-Shang-kia), frequently addressed his ministers in these words—"If a frontier country has a virtuous ruler, this is unhappiness of the (mother) kingdom" On this they asked the king to a conference and murdered him Records of Western Countries (Turner's Oriental series, Beal Vol I, B V, p 210)

२ "तथाहि, कृन्तोऽस्तो विनाशो येन स शशाङ्कनामा गौडाधिपति। सूराणा राज्यवर्धनानुचराणामनुसहिताना सम्प्रहृतवरात। तथाहि शशाङ्केन दूतमुखेन

में हस्तिसेना के अधिपति (गजसाधनाधिकृत) स्कन्दगुप्त, शत्रु राजा की कुचेष्टाओं ने हर्ष को अवगत कराता हुआ बहुत से ऐसे ऐतिहासिक एवं पौराणिक उदाहरण प्रस्तुत करता है जो इस बात को लक्षित करते हैं कि किस तरह भूतकाल में अनेक राजा अपने सरल स्वभाव, विश्वासपूर्णता और असावधानता के कारण अपने शत्रुओं द्वारा छल से मार डाले गये थे। शत्रुओं से प्रलोभित होने का एक प्रमुख कारण स्कन्दगुप्त ने—

"अतिस्त्रीसङ्गरतमनङ्गपरवशं शुङ्गममात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितमकारयत्"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५३)

'स्त्री' को इंगित किया है। बसाक के अनुसार इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि बाण इस बात से अवगत न होता कि 'राज्य' की हत्या स्त्री के प्रलोभन में पड़ने से हुई है तो वह स्कन्दगुप्त द्वारा हर्ष का ध्यान विशेष रूप से इस ओर (अतिस्त्रीसंग) आकृष्ट न करता।[1]

गौड़ का राजा शशांक (देवगुप्त) शायद आर्यावर्त की विकेन्द्रित स्थिति से उत्साहित हो कर ही राज्य-प्रसार की लालसा से कन्नौज की ओर आया था। अनुमानतः 'राज्य' द्वारा मालवराज (बुद्धराज) और अन्यान्य मालव सामन्तों के रौंद दिये जाने पर शशांक भी आतंकित हो चला था और इसलिए उसे तब अकेले थानेश्वर के प्रवीर राजा से भिड़ने की हिम्मत न हो सकी। इसीलिये मालूम होता है उसने कूटनीति की शरण ली थी, और छल से राज्यवर्धन का अन्त कर डाला। इस घटना के कारण पर प्रकाश डालते हुए ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि शशांकराज

कन्याप्रदानमुक्त्वा प्रलोभितो राज्यवर्धन स्वगेहे सानुचरेण भुञ्जमान एव छद्मना व्यापादितः।"

१ "He lays special stress upon the blunders of heedless men on account of women" He would perhaps not have invited the attention of Harsha to them, unless Bana was conscious that Rajya's own death must have been due to a cause which involved his heedless action concerning some women "(History of North Eastern India, pp 148-149)

(गौडाधिप) राज्यवर्धन की उन्नत सैनिक निपुणता से घृणा अथवा ईर्ष्या करता था, इसलिये उसने एक षडयंत्र रच कर उसकी हत्या कर डाली।[1]

---

१ At the time, when Rajyavardhana was on the throne, the king of Karnasuvarna, in Eastern India, whose name was Sasanka-raja, hating the superior military talents of this king, made a plot and murdered him"

The Life of Hieuen Tsang, S Beal, p 88

खुले युद्ध के बजाय छल से काम लेने के कारण पर प्रकाश डालते हुये श्री बसाक लिखते है—" It maybe presumed that after the Malava king s' defeat by the enormous army of Rajya, Sasanka did not consider it expedient to enter into an open fight"—History of North Eastern India, p 14

श्री पणिक्कर ने शशांक द्वारा षडयंत्र से राज्यवर्धन के मारे जाने के कारण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"A better motive could perhaps be found in the fact that Rajyavardhana, after defeating the Malava king, attempted to extend his territory eastward and conquer the king of Karnasuvarna, who finding himself unable to meet the Raja of Thaneswar in open field foully murdered him after making a show of submission"

Harsha, Panikkar, p 13

अध्याय - ५

हर्ष का राज्यारोहण और साम्राज्य-प्रसार

□

राज्यवर्धन की हत्या हो जाने पर थानेश्वर राज्य का एकमात्र उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई हर्ष ही रह गया था। बाण ने इंगित किया है कि देव हर्ष को इच्छा के विरुद्ध सिंहासन पर बैठने को विवश होना पड़ा था—

अनिच्छन्तमपि बलादारोपितमिव सिंहासनम्

(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११९)।

सम्भवतया पिता, भाई और बहनोई ग्रहवर्मन की मृत्यु की घटनाओं से हर्ष का मन सांसारिक जीवन के प्रति क्षुब्ध हो चला था। इसीलिये थानेश्वर के बूढ़े सेनापति सिंहनाद ने शोकविह्वल हर्ष को सान्त्वना देते हुये, उसे राजकीय कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होकर संतप्त जनता की शान्ति और सुरक्षा के हेतु विराग छोड़ राजपद-ग्रहण करने को प्रेरित किया था। कौटिल्य जैसे महान् प्राचीन राजनीतिज्ञों का कहना था कि राजा को प्रजा के सुख को ही अपना सुख और प्रजा के दुःख को अपना दुःख मानना चाहिये, और निजी सुख-दुःख को प्रधानता नहीं देनी चाहिये। इसी परम्परा पर बूढ़े सेनापति सिंहनाद ने भी हर्ष को राजधर्म का स्मरण कराते हुए उसे कर्त्तव्य अभिमुख होने को उत्साहित करते हुए कहा था[1]—'अपने पिता,

---

१ "ये नैव च ते गत पिता पितामह प्रपितामहो वा तमेव मा हासीस्त्रिभुवन-स्पृहणीय पन्थानम्। असहाय कुपुरुषोचिता शुच प्रतिपद्यस्व कुलक्रमागता

पितामह, और प्रपितामाह के मार्ग का अनुसरण करो जो त्रिभुवन मे श्लाघनीय है। शोक कुपुरुषों के लिये छोड कर, कुलपरम्परागत लक्ष्मी को इस प्रकार ग्रहण करो जैसे सिंह कुरग को। देव महाराज (प्रभाकरवर्धन) स्वर्गधामवासी हो चुके है, और राज्यवर्धन की दुष्ट भुजग-रूपी गौड राजा के दमन से मृत्यु हो गयी है। इस सर्वनाश के बाद अब केवल तुम्ही शेष रह गये हो जो कि पृथ्वी की रक्षा का भार ले सकता है। अत अब तुम अपनी अरक्षित अथवा आश्रयहीन प्रजा को सान्त्वना दो और उसे आश्वस्त करो।' सिंहनाद की यह पुकार राजकुमार को कर्त्तव्यारूढ करने मे सफल हुयी और शोक-मोह को छोड कर हर्ष ने अपने बूढे सेनापति को आश्वस्त करते हुये वचन दिया—'मान्य आपने करणीय ही कहा है'—

"करणीयमेवेदमभिहित मान्येन"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४२)।

इस विवरण से प्रकट है कि यद्यपि ससार के छल—प्रपच और नि सारता के कारण हर्ष का कोमल मन क्षण भर के लिये सासारिक सुखो और राज्य के ऐश्वर्य से दूर हट गया था, लेकिन अत मे कर्त्तव्य की प्रेरणा पर उसने अविलम्ब राजपद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। पणिक्कर का अनुमान है कि शायद राज्यवधन का कोई पुत्र विद्यमान था, जिस कारण हर्ष राजपद लेने मे हिचकिचा रहा था।[1] लेकिन प्रतिष्ठित विद्वान् का यह अनुमान अहेतुक और मन कल्पित है।

केसरीव कुरङ्गी राजलक्ष्मीम्। देव! देवभूय गते नरेन्द्रे, दुष्टगौडभुजङ्गजग्ध-जीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन्महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्व शेष"—"जिस मार्ग से तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह गये है, त्रिभुवन मे श्लाघनीय उस मार्ग की हँसी मत उडाओ। कुपुरुषो के लिए उचित शोक को छोड कर परम्परागत राजलक्ष्मी को उस प्रकार प्राप्त करो जैसे सिंह हिरनी को, देव, महाराज के देवत्व प्राप्त करने पर एव दुष्ट गौडाधिप रूपी सर्प द्वारा राज्यवर्धन के डँस लिये जाने से इस महाप्रलय में पृथ्वी के धारण के लिये अब तुम्ही शेष (अवशिष्ट अथवा सर्वस्व) हो'—

आश्रयहीन प्रजा को आश्वस्त करो। "समाश्वासय अशरणा प्रजा" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४० और पृ० ३४१)।

1 "The young prince's reluctance may have been due merely to the recognition of the fact that inheritance which he was called upon to succeed to, was not a particularly comfortable one, especially as the feudatories had shown

हर्षचरित का सम्पूर्ण विवरण और हर्ष के प्रति सिंहनाद की यह उक्ति कि—'पृथ्वी के धारण करने के लिये तुम्हीं अब एक शेष रह गये हो, आश्रयहीन प्रजा को आलम्ब करो'—इस बात का अन्तिम प्रमाण माना जाना चाहिये कि राज्यवर्द्धन निःसन्तान मरा था और इस कारण प्रभाकरवर्द्धन और राज्यवर्द्धन की मृत्यु के बाद पुष्पभूतिसिंहासन के लिये सिंहनाद के शब्दों में वही (हर्ष) एकमात्र उत्तराधिकारी शेष रह गया था। बहुत सम्भव है कि राज्यवर्द्धन का अभी विवाह भी न हुआ था।[1] यदि सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व राज्यवर्द्धन का विवाह हो गया होता तो बाण उसका हर्षचरित में उल्लेख करना नहीं भूल सकता था।

पणिक्कर और वि० स्मिथ प्रभृति कुछ विद्वानों के अनुसार राज्य के सामन्त और सरदार भी हर्ष के पक्ष में नहीं थे, और विद्रोह करने पर आमादा हो रहे थे क्योंकि वे राज्य के छोटे भाई को उत्तराधिकार नहीं देना चाहते थे।[2] यह अनुमान तो उक्त विद्वानों की प्रज्ञजात निजी कल्पना ही है। हर्षचरित और ह्वेनसांग किसी के भी विवरणों से यह प्रकट नहीं होता कि थानेश्वर के सामन्तगण हर्ष के विरुद्ध विद्रोही हो रहे थे। इसके विपरीत हर्षचरित से तो यही ज्ञात होता है कि थानेश्वर के लोग, प्रमुख अधिकारी, सरदार व सामन्त एकमत से हर्ष के पृष्ठपोषक थे। हर्षचरित के अनुसार राज्यवर्द्धन का प्रत्यागत प्रधान अश्वसेनापति (बृहदश्ववार) जब उसकी मृत्यु का समाचार लेकर हर्ष के पास आस्थानमण्डप (दरबार) में पहुँचा था तो उसके साथ विषाद भरे लोग भी पीछे-पीछे प्रविष्ट हुये थे—

'अनुप्रविशता विषण्णवदनेन लोकेनानुगम्यमानम्"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२९)।

---

themselves refractory and rebellious It may also be that his brother Rajyavardhana had left an heir to the kingdom in which case Harsha might have properly enough felt scruples about disinheriting him "—Shri Harsha of Kanauj, K M Pannikar, pp 14–15

1 सी वी वैद्य का मत है कि राज्यवर्द्धन का विवाह भी नहीं हुआ था—M H I Vol, I, p 7

2 " The nobles seem to have hesitated before offering the Crown to his youthful brother '—The Early History of India, V A Smith, 3 rd Ed , 1914, p 337

HC, C & T, p 202

और शायद सामतगण भी उस समय राजदरबार में विद्यमान थे—(Hc. C & T, p 188)। यह भी प्रेक्षणीय है कि हर्ष ने जब गाडाधिप के विरुद्ध अभियान की तैयारी की तो प्रमुदित प्रजा जय-जयकार कर उठी थी—

"प्रमुदितप्रजाजन्यमानजयशब्दकोलाहलो"—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३६१),

तथा राजप्रसाद का द्वार सहायता के लिये आये हुये सामत राजाओ से परिपूर्ण था—

"राजाभिरापूपूरे राजद्वारम्" (षृष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३६९)।

ये उल्लेख सामन्त राजाओ और जनता का पक्ष में होना ही सिद्ध करते है न कि विद्रोही होना। निष्कषत हषचरित के विवरण से निर्विवाद रूप से प्रकट है कि राज्य के सभी ऊँचे अधिकारी जैसे सेनापति सिंहनाद और सेनापति स्कन्दगुप्त एव कुन्तल आदि पूरी तरह हर्ष के साथ थे और उत्तराधिकार सौंपने में हिचकने के बजाय हर्ष को शोक विह्वल और उत्तराधिकार के प्रति अनिच्छुक और अन्यमनस्क देखकर वे चिंता मे व्यग्र हो उसे प्रजा के हित राज्यग्रहण करने को प्रेरित कर रहे थे।[1]

हर्षचरित मे जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, बाण ने लिखा है कि हर्ष को देखकर ऐसा लगता था कि इच्छा के विरुद्ध उन्हें सिंहासन पर बैठने को विवश किया गया था। उनके समस्त अग चक्रवर्ती के सब लक्षणो से युक्त थे, और ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने पर भी राज्यलक्ष्मी ने उसे राजपद के सवलक्षणो सहित बलात् अपने आलिंगन मे ले लिया था—

---

१ डा० रमाशकर त्रिपाठी सामन्तगणो के रुख की विवेचना करते हुए लिखते है—"If they had been turbulent enough from the begining they would have given greater trouble to young Harsha after his brother's murder, but instead of revolting or creating disturbance they gave their unstinted help and *loyal support to their royal master, who was now confro*nted with the difficult task of bringing the culprit to book" History of Kanauj, p 71

"अनिच्छन्तमपि बलादारोपितमिव सिंहासनम्, सर्वावयवेषु सर्वलक्षणैर्गृहीतम् गृहीतब्रह्मचर्यमालिङ्गित राजलक्ष्म्या"—(द्वि० उच्छ्वास, पृ० ११९)।[1]

इस उद्धरण के आधार पर ही वाटर्स ने यह अनुमान किया है कि हर्ष सिंहासन पर आरूढ़ होने में इसलिए हिचक रहा था कि राज्यवर्धन शायद कोई उत्तराधिकारी छोड़ गया था, और कि शायद उसने बौद्ध-भिक्षु होने का भी व्रत ले रखा था।[2] हर्ष के व्रत के सम्बन्ध में वाटर्स का अनुमान भ्रमपूर्ण है। हर्षचरित और हर्ष के अभिलेखों से स्पष्ट है कि वह बहुत समय तक शैव धर्म का उपासक बना रहा और जीवन के उत्तरार्द्ध में ही उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। गौडाभियान के विरुद्ध अभियान के अवसर पर बाण ने लिखा है कि हर्ष ने शिव के चिह्न के रूप चन्द्रकला के समान श्वेत पुष्पों की मुण्डमालिका सिर पर धारण की—और परिपूजित प्रसन्न पुरोहित ने उनके सिर पर शांति का जल छिड़का—

"परमेश्वरचिह्नभूतां शशिकलामिव कल्पयिता सितकुसुममुण्डमालिका शिरसि परिपूजितमहापुरोहितकरप्रकीर्यमाणशान्तिसलिलशीकरनिकरानुसिक्तशिरा" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० २६०)।

हमारी सम्मति में, बाण के उक्त उद्धरण से, जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, इतना ही अभिप्रेत है कि बड़े भाई की मृत्यु हो जाने से वह राज्यग्रहण के प्रति अन्यमनस्क हो चला था, लेकिन परिस्थितियों से विवश हो कर उसे राज्य-लक्ष्मी का वरण कर लेना पड़ा था। इस सन्दर्भ में डा० त्रिपाठी ने भी अपना मत व्यक्त करते हुये लिखा है कि बाण के उक्त कथन से इतना ही लक्षित होता है कि यद्यपि बड़े भाई के होते छोटा होने के नाते हर्ष के सिंहासनारूढ़ होने का कोई अधिकार व अवसर नहीं था, किन्तु परिस्थितियों (अकस्मात् राज्य की हत्या हो

---

१ (H C, C & T, p 57) "He was embraced by the Goddess of the royal prosperity, who took in her arms and seizing him by all the royal marks on all his limbs, forced him, however reluctant to mount the throne .and this though he had taken a vow of austerity and did not swerve from his vow hard like grasping the edge of a sword "

२ Yuan Chwang's Travels Watters, Vol I, p 346

जाना) ने उस बलात् सिंहासन का दायित्व ग्रहण करने को विवश किया था। साथ ही, 'व्रत' से अभिप्राय बौद्धधर्म के ग्रहण से लेना, जैसा कि वॉटर्स ने लिया है, हर्षचरित के विवरण से संगति नहीं रखता। बाण ने यह तो लिखा है कि हर्ष ने 'असिधारण व्रत' लिया था—(द्वि० उच्छ्वास, ११९), किन्तु इसका अर्थ शायद यह है कि हर्ष ने राज्यवर्धन की मृत्यु का बदला लेने तक 'ब्रह्मचर्य' धारण का व्रत लिया था, सर्वदा के लिये नहीं।

डा० त्रिपाठी के अनुसार प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद राज्यवर्धन ने जब छोटे भाई (हर्ष) को राज्य सौंपने और संसार का परित्याग कर सन्यास लेने की बात कही थी तो हर्ष ने शासन भार स्वीकार करने से इन्कार कर अपने बड़े भाई पर जोर डालने के लिये स्वयं भी वन में जाकर सन्यासी का जीवन व्यतीत करने का निश्चय प्रकट किया था। शायद 'व्रत' से बाण का अभिप्राय इसी निश्चय से है। लेकिन राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद हर्ष ही 'वर्धनराज्य' का एकमात्र उत्तराधिकारी शेष रह गया था जिस कारण वह सिंहासन का दायित्व लेने के लिये कर्त्तव्य-विवश हो गया, और राजधर्म का पालन तथा वर्धन-राज्य के शत्रुओं का विनाश करना ही अब उसका असली व्रत बन गया।[१] इसीलिये बूढ़े सिंहनाद के समझाने-बुझाने के पश्चात्

---

१ हर्ष के 'व्रत' पर डा० रमाशंकर त्रिपाठी लिखते हैं—"The passage may refer to Harsa's previous vow not to accept the crown when Rajya overwhelmed by grief, wanted to abdicate in his favour and retire to the forest Harsa had also resolved to follow in his brother's train, if he persisted in renouncing the throne, thinking within himself "And the sin involved in transgressing my elder's commands, austerity in fire shall dispel in a hermitage "But his subsequent accession to the throne without any hesitation meant no swerving from his original vow of renunciation taken under certain conditions, as after his brother's death Harsa was the only "Sesa" left to come to the succour of both the Thaneswar and Kanauj Kingdoms "

History of Kanauj, p 70

हर्ष ने सिंहासनारूढ़ होने में सहमति जताते हुये कहा था'—आप जैसे महान् की सम्मति का अवश्य ही पालन किया जायेगा ।[1]

इस तरह प्रकट है कि राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाने से, लगभग ई० सन ६०६ के अक्टूबर में हर्षवर्धन थानेश्वर के सिंहासन पर आसीन हुआ[2] किन्तु आर्यावर्त के वास्तविक सम्राट के रूप में उसका अभिषेक अभी होना शेष था। ह्वेनसांग की जीवनी और यात्रा-विवरण से मालूम होता है कि लगभग ६४१–४२ ई० में वह जब हर्ष से मिला था तो हर्ष ने बातचीत के दौरान चीनी यात्री को बतलाया था कि सम्राट् हुये उसे तीस वर्ष से ऊपर हो चुके हैं ।[3] हर्ष के इस कथन से लक्षित होता है कि यद्यपि थानेश्वर के सिंहासन पर वह ६०६ ई० में ही आसीन हो चुका था, लेकिन आर्यावर्त अथवा उत्तरीभारत के सम्राट् के रूप में उसका विधिवत् अभिषेक शायद ६ वर्ष पश्चात् अर्थात् लगभग ६१२ ई० में हुआ होगा, जब कि वह प्रारम्भिक दिग्विजय कर चुका था ।[4]

---

१ हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पं० जगन्नाथ पाठक पृ० ३४२
H C, C & T, pp 185 86

२ The Early History of India, V A Smith, p 388

३ "The King said, 'your disciple, succeeding to the royal authority, has been lord of India for thirty years and more" The Life of Hiuen Tsiang, Beal p 183

४ After six years he (Harsha) had subdued the five Indies" Records of Western World, I, p 213 It must have been in 641 or 642 that in conversation with our pilgrim, Siladitya stated that he had then been Sovereign for above thirty years This also gives 612 for the year of his accession On Yuan Chwang's Travels, Thomas Watters pp 346-47

स्मिथ की सम्मति में—"There is reason to suppose that Harsha did not boldly stand forth as a vowed king until A.D 612, when he had been five and a half or six years on the throne, and that his formal coronation or consecration took place in that year" The Early History of India 1914, p 338

अलवरुनी के आधार पर यह भी अनुमान किया गया है कि थानेश्वर के सिंहासन पर बैठने के समय (६०६-७ ई०) मे हर्ष ने अपने नाम पर एक नया सवत् भी प्रचलित किया था, अत उसके अभिलेखो में उल्लेखित सवत् उसी का प्रचलित किया हुआ सवत् है।[1]

सिंहासनारूढ होने पर हर्ष के समक्ष सर्वप्रमुख कर्मोद्देश्य अपने भाई के हत्यारे गौडाधिप शशाक से बदला लेना और अपनी बहिन राज्यश्री को कन्नौज के कारागार से मुक्त कराना था। गौडाधिप के कुकृत्य से कुपित हर्ष[2] ने शिव की तरह प्रलयकारी रौद्र रूप धारण कर लिया था—

"हर इव कृतभैरवाकार" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३०)

और रोष से कापते हुए उसके अधर ऐसे प्रतीत होते थे कि शायद वह अपने कोपानल से समग्र राजाओ के तेज अथवा आयु को नि शेष कर डालेगा अथवा पी जायेगा—

"रोषाग्निमुद्वमतनवरतस्फुरितेन पिबन्निव सर्वतेजस्विनामायूषि" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३०)।

उसके वृद्ध सेनापति सिंहनाद[3] ने उसके रोष में उत्साह की आहुति डालते

---

१ "His (Harsha's) era is used in Mathura and the country of Kanauj Between Shri Harsha and Vikramaditya there is an interval of 400years as I have been told by some of the inhabitants of that region However, in the Kashmirian calender we have read that Shri Harsha was 664 years later than Vikramaditya"—Alberuni's India Dr E C Sachau, Vol II, p 5

१९५१ के ग्वालियर इतिहास-काग्रेस में डा० आर० सी० मजुमदार ने अल्बरुनी के इस उद्धरण पर सन्देह प्रकट करते हुए कहा था कि हर्ष ने शायद कोई सवत् प्रचलित ही नही किया। इस पर वादविवाद तो हुआ लेकिन अन्तिम निष्कर्ष नही निकाला जा सका।

२ हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२९-३४४

३ "He thus like Siva put on a shape of terror"

" Think not of the Gauda king alone, so deal that

हुये उसे गौड़ाधिप से इस तरह प्रतिशोध लेने का परामर्श दिया जिससे कि भविष्य में कोई फिर उसकी तरह आचरण करने का साहस न कर सके। सेनापति ने हर्ष के सामने परशुराम का उदाहरण रखते हुये कहा कि जिस प्रकार परशुराम ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये समस्त राजाओं के वंश को इक्कीस बार उन्मूलित किया था, उसी तरह आप तुरन्त अधम गौड़ के विरुद्ध दण्डयात्रा की सूचक ध्वज के साथ धनुष धारण कर लीजिये—

> "कृतवानुन्वातिसंख्यराजन्यक परशुराम, कि पुनर्निर्मलितवायकार्कश्यकुलिशायमानमानसो मानिना मूर्धन्या देव। तदद्यैव कृतप्रतिज्ञो गृहाण गौडाधिपाधमजीवितध्वन्तये जीवितमकल्पनाकुलकालाकाण्डदण्डयात्राचिह्नध्वज धनु" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४१)।

हर्ष ने अपने सेनापति के वचनो से उत्तेजित होकर कहा 'अधम गौड़ के आचरण से क्रोध से मरे मेरे हृदय में शोक के लिये अब कोई अवकाश अथवा स्थान नहीं है। जब तक अधम, चाण्डाल गौड़ाधिप जीवित है और मेरे हृदय में शूल की तरह चुभता रहेगा तब तक प्रतिकार लेने के बदले शोक मनाना (रोना-धोना) मेरे लिये लज्जास्पद है। जब तक वैरी की अबलाओं के लोचनों में दुर्दिन (आँसू) न ला दू, तब तक मैं जलाञ्जलि कैसे दे सकता हूँ—

> मनसि नास्त्येवावकाश शोकक्रियाकरणस्य? अपि च हृदयविषमशल्ये सुमल्ये जीवति जाल्मे जगद्विगर्हिते गौडाधिपाधमचण्डाले जिह्लेमि शुष्का-

---

for the future no other follow his example 'Parsuram avenged when his father was slain' " By the dust of my honoured Lord's feet, I swear that unless in a limited number of days, I Clear this earth of Gaudas, and make it resound with the fetters on the feet of all kings who are excited to insolance by the ela ticity of their bows, then will I hurl my sinful self like a moth, into a oilfed flame " "Let all kings prepare their hands to give tribute or to grasp swords, let them bend their heads or their bows grace their ears with either my commands or their bow-stings "—H C, C & T, pp 187-188

घरपुट पोटेव प्रतिकारशून्य शुचा शूकर्तुम् । अकृतरिपुबलाबलाविलोललोचनोदकदुर्दिनस्य मे कुत करयुगलस्य जलाञ्जलिदानम्" (षष्ठ उच्छ्वास, पृष्ठ ३४२-४३) ।

फलत पृथ्वी को गौडो से खाली करने की प्रतिज्ञा[1] घोषित करने के साथ ही हर्ष ने अपने महासन्धिविग्रहाधिकृत अवन्ति को समग्र राजाओ के नाम यह अनुशासन प्रेषित करने की आज्ञा दी कि या तो वे राजकर देने को प्रस्तुत हो या रण में मुकाबला करने के लिये तैयार हो जांय—

"सर्वेषा राज्ञा सज्जीक्रियन्ता करा करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४४) ।

इस अनुशासन के प्रेषित होने के साथ ही हर्ष ने हस्ति सैन्य के सेनापति स्कन्दगुप्त को बुलवाया और उसे शीघ्र ही अभियान की तैयारी करने की आज्ञा दे दी । हर्ष ने सेनापति को बतलाया कि उसे अपने भाई के पराभव का बदला लेना है, इसलिये वह अभियान में जरा भी शिथिलता नही होने देना चाहता । अत अपने स्वामी के निर्देशानुसार सेनापति स्कन्द ने शीघ्र ही अभियान की पूरी तैयारियाँ कर दी और तब अनेक ज्योतिषियो द्वारा निर्दिष्ट एक शुभ दिन हर्ष शक्तिशाली सैन्य के साथ गौडाधिप (शशाक गुप्त) तथा अन्यान्य शत्रु राजाओ को उन्मूलित करने के लिये राजभवन (थानेश्वर) से निकल पडा । दिग्विजय के लिये जाते हुये सम्राट हर्ष को थानेश्वर की हर्षोत्फुल्ल प्रजा ने जय के नारो के साथ विदा दी[2]—

"प्रमुदितप्रजाजन्यमानजयशब्दकोलाहलो (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६१) ।

---

१ वह सेनापति सिंहनाद के समक्ष हर्ष ने अपनी प्रतिज्ञा इन शब्दो में व्यक्त की थी—"तपाम्यार्यस्यैव पादपासुस्पर्शेन, यदि परिगणितैरेव वासरै सकलचापचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरणायमाननिगडा निर्गौडा गा न करोमि ततस्तनूनपाति पीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयाम्यात्मानम्—आर्य के ही चरणरज को लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कुछ ही दिनो मे धनुष चलाने की चपलता के अहकार मे भरे हुये समस्त दुर्विनीत राजाओं के पैरो को बेडियो मे जकड कर पृथ्वी को गौडो से रहित न कर दूँ तो घी से धधकती आग में पतग की तरह अपने को जला डालूँगा" (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४३)

२ H C C, & T, pp 189-201

इस अभियान के समय हर्ष के साथ कितना सैन्यबल था, इसका बाण ने स्पष्ट में उल्लेख नहीं किया है। लेकिन हर्षचरित में दिग्विजय पर जाती हुयी सेना का जो चित्र बाण ने उपस्थित किया है उससे प्रकट है कि सेना में अनेक सामन्त राजा साथ थे और पैदल, अश्व व हस्तियों आदि को मिला कर सैन्यदल इतना विशाल था जिसे देख कर हर्ष स्वयं विस्मित हो उठे थे—

"स्वयमपि विसिस्मिये दर्शनात् भूपाल" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७२)।

हर्ष के सैन्यदल अथवा कटक की विशालता को इंगित करते हुये बाण ने उसे जगत् का ग्रास बनाने के लिये प्रवृत्त प्रलयकाल के जलधि जैसा कहा है—

"प्रलयजलनिधिमिव जगद्ग्रासग्रहणाय प्रवृत्तम्" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७९)।

सम्राट् हर्ष के कटक की विशालता ह्वेनसाग के विवरण से भी प्रकट है। चीनी यात्री ने लिखा है कि हर्षदेव ५००० हाथी, २००० अश्व और ५०,००० पदाति सेना लेकर दिग्विजय के लिये निकला था।[1] इस विशाल सेना का सामान व वस्त्रादि ढोने के लिये सहस्रों खच्चर, गदहे और बैल आदि भी अभियान दल के साथ शामिल थे (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६६-६७) और HC, C & T, pp 199-201)।

राजधानी से प्रस्थान कर कुछ ही दूर जाकर हर्ष ने पुण्यमति सरस्वती नदी के तट पर प्रथम पड़ाव डाला जहाँ सम्राट के निवास के लिये घास-फूस (तृणमये) से छाया हुआ, उत्तुंग तोरण वाला राजमंदिर अथवा राजप्रासाद निर्मित कर दिया गया था। यहां पर सम्राट हर्ष ने सौ गांव ब्राह्मणों को दान में प्रदान किये—

'ग्रामाणां शतमदाद् द्विजेभ्य' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६७)।

यहां दूसरे दिन प्रातः हर्ष ने अपने विशाल कटक का निरीक्षण किया और फिर अपने शिविर में लौट गये। यहीं पर प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा कुमार (भास्करद्युति-भास्करवर्मा) का राजदूत हंसवेग हर्ष से मिला और उसने अपने राजा की ओर से पुण्यभूति सम्राट को बहुमूल्य राजकीय उपहार भेंट किये।[2] हंसवेग ने अपने स्वामी प्राग्ज्योतिषेश्वर की ओर से अनुरोध के साथ

---

१ Record of western countries Vol I, p 213

२ हर्षचरित के विवरणानुसार हंसवेग ने उपहार में आभोग नामक वारुण-आतपत्र अथवा छत्र प्रदान किया था। इस छत्र की विशिष्टता और अनुपमता का

हर्पदेव से निवेदन किया कि—"प्राग्ज्योतिपेश्वर, देव के साथ कभी न मिटने वाली मैत्री चाहते हैं। यदि देव का हृदय मित्रता का अभिलापी हो तो कामरूपाधिपति आपके साथ गाढ आलिंगन का अनुभव करेंगे", और हर्प ने आदरपूर्वक हसवेग को उत्तर दिया कि कुमार सदस्य महात्मा महाभिजन और गुणवान् परोक्षसुहृद (बिना प्रत्यक्ष मिलन हुये ही जो सुहृद अथवा मित्र हैं) के साथ मैत्री के अलावा वे कुछ और नही विचार सकते। इस प्रकार हर्प ने हसवेग के प्रस्ताव को स्वीकार कर कामरूप के राजा से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

कामरूप का अधिपति कुमार भास्करवर्मन, गौड अथवा कर्णसुवर्ण के पडोसी राजा शशाकगुप्त (देवगुप्त) की बढती हुयी शक्ति से शायद प्रकुपित सशकित हो उठा था, जिस कारण उसने स्वरक्षार्थ गौडाधिप के विरुद्ध उसके विपम-शत्रु

उल्लेख करते हुये हर्पचरित मे कहा गया है कि "वरुण के समान जो चारो समुद्रो का अधिपति हुआ है या होगा उसी पर इस छत्र की छाया पडेगी, दूसरे पर नही। इस छत्र को अग्नि नही जला सकता, हवा उडा नही सकती, पानी गीला नही कर सकता, धूल मलीन नही कर सकती और जरा जर्जर नही कर सकती—

"प्रचेता इव यश्चतुर्णामर्णवानामधिपतिर्भूतो भावी वा तमिदमनुगृह्णाति च्छायया नेतरम्। इद च न सप्तार्चिर्दहति, न पृपदश्वो हरति, नोदकमार्द्रयति, न रजासि मलिनयन्ति, न जरा जर्जरयतीति"—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८३)।

छत्र के अलावा अन्य उपहार इस प्रकार थे—बहुमूल्य रत्नो से जडे आभूपण जो भाँति भाँति के रुपणो से अलकृत थे, उज्ज्वल चूडामणि (शिरो-भूपण), धवल हार, शरत्कालीन चन्द्रमा के जैसे उज्ज्वल रग के क्षौम वस्त्र, कुशल शिल्पियो द्वारा नक्काशी किये गये सीप, शख और गन्धर्व के बने मधुपान के चपके आदि तथा सुभापितो से पूर्ण पुस्तकें जिनके पन्ने अगरु के वल्कलो (छाल) मे बनाये गये थे, पल्लवा सहित हरी सुपारियो के गुच्छे, काले अगर का तेल, परिताप (गर्मी) हरने वाला गोशीर्प नामक चन्दन, हिमशिला की तरह शीतल और स्वच्छ कपूर और कस्तूरी आदि तथा भाँति-भाँति के पशु-पक्षी, किन्नर, वनमानुप, जलमनुष्य, कस्तूरी हिरन, चँवरी गाय, सुभापित पाठ करने वाले शुक सारिका आदि (सप्तम उच्छ्वास, पृष्ठ ३८३-३८८)।

हर्षवर्धन ने बिना समय खोये मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना श्रेयस्कर समझा। हर्ष के लिये भी यह मैत्री सम्बन्ध लाभप्रद था, क्योंकि कामरूप के राजा भास्करवर्मन का सहयोग गौड़ाधिप को दबाने में नि सन्देह उसके लिये सहायक हो सकता था। यह मैत्री सम्बन्ध बराबरी के आधार पर स्थापित हुआ था, या वह एक निर्बल राजा का शक्तिशाली राजा से आत्मनिवेदन था, यह भी विचारणीय है।

हर्षचरित के अनुसार अभियान से पूर्व हर्ष ने यह अनुशासन प्रेषित किया था कि विभिन्न प्रदेशों के राजा या तो स्वतः करों का उपहार लेकर उनके समक्ष उपस्थित हों या युद्ध के लिये तैयार हो जांय, सिर झुकावें या हाथ में धनुष ले लें, अपने मस्तक पर उनकी चरणरज चढ़ावें या शिरस्त्राण धारण करें "मैं जब आया"—

> 'सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियन्तां करा करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा नमन्तु शिरांसि सेवरीभवन्तु पादरजांसि शिरस्त्राणि वा । परागतोऽस्म्' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४४)।

इस अनुशासन के आधार पर प्रत्यक्षत यह अनुमान किया जा सकता है कि भास्करवर्मन ने हर्ष की उठती हुयी शक्ति से दबकर ही आत्मनिवेदन की प्रार्थना के साथ अपने दूत हंसवेग को उनके पास भेजा था।[१] भास्करवर्मन, शशांक के

---

१ हर्ष के साथ मैत्री सम्बन्ध पर अन्यान्य विद्वानों के मत—सी० बी० वैद्य के मत में "Kumar-raja of Kamarupa was perhaps previously the enemy of Sasanka, for which reason he allied himself with the Emperor of Sthaneswara"

(H M H I, Vol I, p 10)

डा० रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार—"He (Bhaskarvarman) was in great fear of his powerful neighbour, Sasanka, and this was probably the reason why he so readily extended the hand of friendship to Harsha at the initial stage of his compaigns" (History of Kanauj, p 104)

आर० डी० बनर्जी की सम्मति में—"Bhaskarvarman of Assam may have felt the weight of Sasanka's arms before he

प्रति हर्ष की शत्रुता से भी अवश्य ही परिचित रहा होगा। उसे यह भी शंका हो सकती थी कि गौड को अधिकृत करने के पश्चात् हर्ष कामरूप पर भी आक्रमण कर सकता है। फिर गौड के बौद्धधर्म-विद्वेषी शशांक की बढ़ती हुयी शक्ति से

---

sent an ambassador to Harsha to seek for his alliance"
(History of Orissa, Vol I p 129)

ह्वेनसांग की जीवनी से भी इंगित होता है कि हर्ष, भास्करवर्मन पर अपना प्रभुत्व मानता था। इसीलिये हर्ष ने ह्वेनसांग को अपने पास भिजवाने के लिये कामरूप के राजा को सन्देश भिजवाया था, लेकिन भास्करवर्मन ने सन्देश की अवहेलना कर जब प्रत्युत्तर में यह कहला भेजा कि हर्ष उसका सिर ले सकता है, किन्तु वह अपने महान् अतिथि को विदा नहीं कर सकता, तो हर्ष कुपित हो उठा था और तब उसे परितुष्ट करने के लिये कुमार को स्वयं हर्ष से मिलने उसके शिविर में उपस्थित होना पड़ा था।

'लाइफ' (The Life of Hiuen Tsiang) के विवरणानुसार कुमार के प्रत्युत्तर को पाकर—"The Siladitya raja was greatly enraged, and calling together his attendants, he said, "Kumar-raja despises me How comes he to use such coarse language in the matter of a single priest !"

अतः रोष में भर कर हर्ष ने तुरन्त कहला भेजा था कि—"send the head that I may have it immediately by my messanger who is to bring it here"

इस सन्देह से कुमार भास्करवर्मन अत्यन्त भयभीत हो उठा और—"Kumara, deeply alarmed at the folly of his language, immediately ordered his army to be equipped, and his ships 30,000 in number, then embarking with the master of the Law they passed up Ganges together in order to reach the place where Siladitya-raja was residing" (Life p 172)

लाइफ में आगे लिखा गया है कि हर्ष जब ह्वेनसांग से भेंट करने कुमारराजा के शिविर की ओर बढ़ा तो—" The (Kumara),

कामरूपाधिपति स्वयं भी विजित रहा होगा, यह नैसर्गिक था। हर्ष की मित्रता इसलिये उनके लिये एक आवश्यक विकल्प था। अतः प्रकट है कि भास्करवर्मन ने हर्ष जैसे शक्तिशाली राजा से मित्रता स्वहित और स्वार्थवश ही की थी। भास्करवर्मन द्वारा आमोद मानक छत्र के उदाहरण से भी प्रकट है कि वह हर्ष को एक सार्वभौम चक्रवर्ती मानता था और इसी कारण उसने अपना पैतृक आमोद-छत्र स्वयं धारण करने के बजाय हर्ष को प्रदान कर दिया था।[1]

---

himself with his ministers went forth a long way to meet him "As Siladityaraja marched he was always accompanied by several hundred persons with golden drums who beat one stroke for every step taken Siladitya alone used this method other kings were not permitted to adopt it" (Ibid p 173)

'लाइफ' में उद्धृत उपर्युक्त उद्धरण इस बात को स्पष्ट बताता है कि कामरूप का कुमार भास्करवर्मन राजा हर्ष की शक्ति से डरता था और उसकी आज्ञा को टालने की उसमें कोई क्षमता और साहस नहीं था। अपितु कुमार भास्करवर्मन, हर्ष को अपना प्रभु मानता था जिसका कोप शान्त करने के लिये उसे ह्वेनसांग को लेकर स्वयं शीलादित्य के पास उपस्थित होना पड़ा था। शीलादित्य जब कुमार के शिविर की जाता था तो कुमार एक स्वामिभक्त सामन्त की तरह सम्राट् का अभिवादन और आवभगत करने को आगे बढ़ आता था। केवल हर्ष के सामने वह उस तरह की स्वर्ण-दुन्दुभियों अथवा ढोलों का भी प्रयोग नहीं कर सकता था जो हर्ष की यात्रा के अवसर पर बजाये जाते थे। किन्तु इन उद्धरणों के स्पष्ट भाव और अभिप्राय को छिपाते हुए डा० त्रिपाठी कहते हैं, 'obviously it can not follow from his yielding to the pressure of a valued ally that the king of Assam accepted the suzerainty of Harsha'

(History of Kanauj, p 105)

कन्नौज और प्रयाग की सभाओं में विभिन्न सामन्त राजाओं की तरह कुमारराज का शामिल होना भी उसके मित्र, और सामन्त होने का द्योतक है, न कि बराबरी के राजा होने का जैसा कि त्रिपाठी अनुमान करते हैं।

१ चतुरम्भोधिसंभोगभुजिनावननूतनस्य देवस्य स्वभावाभिजातेन हृदयेनैकमन्तर-

कुमार भास्करवर्मन ने आत्मनिवेदन किया और हर्ष उसका अधिपति था, यह बाण के हर्ष द्वारा 'कुमार' के अभिषिक्त किए जाने के उल्लेख से भी प्रकट है—

"अत्र देवेनाभिषिक्त कुमार" (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५४)।

स्पष्टतया हर्ष और भास्करवर्मन मे बराबरी का नही, स्वामी और सामत का सम्बन्ध था, यद्यपि यह भी सही है कि कामरूप की अन्तर राजनीति व प्रादेशिक स्वातन्त्र्य पर थानेश्वर की ओर से कभी कोई हस्तक्षेप नही किया गया। अत कह सकते है कि कुमार भास्करवर्मन, देव हर्ष का एक सम्मानित मित्र राजा था और भास्करवर्मन उसे अपना अधीश्वर मानता था यद्यपि अपने राज्य के शासन के लिए वह पूर्णतया एक स्वतन्त्र नृपति की हैसियत रखता था।

दूसरे दिन कामरूप के राजदूत हसवेग को विदा करके हर्ष तेजी के साथ गौडाधिप का पीछा करने के लिए आगे बढा। इस अभियान के बीच एक दिन *हर्ष को एक पत्रवाहक (लेखहारक) ने आकर यह समाचार दिया कि सेनापति भडि* पराजित मालव-सैन्यदल और लूट के सामान आदि के साथ पहुँच रहा है। अत हर्ष सेनापति से मिलने के लिए ठहर गया। शीघ्र ही भण्डि भी आ पहुँचा और उसने सम्राट् को राज्यवर्धन की हत्या होने की पूरी कथा कह सुनायी। हर्ष ने फिर भण्डि से अपनी बहिन के सम्बन्ध में प्रश्न किया जिस पर उसने यह निवेदन किया कि जन-साधारण मे जो वार्ता सुनने मे आयी उसमे यह विदित हुआ है कि राज्यवर्धन की हत्या के बाद 'गुप्त' नाम के व्यक्ति ने कुशस्थल अथवा कन्नौज पर जब अधिकार कर लिया तो देवी राज्यश्री बन्धन से छूट कर सपरिवार विन्ध्याटवी (विन्ध्याचल के जगल) में चली गयी।[1] बाद में राज्यश्री से भेंट होने पर परिजनो

नुरूप प्राभृतमेव दुलभ लोके तथाप्यस्मत्स्वामिना सदेशशून्यता नयता पूर्वजोपार्जित वारुणातपत्रमाभोगाख्यमनुरूपस्थानन्यासेन कृतार्थीकृतमेतत्—"

चारो अम्बुधि की लक्ष्मी के भोग भाजन देव हर्ष को देने योग्य सद्भाव से युक्त हृदय के अलावा दूसरा उपहार क्या हो सकता है। फिर भी हमारे स्वामी ने पूर्वजो द्वारा आभोग वारुण आतपत्र उनके अनुरूप स्थान में भेज कर उसे कृतार्थ कर दिया है" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८३)।

१ "देव! देव भूय गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्री परिभ्रश्य बन्धनाद्विन्ध्याटवी सपरिवारा प्रविष्टेति लोकतो वार्तामशृणवम्" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०४)।

से भी हर्ष को यह ज्ञात हुआ था कि गौड़ से डरते-डरते गुप्त रूप से राज्यश्री को जिसने कान्यकुब्ज से मुक्त किया वह 'गुप्त नाम का एक कुलपुत्र' था।[1] हर्षचरित के इस विवरण से प्रकट है कि कन्नौज पर गुप्त नाम के गौडाधिप (देवगुप्त) का अधिकार हो जाने के बाद गौड की आँख बचा कर 'गुप्त नाम के कुलपुत्र' ने राज्यश्री को बंधन से मुक्ति प्रदान की थी।

रायबहादुर आर पी चंदा का अनुमान है कि 'गुप्त कुलपुत्र' ने अपने स्वामी शशांक के इंगित पर ही राज्यश्री का बन्धनमुक्त किया था। यह अनुमान हर्षचरित के विवरण को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता। हर्षचरित के विवरण से स्पष्ट है कि गुप्तकुलपुत्र ने गौडाधिप से डरते-डरते छिप कर राज्यश्री को कान्यकुब्ज के कारागार से बाहर किया था। अतः यह अनुमान करना कि राज्यवर्धन के हन्ता गौडराजा शशांकगुप्त अथवा देवगुप्त के निर्देश पर 'गुप्त कुलपुत्र' ने राज्यश्री को मुक्त किया होगा, अप्रासंगिक और अस्वाभाविक है। डा० बसाक ने ठीक ही कहा है कि कदाचित् शशांक का साथी होते हुए भी गुप्त-कुलपुत्र ने यह सत्कार्य स्वप्रेरणा से ही किया था, अपने स्वामी के आदेश-निर्देश पर नहीं।[2]

गुप्त नाम का वह कुलपुत्र कौन था ? यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य प्रतीत होता है कि वह गौडाधिप गुप्त अथवा देवगुप्त (शशांक) के अधीन सेना का एक उच्चाधिकारी रहा होगा, जिस कारण गौडाधिप के कन्नौज ग्रहण करने पर वह भी वहां विद्यमान था, और अवसर पाकर उसने चुपचाप गुप्तता के साथ राज्यश्री को बंधन से मुक्त कर कान्यकुब्ज से चला जाने दिया था। सम्भव है कि गुप्त-कुलपुत्र जैसा कि राज्यश्री के प्रति उसके सद्व्यवहार से प्रकट है, पुष्यभूतियों और मौखरियों के प्रति सौहार्द, सम्मान और मैत्री की भावना रखता था। कदाचित् वह परवर्ती गुप्तवंश का कुमार था, जो वंश वैवाहिक सम्बन्ध

---

१ " कान्यकुब्जाद्गौडसम्भ्रमं गुप्तिता गुप्तनाम्ना कुलपुत्रेण निष्कासनं विन्ध्याटवीपर्यटनखेदं यावन्नर्वमग्न्युणोद्यतिकरं परिजनतः " (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४७)।

२ "Even supposing that he was a partisan of Sasanka, he (Gupta nobleman) did this noble act at his own instance and not at his king's bidding"—(History of North Eastern India, p 150)

द्वारा पुष्यभूतियों और मौखरियों दोनों से स्नेह-सूत्र में सकलित था। श्री हारनोल का भी अनुमान है कि गुप्तकुलपुत्र, कुमार और माधव, परवर्ती गुप्तवंश की उस शाखा के थे जो पुष्यभूतियों व मौखरियों के प्रति मैत्री-भाव रखते थे और देवगुप्त परवर्ती गुप्तवंश की उस शाखा का था जो पुष्यभूतियों और मौखरियों के प्रति शत्रुता रखते थे (JRAS, 1903, p 562)।

डा० बसाक के मत में भी गुप्तकुलपुत्र एक ऐसे कुल से सम्बन्धित था जो मौखरियों अथवा वर्धनों (पुष्यभूतियों) अथवा दोनों के प्रति मैत्री भाव रखता था।[१]

डा० टी० सी० गांगुली का अनुमान है कि गुप्तकुलपुत्र शायद अभिलेखों में उल्लेखित देवगुप्त था।[२] किन्तु यह अनुमान संगत नहीं है। देवगुप्त का उल्लेख हर्ष के अभिलेखों में एक दुष्ट राजा के रूप में हुआ है, जिसकी उपमा 'दुष्ट-वाजि' अथवा अश्व से दी गयी है। अभिलेख में राज्यवर्धन द्वारा दमित किये गये अनेक राजाओं में नाम केवल देवगुप्त का ही आया है, जो उसके प्रमुख शत्रु होने का संकेत देता है और वह प्रमुख शत्रु 'गौडाधिप' ही हो सकता है। अतः देवगुप्त जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, सम्भाव्यतः कान्यकुब्ज पर अधिकार करने वाला गौडाधिप था।

भण्डि से राज्यश्री का समाचार जान लेने के बाद हर्ष ने गौडाधिप (शशांकगुप्त या देवगुप्त) का पीछा करने का गुरुतर भार सेनापति भण्डि को सौंप दिया और अपने सैन्यदल को शिविर में ही रुके रहने का आदेश देकर हर्ष स्वयं माधवगुप्त और कुछ एक सामंतों को साथ लेकर बहिन को ढूँढ निकालने के लिये विन्ध्याचल के जंगल और पहाड़ों में घुस गया।[3] विन्ध्याचल के जंगल में घूमने पर हर्ष की विन्ध्य के सामंत शरभकेतु के बेटे व्याघ्रकेतु से भेंट हुयी। व्याघ्रकेतु ने हर्ष की विन्ध्य के अटवी-राज शबर सेनापति भूकम्प के भाजे निर्घात

---

१ " The Gupta nobleman belonged to a family which was friendly to the house of the Maukhari's or the Vardhanas or both"—History of North Eastern India, p 150

२ IH, Sept 1939, Vol XIII, 3, p 464

३ बहिन का समाचार सुनकर हर्ष ने कहा था—"यत्र सा तत्र परित्यक्तान्यकृत्य स्वयमेवाहं यास्यामि। भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्—" (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०८)।

से भेंट करायी। निर्घात सम्राट हर्ष को बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्र की कुटिया में ले गया (हर्षचरित, अष्टम उच्छ्वास पृ० ४१३)। दिवाकरमित्र को देखकर हर्ष को स्मरण हुआ कि यह बौद्ध आचार्य उनके बहनोई ग्रहवर्मा का बालमित्र अथवा सखा था—"ग्रहवर्मणो बालमित्र—अष्टम उच्छ्वास पृ० ४१७)। इसीलिये राज्यश्री को दिवाकरमित्र से भेंट कराते समय हर्ष ने कहा था कि ये तुम्हारे पति के दूसरे हृदय हैं।[1]

हर्ष जब दिवाकरमित्र को अपनी बहिन राज्यश्री की खोज में जाने का वृत्तांत सुना रहा था तभी एक अन्य भिक्षु दौड़ा-दौड़ा आया और उसने करुण भाव से आंसू बहाते हुए आचार्य (दिवाकरमित्र) से कहा कि कोई एक बाल-अवस्था की अभूतपूर्व कल्याणरूपा सुन्दर-स्त्री शोक के आवेश से विवश होकर अग्नि में जलने को तत्पर है। भगवन् कृपया चलकर उसे समझावें और समुचित आश्वासनों द्वारा उस पर अनुग्रह करें।[2] इस समाचार को सुनते ही हर्ष विचलित हो उठा और नवागन्तुक भिक्षु, आचार्य दिवाकरमित्र तथा निर्घात व अपने सामन्तों के साथ वह तुरन्त उस स्थान के लिये चल पड़ा जहां पर शोकविह्वल राज्यश्री का होना इंगित किया गया था। हर्ष जब निर्देशित स्थान पर पहुँचा तो उसने दुःख से बेसुध राज्यश्री को चिता में चढ़ने को तैयारी करते हुये पाया। हर्ष ने पहुँचते ही अपनी बहिन के माथे पर स्नेह का शीतल हाथ रखा जिससे राज्यश्री अपने सुध में चली आयी और आँखें खोलने पर वह शोक-विह्वला (राज्यश्री) अचानक अपने भाई को अपने पास देखकर उसके कण्ठ से लग गयी। हर्ष अपनी बहिन को चिता के पास से हटा कर निकट ही एक वृक्ष की शीतल छाया के नीचे ले गया, इसी बीच आचार्य दिवाकरमित्र ने जल मंगवा कर दोनों भाई-बहिन को परितृप्त किया। हर्ष ने तब दिवाकरमित्र की ओर संकेत कर उनकी वन्दना करते हुये अपनी बहिन को बतलाया कि ये बौद्ध आचार्य तुम्हारे पति के बालसखा रह चुके हैं। भक्ति के साथ आचार्य के प्रति आकृष्ट होकर राज्यश्री ने बौद्ध भिक्षुणी होने की इच्छा प्रकट की। लेकिन भावावेश में कहे गये राजकन्या के वचनों को सुनकर

---

१ राज्यश्री को दिवाकरमित्र का परिचय देते हुये हर्ष ने कहा था—"एष ते भर्तुर्हृदय"—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४६)।

२ बालैव च बलवद्बन्धननाभिभूता भूतपूर्वापि कल्याणरूपा स्त्री शोकावेगविवशा वैश्वानर विशति। अनुपसद्यता समुचितैं समास्वासनैः—(अष्टम् उच्छ्वास, पृ० ४३०–३१)।

आचार्य ने राज्यश्री के भिक्षुणी होने के संकल्प को टाल दिया और परामर्श दिया कि उसे अपने भाई के निर्देशानुसार ही चलना चाहिये। हर्ष ने भी अपने स्नेहसिक्त भावों को प्रकट करते हुये यह कामना प्रकट की कि उसकी खोई और पुनः प्राप्त की गयी बहिन कुछ दिन उसके साथ ही रहे ताकि अपने तमाम कार्यों को भुला कर भी वह कुछ समय उसकी सेवा कर सके। लेकिन भाई के हत्यारे शत्रु-कुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी करने तक हर्ष ने आचार्य से आग्रह किया कि 'आचार्य साथ चल कर (मेरी) बहन को धर्मकथा सुनाने व शील का उपदेश देने के लिये मुझ अतिथि को शरीर दान दें = साथ रहें।' साथ ही हर्ष ने आचार्य के समक्ष यह संकल्प भी प्रकट किया कि जब "मैं अपने उद्देश्यों को पूरा कर लूंगा तो मैं और राज्यश्री दोनों साथ ही साथ पीले वस्त्र धारण करलेंगे।" हर्ष ने तब निर्घात को विदा कर दिया और साग्रह आचार्य दिवाकरमित्र और अपनी बहिन को साथ लेकर हर्ष विन्ध्याचल से कुछ पड़ावों के बाद जाह्नवी (गंगा) के तट पर अपने शिविर में लौट आये[1]।

---

१ ददर्श च मुह्यन्तीमग्निप्रवेशायोद्यता राजा राज्यश्रियम्।
आललम्बे च मूर्च्छामीलितलोचनाया ललाटं हस्तेन तस्याः ससम्भ्रमम्।
अथ तेन भ्रातुः हस्तसस्पर्शेन सहसैव समुन्मिमील राज्यश्री।—सहसा प्राप्तस्य भ्रातुः कण्ठे समाश्लिष्य ।

विगते च मन्युवेगे वह्नेः समीपादाक्षिप्य भ्रात्रा नीता निकटवर्तिनि तरुतले निषसाद।

'अम्बे! वन्दस्वाऽनभवन्त भदन्तम्। एष ते भर्तुर्हृदयं द्वितीयमस्माकं च गुरुः—

'मत काषायग्रहणाभ्यनुज्ञयागृह्यतामयमपुण्यभाजन जनः।'

'यदि भ्रातेति यदि ज्येष्ठ यदि राजेति सर्वथा स्थानत्त्वमस्य नियोगे।'

'सर्वकार्यविसर्गपरोऽनेनापि यावल्लालनीया नित्यम्।' अस्माभिश्च भ्रातृवधापकारिरिपुकुलप्रलयकरणोद्यतस्य सकललोकप्रत्यक्षं प्रतिज्ञा कृता। '

'दीयतामतिथये शरीरमिदम्। कथाभिश्च धर्म्याभिः, शीलोपशम-दायिनीभिश्च देशनाभिः, प्रतिबोध्यमानामिच्छामि। इयं तु ग्रहीष्यति मयैव समं समाप्तकृत्येन काषायाणि।'

'विसर्ज्य निर्घातमाचार्येण सह स्वसारमादाय प्रयाणैः कतिपयैरेव कटकमनुजाह्नवि निविष्टं प्रत्याजगाम' हर्षचरित, पं० जगन्नाथ पाठक, अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४४, ४४५, ४४६, ४५३, ४५८, ४५९, और ४६०।

विन्ध्याटवी में हर्ष के इस प्रत्यागमन के साथ बाण का 'हर्षचरित' भी समाप्त हो जाता है। बाण से हमें यह नहीं मालूम होता कि शशांक के विरुद्ध जो अभियान किया गया था उसका अन्तिम परिणाम क्या हुआ। किन्तु हर्षचरित के पूर्व-वृत्तान्त के आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि जब हर्ष ने शशांक गुप्त के विरुद्ध अभियान की घोषणा कर कन्नौज की ओर कूच किया तो शायद वह भयभीत हो कर कन्नौज का साथ छोड़ सहसा अपने राज्य लौट जाने के लिये प्रत्यागमन कर चुका था। सम्भवतया मालव-दमन में हर्ष की ख्याति हो जाने से भी गौडाधिप को अपने पास के शत्रु पड़ोसी से भी अधिक भय पैदा हो गया था। इसलिये निःसंदेह उसकी कुशलता इसी में थी कि वह शीघ्रता से अपने राज्य को वापस लौट जाता।[1] शशांक के कन्नौज छोड़ देने से निश्चय हर्ष को कन्नौज पर अधिकार करने में अब कोई कठिनाई नहीं रह गयी थी।

मालवराज द्वारा ग्रहवर्मन की मृत्यु और फिर गौडाधिप के उत्पातों के कारण मौखरि राजधानी कन्नौज, शासकविहीन होने के फलस्वरूप अव्यवस्था और अराजकता का केन्द्र बनी हुयी थी। हर्ष इस स्थिति से निश्चय ही परिचित था, इसीलिये गौडपति शशांक के दबाने के काम में तत्काल भण्डि की मदद के लिए जाने के बजाय विन्ध्याटवी से लौटने पर हर्ष ने पहले अपनी बहिन की राजधानी कन्नौज की स्थिति सम्हालने का कार्य अधिक आवश्यक समझा। आचार्य दिवाकरमित्र के सामने हर्ष ने कहा भी था कि अपनी बहिन के हित के लिए उसे यदि अपने कर्त्तव्यों को भी कुछ समय के लिए भुलाना या स्थगित करना पड़े तो वह ऐसा करने में नहीं हिचकेगा। डा० त्रिपाठी के शब्दों में हर्ष के इस कथन का अभिप्राय यही था कि अपने शत्रुओं को दबाने का कार्य कुछ समय के लिए स्थगित कर तत्काल वह कन्नौज में रुक कर वहाँ की व्यवस्था ठीक कर लेना चाहता था।[2]

---

१ डा० त्रिपाठी की सम्मति है कि—"In the face of new odds arrayed against Sasanka, strategy certainly demanded that he should beat a masterly retreat" (History of Kannauj, p 74)

२ "Harsha had further declared his intention of cherishing her (Rajyashri) 'for a while' even though it meant the neglect of royal duties, which impression probably implies that he was prepared to stay in Kannauj for some time in

हर्षचरित के वृत्तान्तानुसार ग्रहवर्मन नि संतान मरा था, और उसके कोई बन्धु-बान्धव भी शेष न रह गये थे।[1] अत कन्नौज आने पर वहाँ मौखरी राज्य से सम्बन्धित राजनीतिज्ञों और हर्ष के सामने सबसे प्रमुख समस्या प्रथमत कन्नौज राज्य के उत्तराधिकार को निश्चित करना था। ह्वेनसांग से ज्ञात होता है कि कन्नौज के राजनीतिज्ञों ने अपने प्रमुख नेता बानी (वानी या पोनी)[2] की सलाह

---

order to settle its affairs, before he could undertake the fulfilment of his vow to punish those who had become inimical (Ibid, p 75)

१ राज्यश्री के साथ की एक कुलीन स्त्री ने चितारोहण के लिए प्रस्तुत शोक-विह्वल राज्यश्री का परिचय देते हुए बौद्ध भिक्षु से कहा था कि 'प्रकृति से मनस्विनी (प्रकृतिमनस्विनी) हमारी स्वामिनी—

> "मरणेन पितुरभावेन भर्तु प्रवासेन च भ्रातु भ्रंशेन च शेषस्य बान्धव वर्गस्यातिमृदुहृदयतयानपत्यतया च निरवलम्बना, परिभवेन च नीचारातिकृतेन अग्नि प्रविशति—"

पिता की मृत्यु, पति के विनाश, भाई के प्रवास और अन्य सब बन्धुओं के बिछुड़ जाने से, हृदय से अत्यन्त मृदु और पुत्र के न होने से निरालम्ब (अथवा निराधार) हुयीं, नीच शत्रु द्वारा पराभूत किए जाने से अग्नि में प्रवेश कर रही है। (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४३८)।

२ बानी का कतिपय विद्वान सामान्यत हर्षचरित के भण्डि से मिलाते हैं। लेकिन बानी, वानी या पोनी का भण्डि से मिलाया जाना भ्रममूलक है। बानी व भण्डि के नामों में न तो कोई साम्य है, और न वह कन्नौज का ही राजनीतिज्ञ था। वह तो बाल्पन से ही राज्यवर्धन का साथी और फिर उसका सेनापति रहा था। डा० त्रिपाठी भी बानी व भण्डि को एक समझने का विरोध करते हुए लिखते हैं, " beyond the similarity of sound there is hardly any justification for it, the latter (Bhandi) was a leading figure in the Thaneswar court and not in Kannauj " History of Kannauj p 75 fn 1)

नि सदेह भण्डि कन्नौज का राजनीतिज्ञ नही था, वह थानेश्वर का एक विश्वस्त सेनापति था, और जब कन्नौज में राजनैतिक उत्तराधिकार का मामला

पर कन्नौज के मन्त्री मौखरी सिंहासन की समस्या हर्ष को उत्तराधिकार सौंप उसे राजा स्वीकार कर हल कर लें।

हर्ष ने पहले तो कन्नौज का राजपद स्वीकार करने में अनिच्छा प्रकट की थी लेकिन अन्त में बोधिसत्व के निर्देशानुसार उसने राज्यग्रहण करना स्वीकार

उपस्थित था उस समय वह निश्चय ही पूर्व की ओर गौडाधिपति शशांक का पीछा करने पर लगा था जैसा कि हर्षचरित के विवरण से प्रकट है।

भण्डि ने राज्यश्री के विन्ध्याटवी में होने का समाचार पाने पर हर्ष ने उससे कहा था कि सब काम छोड़ कर जहाँ राज्यश्री है वहाँ वह स्वयं जायेगा और कि वह (भण्डि) भी कटक लेकर गौडाधिप की ओर अभिमुख हो (उसके पीछे जाय)—

> "यत्र सा तत्र परित्यक्तान्यकृत्य स्वयमेवाहं यास्यामि। भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्" (सप्तम उच्छ्वास पृ० ४०४)।

इसीलिए हॉल को भी बाणी को भण्डि से मिलाने में यही कठिनाई प्रतीत हुई।

"The minister Po-ni, whose name \ Julien reads into Bhani and Bani, and into Bhandin or Bhandi, Only Bana provides Bhandin with and alibi at the time Hiuen Tsang sets Po-ni to haranguing at Kanyakub a" Kadambari, P Peterson, Pt II, Introduction, p 65

पी० पीटर्सन आगे मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ह्वेनसांग द्वारा उल्लेखित घटना उस समय घट चुकी थी जब हर्ष राजधानी में ही था और भण्डि लौट चुका था (जो बात कि हर्षचरित को देखते हुए बिल्कुल असम्बद्ध और असगत है) 'I may add in passing that the circumstances that Bhanidin according to Harsha-charita, accompanied Rajyavardhana on his fatal expedition, and was therefore absent from the capital when news of his brother's murder reached Harsha, does not as Hall seems to suppose, throw any difficulty in the way of identification Harsha set out to avenge his brother's death as soon as was

कर लिया था। बोधिसत्व ने गुप्त रूप से देव हर्ष की सहायता करने का आश्वासन भी दिया था, लेकिन साथ ही उसे कन्नौज के सिंहासन पर आरूढ न होने तथा महाराज की उपाधि की जगह केवल राजपुत्र और शीलादित्य की उपाधियाँ ग्रहण करने की सलाह दी थी। इस वृत्त से प्रकट है कि कन्नौज से शशाक के पलायन के बाद क्योंकि मौखरी राजवश मे कोई उत्तराधिकारी शेष न रह गया था, इसलिये कन्नौज के हितैषी और विजेता के रूप मे कन्नौज के राजनीतिज्ञो व मौखरी काल के राजमन्त्रियो ने ही हर्ष को कन्नौज राज्य का उत्तराधिकार सौंप उसे अपना अधिपति बना दिया था[१]।

ह्वेनसाग के अनुसार कनौज-राज्य ग्रहण करने के तुरन्त बाद हर्ष दिग्विजय के लिये निकला था। लगभग ६ वर्ष की प्रथम विजय-यात्रा पूरी करने के बाद ही शायद हर्ष ने थानेश्वर की जगह कन्नौज को अपने साम्राज्य की राजधानी होने

---

practicable after he heard of it, he had not gone far before he met Bhandin returning from the overthrow of the Malava king There is no reason rather every reason to the contrary, for placing the incidents referred to by Hiouen-Thsang prior to Harsha's departure from the capital" (Ibid)

हर्षचरित के विवरणानुसार गौड के विरुद्ध हर्ष के अभियान पर निकलने के बाद भण्डि की हर्ष से मार्ग मे भेंट हुयी थी। भण्डि से राज्यश्री का समाचार पाकर हर्ष स्वय बहिन की खोज मे चला गया था, और भण्डि को वह गौड का पीछा करने का आदेश दे गया था। अत पीटर्सन का यह तर्क स्वीकार नही किया जा सकता कि ह्वेनसाग द्वारा उल्लेखित घटना अभियान से पूर्व की थी, और ह्वेनसाग द्वारा उल्लेखित कन्नौज का राजनीतिज्ञ पोनी (वानी) भण्डि था।

१ " the statesmen of Kanauj on the advice of their leading man Bani (or vani), invited Harshavardhana, to become their soverign The Bodhisattva promised him secret help thereupon Harshavardhan became king of Kanauj—(Watter's, Vol I, page 343)

का गौरव प्रदान किया था। राज्य का विस्तार हो जाने से यह तब आवश्यक भी हो गया था।[1]

ह्वेनसांग ने कन्नौज का वर्णन देते हुये भूल से हर्ष के पूर्वजों-प्रभाकरवर्धन और राज्यवर्धन को भी कन्नौज का राजा बतलाया है और कहा है कि राज्यवर्धन की हत्या होने पर ही कन्नौज के राजनीतिज्ञों ने हर्ष को उत्तराधिकार सौंपा था। ह्वेनसांग के इस भ्रमात्मक विवरण के आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि शायद थानेश्वर के वर्धन-सिंहासन पर बैठने में भी हर्ष असमंजस में पड़ गया था और उसका कारण सम्भवतया राज्यवर्धन का कोई उत्तराधिकारी मौजूद होना था। वि० स्मिथ कहता है कि इसी दिक्कत को सरल करने के लिये शायद बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की अनुमति लेने का बहाना किया गया, किन्तु इस पर भी हर्ष तत्काल महाराज बनने का साहस न कर सका। और फांग-ची के आधार पर वि० स्मिथ आदि यह अनुमान करते हैं कि हर्ष ने पहले (लगभग ई० ६१२ तक) अपनी बहिन अथवा भाई के बालक के संरक्षक के रूप में ही कन्नौज का शासन अपने हाथ में लिया था, और उसे कन्नौज का सिंहासन प्रदान कराने में भण्डि का प्रमुख हाथ रहा था।[2]

---

१ बसाक की सम्मति में कन्नौज, प्रथम गौड़ अभियान के बाद राजधानी बनायी गयी थी—(History of North Eastern India, p 151)

२ वि० स्मिथ के अनुसार—"The murdered king was too young to have a son capable of assuming the cares of Government, and the nobles seem to have hesitated before offering the crown to his youthful brother But the disorder and anarchy from which the country suffered forced the councillors to come to a decision concerning the succession

The ministers, acting on the advice of Bhandi, ultimately resolved to invite Harsha to undertake the responsibilities of the royal office, for some reason, he scrupled to express his consent, and it is said that he consulted a Buddhist oracle before accepting the invitation Even when his reluctance, had been overcome

राज्यवर्धन की कोई सन्तान नही थी और न वह कन्नौज का ही राजा था, यह निर्विवाद है। कन्नौज और थानेश्वर मूलत दो भिन्न राज्य थे, इसमें भी कोई सन्देह नही। थानेश्वर मूलत पुष्यभूतियों अथवा वर्धनो की राजधानी थी और कन्नौज मौखरियो की। ग्रहवर्मन की मृत्यु और राज्यश्री के नि सन्तान होने पर ही कन्नौज के राजनीतिज्ञो अथवा मन्त्रियो ने हर्ष को कन्नौज के मौखरी राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार किया था। भण्डि जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, थानेश्वर का सेनापति था, जिसे हर्ष ने गौड का पीछा करने को भेज दिया था। अत कन्नौज का उत्तराधिकार हर्ष को प्रदान कराने मे, भण्डि का प्रमुख हाथ रहा था, वि० स्मिथ का यह अनुमान नितान्त असगत और हर्षचरित के विवरण के सर्वथा प्रतिकूल है।

ह्वेनसाग के विवरण मे हर्ष को केवल उत्तराधिकार सौपे जाने का उल्लेख है और राज्यश्री की ओर से सरक्षक बनने का (जैसा कि वि० स्मिथ समझते है) उसमें कही कोई सकेत नही है।[१] हर्ष के अभिलेख, दानपत्र और सिक्को

---

by the favourable response of the oracle, he still sought to propitiate Nemisis by abstaining at first from the assumption of kingly style

These curious details indicate clearly that some unknown obstacles stood in the way of Harsha's accession, and compelled him to rely for his title to the crown upon election by the nobles rather than upon his hereditory claims The Chinese work Fang che represents Harsha as administering the government in conjunction with his widowed sister "which suggests that he at first considered himself to be Regent on behalf of his sister or possibly an infant child of his late brother"—Early History of India, pub 1914, IIIrd ed p 337

१ ह्वेनसाग के विवरण और वॉटर्स द्वारा उल्लिखित 'फाग-ची' के आधार पर (Watters, Vol I p 345) बहुत स अन्य विद्वानो की भी राय है कि प्रारम्भ में हर्ष ने राज्यश्री से मिल कर ही कन्नौज का शासन अपने हाथ में लिया था।

आदि में भी राज्यश्री का कोई नामोल्लेख नहीं है। यदि हर्ष, राज्यश्री की ओर से संरक्षक बन कर कन्नौज का शासन प्रहण किया होता, अथवा वह और उसकी बहिन दोनों मिल कर कुछ समय कन्नौज का शासन किये होते तो राजकीय लेखों,

---

डा० बसाक लिखते हैं he (Harsha) administered the empire in co-partnership with his sister'—History of North Eastern India p 151

श्री एन० रे की सम्मति है— Harsha was a Regent" IHQ, 1927, p 773

डा० त्रिपाठी की सम्मति है—' Now this unostentatious title of Kumara (or Rajputra-Siladitya-as related by Hiuen-Tsang) definitely suggests that although according to Bana, Harsha was already king of Thaneswar, in Kanauj he was merely charged with the duty of keeping the machinery of the government running, and his political status there was originally no better than that of a guardian or, as Mr N Ray says, "Regent" Indeed this fact is even corroborated by a chinese work Fang-chih

It would appear that with the lapse of time, when Harsha had thoroughly made his position secure, and laid opposition, if any, to rest, he formally transferred his capital from Thaneswara to Kanau , and declared himself soverign ruler of the latter kingdom also by assuming the Imperial titles, which appear in his inscriptions Thus begining with a modest guardianship or regency, Harsa's imposition of his authority over Kanauj was a sort of quiet usurpation . "

हमें यह देख कर विस्मय होता है कि ह्वेनसांग के इस स्पष्ट कथन के बावजूद कि कन्नौज का राज्य वहां के राजनीतिज्ञों ने हर्ष को सौंपा था, उसके 'कुमार एवं शीलादित्य' की उपाधियों के आधार पर बढ़ा-चढ़ा कर निष्कर्ष अनुमानित किये गये हैं। इसके प्रमाण में चीनी स्रोत 'फ़ाग-ची'

दानपत्रों व कन्नौज में प्रचलित किये गये सिक्कों में हमें हर्ष के साथ-साथ राज्यश्री का नाम भी अवश्य अंकित मिलता।

बाण के अलावा ह्वेनसाग से भी हमें ज्ञात है कि हर्ष ने दिग्विजय को निकलने समय सर्वप्रथम अपने भाई के हत्यारे गौड के राजा शशाक से बदला लेने का निश्चय किया था। थानेश्वर से वह इसी उद्देश्य से अभियान पर निकला था। लेकिन अभियान के बीच में भण्डि को गौड के विरुद्ध भेजकर हर्ष स्वय अपनी बहिन की खोज में चला गया फिर बहिन के साथ वापस लौटने पर कन्नौज की सुव्यवस्था करने के हेतु कुछ समय के लिये उसे कन्नौज में ही रुक जाना पडा था। बाण से यह पता नहीं चलता कि गौड के विरुद्ध पहिले अभियान में भण्डि को क्या सफलता मिली ? यह भी ज्ञात नहीं कि गौडाधिप शशाकगुप्त के साथ उसका युद्ध हुआ भी था या नहीं, किन्तु इतना निश्चित है कि शशाक प्रारम्भ में सकुशल कन्नौज छोड कर बिना कोई भारी क्षति उठाये अपने राज्य को वापस लौट जाने में सफल हो गया था[१]।

को उपस्थित किया जाता है, जिसका हर्ष के सन्दर्भ में प्रमाणित ग्रन्थ होना स्वय विवादास्पद है। फाग-ची के विवरण पर वॉटर्स ने टिप्पणी की है—"The Fang-chi represents Harshavardhana as administrating the government in conjunction with his widowed sister,' a statement which is not, I think, either in the 'Life' or the 'Records' (Watters, Vol V, p 349)

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि हर्ष और राज्यश्री दोनो मिल कर राज्य किये होते तो ह्वेनसाग की जीवनी या यात्रा विवरण में इस महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख अवश्य ही हुआ होता। लाइफ और रेकर्ड्स में बहुत सी अप्रमुख बातों व घटनाओं तक का विस्तार से उल्लेख है, तब ऐसे प्रमुख विषय का उल्लेख न किया जाना यही प्रकट करता है कि ऐसी कोई बात थी ही नहीं।

१ वि० स्मिथ भी अनुमान करते हैं —"The details of the campaigns against Sasanka have not been recorded, and it seems clear that he escaped with little loss"—(Ealry History of India, p 339),

कन्नौज की व्यवस्था हाथ में लेने के पश्चात् जैसा कि ह्वेनसांग से ज्ञात होता है, हर्ष अपने भाई के हत्यारे (शशांक) से बदला लेने और विभिन्न प्रदेशों की विजय के लिये अभियान पर निकला था[1]। ह्वेनसांग से यह भी विदित होता है कि कन्नौज के आसपास के प्रदेश भी तब स्वतन्त्र थे और उन्हें दबाना भी हर्ष के लिये नितांत आवश्यक था। इन्हीं सब कारणों से हर्ष ने प्रतिज्ञा[2] की थी जब तक वह अपने भाई के शत्रुओं और आसपास के प्रदेशों को जीत न लेगा 'दाहिने हाथ से भोजन न करेगा'। इस वृत्त से स्पष्ट है कि हर्ष को अभी भाई के शत्रु गौडाधिप से बदला लेना शेष था, लेकिन गौड (कामरूप-बंगाल) की ओर बढ़ने से पूर्व आसपास के मध्यदेश के स्वतन्त्र प्रदेशों पर प्रभुत्व स्थापित करना उसके लिये नीतियुक्त एवं आवश्यक था। अतः हम अनुमान कर सकते हैं कि मध्यदेश की विजय का कार्य समाप्त करने के पश्चात् ही वह गौड की ओर निर्विघ्नता के साथ अभिमुख हो सका होगा। शशांक से दान सम्बन्धी तीन ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जो कोंगद (ह्वेनसांग का कोंग उ तो—गंजाम) के महासामन्त माधवराज द्वितीय द्वारा प्रेषित किये गये थे। ये दानपत्र गुप्त-संवत् ३०० या ६१९-२० ई० सन् के हैं और उनमें माधवराज को शक्तिशाली महाराजाधिराज शशांक का महासामन्त कहा गया है।[3] इससे प्रकट है कि राज्यवर्धन की हत्या के तेरह वर्ष बाद तक शशांक महाराजाधिराज के रूप में शक्ति के साथ शासन करता रहा। प्रत्यक्ष है कि सम्भवतः शशांक का मार्ग अवरुद्ध न कर सका था और वह महत्त्व अपने देश

---

१ "as soon as Siladitya became ruler he got together a great army and set out to avenge his brother's murder, to reduce the neighbouring Countries to submission" (Watters, Vol I p 343)

२ 'The enemies of my brother are unpunished as yet, the neighbouring countries not brought to submission, while this is so my right hand will not lift food to my mouth"—(Records of the Western countries, Vol I, p 213)

३ "चतुरुदधि-सलिल वीची मेखलानिलीनायां सद्वीपनगरपत्तनवत्यां वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रये वर्तमाने"—

महाराजाधिराजा श्री शशांकराज्ये

(Epigraphia Indica, Vol VI, p 143)

(राज्य) वापस लौट गया था, तथा ई० सन् ६२० तक वह हर्ष द्वारा भी पराभूत नहीं किया जा सका था।

बौद्धग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार हर्ष ने गौड की राजधानी पुड्र पर आक्रमण किया और शशांक (सोम) को पराजित कर उसकी शक्ति को कुचल उसे अपने राज्य की सीमाओं में रहने को विवश कर दिया था। गौड-विजय से संतोष-लाभ कर हर्ष तब सोल्लास स्वदेश वापस लौट आया।[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि हर्ष ने पुन्ड्र के युद्ध में शशांक को पराजित किया, लेकिन पूरी तरह से उसे उन्मूलित नहीं किया था या नहीं कर सका था। यह कार्य वह शायद दूसरी बार के आक्रमण में ही पूरा कर सका होगा। मंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार शशांक के शासनकाल के अंत में अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न हो चली थी और गौड-राजतंत्र छिन्न-भिन्न हो चला था। उसके मरने पर (तिथि का पता नहीं चलता न यह ज्ञात होता है कि उसकी मृत्यु कब और कैसे हुयी ?) उसका पुत्र मानव गद्दी पर बैठा, जिसने ८ महीने ५ दिन राज्य किया और उसके साथ ही फिर गौड-राज्य कालचक्र में फंस कर समाप्त हो गया।

बसाक के साथ हमें भी यह प्रतीत होता है कि हर्ष ने शशांक के अंतिम दिनों में अथवा उसके उत्तराधिकारी के समय में दुबारा फिर पूर्वी देश पर आक्रमण किया था और इस बार वह कर्णसुवर्ण पर पूर्ण अधिकार करने में सफल रहा था[2]।

---

१ पूर्वदेश तदा जग्मु पुण्ड्राख्य पुरमुत्तमम्।
— ७२३ ॥
पराजयामास सोमाख्य दुष्टकर्मानुचारिणम्।
ततो निषिद्ध सोमाख्यो स्वदेशेनावतिष्ठत ।
७२५ ॥
दुष्टकर्मा हकाराख्यो नृप श्रेयसो चार्यधर्मिण ॥ ७२६
स्वदेशेनैव प्रयात यथेष्टमतिनापि वा ७२७ ॥
(An Imperial History of India, K P Jaiswal, p 50)

२ बसाक की सम्मति में सम्भवतया गौड की पूर्ण विजय शशांक की मृत्यु के पश्चात् ६१९ और ६३७ ई० सन् के बीच की गयी थी—"It was probably after Sasank's death which must have taken place sometime between 619 A D and 637 A D When Yuan

शशाङ्क की सम्मति में कर्णसुवर्ण का राज्य जीतने पर हर्ष ने उसे अपने मित्र आसाम के राजा को, जिसने सम्भवतया गौड के अंतिम आक्रमण में उसकी सहायता पहुँचायी थी, दे दिया।[1] हर्ष को यह सफलता ई० सन् ६२० के बाद और ई० सन् ६२७ के बीच ही कभी प्राप्त हुयी होगी।

शशाङ्क को दबाने और उससे प्रतिशोध लेने में हर्ष को यद्यपि काफी समय लगा था, पर इस बीच उसकी दिग्विजय का कार्य चलता रहा और अभिषेक के

Chwang travelled over Magadha and Karnasuvarna, that Harsha could take entire possession of his enemy's kingdom (History of North Eastern India, p 152)

बाण के इस उल्लेख,—"अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशसितारातिना प्रकटीकृतो विक्रमः"—नरों में सिंह हर्ष ने अपने भुजबल से शत्रु को मार नरसिंह रूप में विक्रम प्रकट किया (तृतीय उच्छ्वास (पृ० १५४), से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस शत्रु को मार कर हर्ष ने नरसिंह-रूप विक्रम प्रकट किया वह शत्रु शायद गौडाधिप ही रहा होगा, क्योंकि हर्षचरित में एकमात्र गौड ही अधम शत्रु के रूप में वर्णित है।

डा० त्रिपाठी गौड राज्य की पूर्ण विजय ६२०–६२३ के बीच अनुमानित करते हैं—(History of Kannauj, p 128)।

१ "Harsha, after taking possession of the kingdom of his brother's murderer from his own hands at some later date (during Sasanka's life or after Sasanka's death) from those of his unknown successor, might had made it over to Bhaskarvarman If Harsha took possession of Karnasuvarna during Sasanka's lifetime, he must have done so by his second campaign, with the help of his ally Bhaskarvarman "History of North-Eastern India, p 153

डा० डी० सी० गाङ्गुली का अनुमान है कि पुण्ड्र और कर्णसुवर्ण सम्भवतया पहले आसाम के राजा के ही अधीन थे और शशाङ्क ने उन्हें भास्करवर्मन से जीता था (Indian Historical Quarterly, 1936, Vol XII, p 459)। यदि यह अनुमान सही हो तो हर्ष ने शायद गौड राज्य पर भास्करवर्मन का पैतृक अधिकार समझ कर ही कर्णसुवर्ण उसे दिया था।

लगभग ६ वर्ष के भीतर उसने अनेक जनपदो (प्रदेशो) को जीत कर अपने राज्य मे मिला लिया था। यह ह्वेनसाग के विवरणो से प्रकट है।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग मे बडा भारी दान-महोत्सव मनाया करता था। ई० सन् ६३४ में हर्ष के साथ प्रयाग दान-महोत्सव मे ह्वेनसाग भी शामिल हुआ था। उस बार यह उत्सव छठवी बार मनाया जा रहा था। इसके आधार पर गणना करने से स्पष्ट होता है कि प्रयाग का पहला दान-महोत्सव प्रथम बार लगभग ६१२ या ६१३ ई० सन् में मनाया गया था। हर्ष के प्रयाग में दान महोत्सव प्रारम्भ करने से यह स्वत प्रकट हो जाता है कि प्रयाग-जनपद हर्ष के राज्य मे था और प्रयाग पर अनुमानत लगभग ६१२ ई० सन् तक या उससे पूर्व उसका प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। प्रयाग की विजय इस बात को भी स्वर देती है कि उस समय के भीतर (६१३ ई०) कन्नौज के आसपास के प्रदेशो से लेकर पूरव में साकेत (अयोध्या) और प्रयाग तक के जनपद वर्धन-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे, उसके अग बन गये थे।

बाण ने हर्षचरित मे उपमा के रूप मे हर्ष के लिए लिखा है कि गगा और यमुना का जल स्वय आकर उनका अभिषेक कर रहे थे—

"प्रयागप्रवाहवेणिकावारिणेवागत्य स्वयमभिषिच्यमानम् (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२७)।

यह उक्ति अथवा उपमा हर्ष के गगा-यमुना के दोआब अर्थात् आर्यावर्त्त पर प्रभुत्व का ही सकेत करती ह।[1] ह्वेनसाग ने हर्ष की दिग्विजय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसके शासन के प्रथम ६ वर्ष लगातार युद्ध करते हुए बीते और जब तक उसने पाँच गौडो पर अधिकार नही कर लिया न तो हाथियो के हौद हटाये गये और न सैनिको की वर्दियाँ ही बदली गयी।[2] (१) सारस्वत मण्डल

---

१ फैजाबाद जिले में प्राप्त हर्ष के सिक्को से भी उसका अयोध्या पर आधिपत्य प्रमाणित होता है (J R A S, 1906, pp 843–850)

२ "He (Harsha) went from east to west subduing all who were not obedient The elephants were not unharnassed, nor the soldiers unhelmeted After six years he had subdued the five Indies"—(Records of Western countries, Vol I, p 213 Watters, Vol I, p 343)

या स्वराष्ट्र (पंजाब और कश्मीर), (२) कान्यकुब्ज (इसमें उत्तर प्रदेश से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक के प्रदेश थे) (३) गौड़ (बंगाल) (४) मिथिला (५) उत्कल (उड़ीसा, गंजाम)[1]—ये पांच गौड़ माने जाते थे। किन्तु इन पांच गौड़ों की विजय हर्ष ६ वर्ष के भीतर कर लिया था, यह संदिग्ध है। ह्वेनसांग के विवरण से ही प्रकट है कि ये सब विजयें ६ वर्ष के भीतर नहीं सम्पन्न हो सकी थीं। ह्वेनसांग के विवरणानुसार हर्ष, जो ई० सन् ६०६ में सिंहासनारूढ़ हुआ था, बंगाल पर ६२० ई० के पश्चात् और गंजाम पर तो अपने शासन और जीवन के अन्तिम काल में ही अधिकार स्थापित कर सका था।

हर्ष द्वारा सिंधु व हिमप्रदेश आदि की विजय का हर्षचरित में स्पष्ट उल्लेख है। बाण ने लिखा है कि हर्ष ने सिन्धुराज के मद को मर्दित कर उसकी राजलक्ष्मी को अपनी बना लिया था—

"सिन्धुराज प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता" (तृतीय उच्छ्वास्, पृ० १५८)।

बाण से ही हमें विदित होता है कि सिन्धुराज के साथ संघर्ष पूर्वकाल से चला आ रहा था। सिन्धुराज को अपने प्रचण्ड प्रताप से हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन ने भी दबा कर रखा था। इसीलिए बाण ने प्रभाकरवर्धन को सिंधुराज के सन्दर्भ में उनका ज्वर (पीड़ित करने वाला) कहा है—

"सिंधुराज ज्वरो" (चतुर्थ उच्छ्वास्, पृ० २०३)।

प्रकट है कि प्रभाकरवर्धन ने यद्यपि सिंधुराज को अपनी शक्ति से आतंकित और दमित कर रखा था, लेकिन वह उसे पूरी तरह पराभूत न कर सका था। यह कार्य हर्ष ने किया, जिस कारण उसे सिंधुराज को प्रमथ करने वाला कहा गया है। लेकिन बाण के इस उल्लेख से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि सिंधुराज को उन्मूलित कर उसके राज्य को हर्ष ने अपने साम्राज्य में मिला लिया था। यह अनुमान अधिक सम्भावित है कि हर्ष ने सिंधुराज को प्रमथ कर उसे अपने अधीन सामन्त के रूप में बना रहने दिया था। हमें ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात है कि सिंध में उसके समय बौद्धधर्मी शूद्र-कुल के राजाओं का राज्य था। चीनी यात्री ने सिंध के राजा का उल्लेख करते हुए उसे शूद्र-कुल और बौद्ध-धर्मावलम्बी

---

१ Harsha, R K Mukerji, p 44
भारतीय इतिहास की भूमिका, डा० राजबली पाण्डेय, पृ० २५८।

बताया है।[१] प्रकट है कि हर्ष के समय में सिंध एक पृथक राज्य के रूप में कायम था।

बाण ने हर्षचरित में सिन्धुराज के अलावा हर्ष द्वारा पराभूत एक अन्य राजा का उल्लेख किया है जिसे युद्ध में पछाड़ने पर उसके यशस्वी महानाग (महान् हाथी) दर्पशात ने सूंड में दबोच लिया था और जिसे गजराज से मुक्त कर

---

१ राधाकुमुद मुकर्जी की सम्मति में हर्ष ने सिंध के जिस राजा को दबाया था, वह साहसी राय था (Harsha p 41)

डा० त्रिपाठी का अनुमान है कि, "Probably sometime during his reign Harsha came into collision with the king of Sindh, and it resulted in the defeat of the latter But the victory was no more than a brilliant conclusion of hostilities, as in the case of Pulakesin II, for we know definitely on the authority of Yuan Chwang that Sindh continued to be ruled by a king of the Sudra caste (History of Kanauj, p 114)

यह तो ठीक है कि सिंध के राजा को उखाड न फेंका गया हो किन्तु उसे हराया गया था यह डा० त्रिपाठी भी स्वीकार करते हैं। लेकिन डा० त्रिपाठी का यह कथन, कि शायद युद्ध के बाद संधि होने पर हर्ष की वही स्थिति रही होगी जैसी पुलकेसिन के साथ संघर्ष के बाद रही, सिंधुराज के सन्दर्भ में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमें ज्ञात है कि पुलकेसिन ने हर्ष को नर्मदा से आगे बढ़ने से रोक दिया था, जिस कारण हर्ष को चालुक्य-राज की शक्ति से दब कर नर्मदा से प्रत्यागमन करना पडा था। लेकिन सिंधु-राज के साथ हर्ष को इस प्रकार दबना कहाँ पडा था? बाण के अनुसार सिंध का राजा पराभूत किया गया था और उसकी राजलक्ष्मी को हर्ष ने आत्मी-कृत कर लिया था। यह साक्ष्य इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि सिंधुराज को हर्ष से दबकर उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लेना पडा होगा। अत हर्ष की विजय के बाद सिंधुराज का स्थान सामंत राजा का हो गया था, इसमें सदेह नहीं किया जा सकता। फलत सिंधुराज को हर्ष के सन्दर्भ में पुलकेसिन की बराबरी का स्वीकार नहीं किया जा सकता।

हर्ष ने छुड़वा दिया था, जिस प्रकार असुरराज बलि ने महानाग वासुकि को मुक्त कर छोड़ दिया था—

"अत्र बलिना मोचितभूभृत्प्रेष्टनो मुक्तो महानाग" (हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५८)।

यह राजा कौन था और कहाँ राज्य करता था, इसका हर्षचरित में उल्लेख नहीं है। लेकिन असुरराज से उसे मोचित (मुक्त) करने और राजा बलि द्वारा महानाग वासुकी को मुक्त करने में उपमा द्वारा जो सादृश्य दिखाया गया है, उससे यह अनुमान होता है कि हर्ष ने सम्भवतया आर्यावर्त्त के किसी नाग राजा को परास्त किया था।

बाण ने यह भी प्रकट किया है कि हर्ष ने दुर्गम 'तुषारशैल' अथवा हिमालय के अगम्य जनपदों से भी कर ग्रहण किया था (कर वसूल किया था), जिस प्रकार परमेश्वर शिव ने हिमालय की पुत्री दुर्गा का कर ग्रहण किया था—

"अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीत कर" (हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५४)।

बाण के तुषारशैलभू (हिम-प्रदेश) से कर वसूल करने के उल्लेख से सामान्यत विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि उससे अभिप्राय शायद हर्ष की नेपाल पर विजय प्राप्त करने से है।[1] तुषारशैलभू की विजय से नेपाल की विजय

---

१ आर० के० मुकर्जी के अनुसार—"From Bana we gather further that Harsha had taken tribute from an 'inaccessible land of snowy mountains', which may mean Nepal (Harsha, p 30)

इसी प्रकार के० एम० पणिक्कर भी हर्ष का नेपाल पर आधिपत्य किया जाना अनुमान करते हैं (Harsha, pp 18–20)।

बुलर (Buhler) और भगवानलाल इन्द्राजी ने भी 'तुषारशैलभू' को नेपाल के अर्थ में ग्रहण किया है—(Indian Antiquary, Vol , XIII, pp 413–421)।

वि० स्मिथ—"In the latter years of his reign the sway of Harsha extended over the whole of the basin of the

समझने वाला का कहना है कि ह्वेनसाग द्वारा उल्लिखित नेपाल के राजा अशुवर्मन (ह्वेनसाग ने, जो लगभग ६३७ ई० से ६४३ ई० तक भारत का पर्यटन करता रहा, अशुवर्मन का उल्लेख समकालीन राजा के रूप में किया है) के शिलालेखो में उल्लिखित सवत् की तिथिया ३४, ३९, ४५ आदि शायद हर्ष द्वारा प्रचलित (६०६–०७ ई०) सवत की हैं, क्योंकि अशुवर्मन, जो सामन्त अथवा महासामन्त था, स्वय किसी सवत् का प्रचारक नही हो सकता। सवत् का प्रचलन सार्वभौम राजा ही कर सकता है। अत अशुवर्धन के अभिलेखो में अकित सवत् उसका 'सवत्' नही है। नेपाल की वशावली के अनुसार अशुवर्मन के राज्यारोहण के कुछ ही वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नेपाल गया था और उसने वहाँ अपना सवत् प्रचलित किया था। नेपाल की विजय से अर्थ लेने वाले विद्वान् वशावली के विक्रमादित्य को हर्ष से समीकृत करते है, और इसलिये वे मानते है कि अशुवर्मन के अभिलेखो का सवत् हर्ष का सवत् है। फलत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि हर्ष ने नेपाल पर चढाई की थी और अपने सवत् का भी वहाँ प्रचलन किया था।

विद्वान् लेखक सिल्विन लेवी के अनुसार नेपाल हर्ष के समय तिब्बत के

Ganges (including Nepal)"—Early History of India, third edition, p 341

किन्तु हर्ष की मृत्यु होने पर जब कन्नौज राज्य के हरणकर्त्ता अर्जुन और चीनी दूतमण्डल में झगडा हुआ तो, वि० स्मिथ कहते है कि तिब्बत ने नेपाल के राजा से चीनी दूतमण्डल के नेता को सैनिक सहायता प्रदान करवायी क्योकि नेपाल उस समय तिब्बत के अधीन था—"Nepal was at that time being subject to Tibet" (Ibid p 353)। चीन और हर्ष के बीच के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो को देखते हुए यह अनुमान करना असगत होगा कि हर्ष ने यद्यपि नेपाल को अपने अधीन कर लिया था, लेकिन कुछ समय बाद तिब्बत (जो चीन का सामन्त राज्य था) ने नेपाल प्रदेश हर्ष से छीन कर अपने अधिकार मे कर लिया था। यदि ऐसा हुआ होता तो शायद ह्वेनसाग इतना उल्लेख करना न भूलता। इन बातो को देखते हुए वि० स्मिथ की राय अपने में ही एकमत प्रतीत नही होती।

हर्ष और नेपाल के सम्बन्ध पर देखिए—Keilhorn, List of Northern Inscriptions, Epigraphia, Vol V, App p 75

अधीन था। डॉ० स्मिथ सिल्विन लेवी के साथ नेपाल का उस समय तिब्बत का सामन्त राज्य होना स्वीकार करता है लेकिन साथ ही नेपाल पर हर्ष का आधिपत्य होना भी बतलाता है।[1] यह परस्पर विरोधी मत कहीं अधिक संगत नहीं है।

अंशुवर्मन के शिलालेखों में उल्लिखित संवत् को हर्ष का संवत् मान कर ही नेपाल को हर्ष का अधीनस्थ राज्य मानने पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार रत्नावली के विक्रमादित्य का हर्ष से मिलाना भी संगत प्रतीत नहीं होता। हर्ष ने अपने राज्यारोहण पर 'संवत्' चलाया था यह संदिग्ध है। (अल्बरूनी ने हर्ष द्वारा संवत् चलाने का उल्लेख किया है, लेकिन बाण के हर्षचरित में इस महत्त्वपूर्ण घटना का कोई उल्लेख नहीं है। यदि हर्ष ने संवत् प्रचलित किया होता तो बाण उसका उल्लेख करना न भूलता। अतः अंशुमान् के लेखों के संवत् को हर्ष का संवत् मानना संगत न होगा। साथ ही इस सम्बन्ध में डा० त्रिपाठी के साथ हमारा भी मत है कि रत्नावली के आधार पर कहीं इतिहास का निर्माण करना कठिन है। स्पष्टतः रत्नावली का विक्रमादित्य हर्ष नहीं हो सकता क्योंकि बाण के हर्षचरित और ह्वेनसांग के विवरण, तथा हर्ष के अभिलेखों आदि में कहीं भी उसे विक्रमादित्य के विरुद से अलंकृत नहीं किया गया है।[2] निष्कर्षतः नेपाल को हर्ष के विजित राज्य में शामिल करना सही नहीं होगा।

एक अन्य विद्वान् 'तुषारशैलभू' को तुखार या तुषार प्रदेश से मिलाते हैं।[3]

डा० त्रिपाठी "तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीत करः" से यह भी अर्थ लेते हैं कि शायद इस उपमा में यह अभिप्रेत है कि हर्ष ने किसी शक्तिशाली पर्वतीय राजा की कन्या से विवाह (करग्रहण) किया था।[4]

---

१ *Early History of India*, V A Smith, pp 341 & 353

२ History of Kanauj, pp 92–98

३ Harshavardhana—Ettinghausen, p 47

४ डा० त्रिपाठी का अनुमान है कि, 'Atra Parmesvarena tushar shailbhuvo Drugaya grihita karah" (अत्र परमेश्वरेण तुषारशैल भुवो दुर्गाया गृहीत करः) might also mean —Here the supreme lord has obtained the hand of Durga born in the "snow mountains," which in all probability alludes to Harsha's marriage with some hill-princess belonging to a very powerful family"—History of Kanauj, p 98.

ह्वेनसांग की जीवनी के विवरण के आधार पर अनुमान होता है कि हर्ष-चरित के 'तुषारशैलभू' से अभिप्राय शायद कश्मीर से है। 'लाइफ' (The life of Hiuen-Tsang) में उल्लेख है कि कश्मीर के भिक्षु-संघ के पास बुद्ध के दाँत का एक अवशेष था। हर्ष शीलादित्य उस पवित्र दांत को देखने और पूजने की इच्छा से सीमांत पर पहुँचा और कश्मीर के राजा से इसकी अनुमति चाही। भिक्षुओं के संघ ने दांत को छिपा दिया, लेकिन कश्मीर के राजा ने शीलादित्य की शक्ति से आतंकित होकर स्वयं दंतावशेष खोज निकाला और उसे हर्ष को समर्पित कर दिया। शीलादित्य दंत-अवशेष को देख कर अभिभूत हो उठा और बलप्रयोग कर वह अवशेष को अपने साथ लेता आया।[1] हर्ष द्वारा बलपूर्वक दंतावशेष के छीन लाने का उल्लेख हर्ष के समक्ष कश्मीर-राज के पराभव का स्पष्ट इंगित देता है।

पश्चिम की ओर हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय (ह्वेनसांग का ध्रुवभट्ट या ध्रुवपट्ट) को पराजित किया था जैसा कि दद्द द्वितीय के नासुरी अभिलेख से ज्ञात होता है। नासुरी अभिलेख में उल्लेख है कि हर्षदेव से पराजित होने पर वल्लभी के राजा ने भड़ौच के गुर्जर महाराज दद्द द्वितीय के पास शरण ली थी।[2] लगभग ६४१ ई० में ह्वेनसांग ने पश्चिमी भारत का पर्यटन किया था। वल्लभी का वर्णन करते हुए चीनी-यात्री ने लिखा है कि वहाँ का राजा ध्रुवभट्ट (या ध्रुव-

---

१ "Siladitya seeing it (tooth of Buddha) was overpowered with reverence, and exercising force carried it off to pay it religious offerings"—The Life of Hiuen-Tsang, Beal p 183

"The king of Kashmir was compelled to surrender a tooth-relic to Harsha"—An Advanced History of India, Ed by R C Majumdar etc, p 159

२ Indian Antiquary, XIII, pp 77-79—"The illustrious Dadda, whose pure mind was not agitated by the freaks of the mighty kali age, whom with the grace of a white cloud, there hung ceaselessly a canopy of glory gained by protecting the lord of Valabhi, who had been defeated by the great lord, the illustrious Harshadeva"

पट्ट) क्षत्रिय जाति का था और कन्नौज के महाराज शीलदित्य का दामाद था।[१] नासुरी अभिलेख और ह्वेनसाग के उल्लेख से प्रकट होता है कि हर्ष से पराजित होकर वल्भी के राजा ने भाग कर पहले दद्द के यहाँ शरण ली, लेकिन बाद में शायद वल्लभीराज ने आत्मसमर्पण कर हर्ष की आधीनता स्वीकार कर ली थी।[२]

---

१ Records of Western Countries, Bk XI, Vol II, Beal, p 267

२ डा० त्रिपाठी अनुमान करते हैं हैं कि ध्रुवसेन द्वितीय ने अपने भुजबल से पुन स्वतत्रता प्राप्त कर ली थी और इसलिए—" his previous defeat referred to in the Nasuri inscription was no proof of feudatory rank"

डा० मजुमदार के आधार पर डा० त्रिपाठी यह समझते हैं कि हर्ष से आतकित होकर वल्भी और भडौंच आदि राज्यों ने पुल्केसिन से मिल कर कन्नौज के विरुद्ध एक सगठित मोर्चे का गठन किया था जिसके परिणामस्वरूप हर्ष पूर्णरूपेण पराभूत किया जा सका। डा० त्रिपाठी आगे कहते हैं कि इस सगठित मोर्चे के भय से ही—"Harsha gave way against these tremendou odds, and a treaty was arranged, stipulating the restoration of Dhruvbhatta II, who (perhaps as a mark of the termination of hostilities) further accepted the hand of Harsha's daughter The matrimonial arrangement procured for Harsa the alliance of his quondam foe, *who could henceforth be relied upon to restrain the* northern ambitions (If any) of his great southern neighbour Pulakesi II—(History of Kanauj, pp 110–11)

डा० त्रिपाठी के उपरोक्त विवरण से प्रकट होता है कि पुल्केसिन से युद्ध होने के पूर्व हर्ष वल्भी के राजा को हरा चुका था। अत वल्भी और भडौंच के राजाओ ने डर कर पुल्केसिन् की शरण ली और उससे मिल कर कन्नौज के विरुद्ध एक सघ बनाया। हर्ष को नर्मदा पर इसी सघ ने पराभूत किया था। इसी सघ के भय से विजयी होने पर भी हर्ष को ध्रुवसेन द्वितीय का राज्य उसे लौटा देना पडा था, और अपनी बेटी भी उसे विवाह देनी पडी थी। यदि वस्तुस्थिति इस प्रकार की थी तब यह समझ में नही आता कि

सम्भवतया वल्लभी राज के आत्मसमर्पण से प्रसन्न हो हर्ष ने मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने पर ध्रुवभट्ट से अपनी पुत्री का विवाह कर उसे अपना सुहृद भी बना लिया था। यह वैवाहिक सम्बन्ध हर्ष की कुशल राजनीतिज्ञता का सुन्दर उदाहरण है। यह सम्बन्ध कन्नौज के लिये राजनैतिक दृष्टि से निश्चय ही लाभप्रद था,

---

दामाद बनने पर ध्रुवसेन किस प्रकार संघ के अधीश्वर पुलकेसिन् का पक्ष छोड़, उसके उत्तरी बढ़ाव को रोकने में हर्ष का सहायक बन सकता था? क्या तब उसे अपने प्रबल रक्षक का भय नहीं हो सकता था? अतः डा० त्रिपाठी आदि का यह अनुमान कि वल्लभी और भड़ौच के राजाओं ने पुलकेसिन के साथ मिल कर हर्ष के विरुद्ध संघ गठित किया था, संगत प्रतीत नहीं होता।

पणिक्कर के अनुसार—"Harsha attacked and defeated the Vallabhi King in 336' The defeated king fled to Dadda of Broach Partly through the intervention of that king and partly because Harsha wanted to safeguard his line of communication in his campaign against the Chalukpa monarch, the Vallabhi king was generously treated He was reinstated and Harsha gave him his daughter in marriage It was after this that Harsha attached Pulkesin—(Shri Harsha of Kanauj p 24)

पुलकेसिन के विरुद्ध वल्लभी से मार्ग के लिए सहयोग प्राप्त करने के लिए ध्रुवसेन द्वितीय से उदारता का व्यवहार किया जाना तो संगत प्रतीत होता है, लेकिन वल्लभी पर आक्रमण की जो तिथि श्री पणिक्कर द्वारा (६३६ ई०) अनुमानित की गयी है वह सही नहीं मालूम होती। पणिक्कर के अनुसार वल्लभी से सुलह होने के बाद ही हर्ष का पुलकेसिन् से युद्ध हुआ था। ऐहोल अभिलेख में अंकित तिथि के आधार पर हर्ष और चालुक्यराज के बीच हुये युद्ध की तिथि ६३४ ई० सन् के पूर्व ही रखी जा सकती है, बाद में नहीं।

अनुमानतः यह तिथि ६२५ ई० और ६३४ ई० के बीच मानी जा सकती है। इस आधार पर वल्लभी के साथ का युद्ध ६२५ ई० या उससे कुछ पहले हुआ होगा।

क्योंकि हर्ष अब दक्षिण की ओर बढ़ने में तथा दक्षिण की चालुक्य शक्ति का प्रसार उत्तर की ओर बढ़ने-फैलने से रोकने में वल्लभी के मित्र-राज्य से पूरी तरह सहयोग का भरोसा रख सकता था। और वल्लभी का सहयोग निश्चय ही हर्ष के लिये लाभप्रद था।

वल्लभी द्वारा हर्ष का प्रभुत्व स्वीकार करने से वल्लभी के अधीनस्थ प्रदेशों (आनन्दपुर-सौराष्ट्र अथवा सोरठ) पर भी कन्नौज का प्रभुत्व स्थापित हो गया होगा, यह सहज अनुमान किया जा सकता है।[१]

उत्तरी भारत के एक बहुत बड़े भाग पर प्रभुत्व स्थापित करने के पश्चात् प्राचीन दिग्विजेताओं (मौर्य चन्द्रगुप्त और अश्वमेध पराक्रमाङ्क समुद्रगुप्त आदि) का अनुसरण करते हुये दिग्विजय के अभिलाषी हर्ष ने भी आ-समुद्र विजय के उद्देश्य से दक्षिणापथ की ओर बढ़ने का निश्चय किया। लेकिन मौर्य और गुप्त दिग्विजेताओं की तरह दक्षिण की विजय में उत्तर विजेता को सफलता न मिल सकी और उसका निश्चय कभी पूरा न हो सका। हर्ष एक विशाल सेना लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा था। लेकिन दक्षिणापथ के शक्तिशाली चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय ने उसकी सेना को नर्मदा से आगे बढ़ने से रोक दिया। हर्ष का निश्चय चालुक्यों के निश्चल अवरोध के सामने नत होकर रह गया। परिणामतः हर्ष की दक्षिण विजय की आशा कभी पूरी न हो सकी।

पुलकेशिन् द्वितीय को 'दक्षिणापथेश्वर' कहा जाता है। उसके समय में चालुक्य साम्राज्य विन्ध्याचल से लेकर दक्षिण में चोल, पाण्ड्य और केरल राज्य तक विस्तृत था। ऐहोल अभिलेख में कहा गया है कि पुलकेशिन ने लाट, मालव, और गुर्जरों को दबाया और उन्हें सामन्तों के अनुरूप आचरण करना सिखलाया। पूरब में कलिंगों और कोसलों को दबा कर वह सुदूर दक्षिण के जनपदों की ओर बढ़ा और पृष्टपुर व कांची के राजाओं को पराभूत करता हुआ कावेरी को पार कर चोलों के राज्य में आ पहुँचा। उसने अपरिसीम विभूति से मण्डित अनेक सामन्तों और विशाल सेना से युक्त देव हर्ष के हर्ष को विगलित किया अथवा मिटा दिया। अभिलेख के इस विवरण से प्रकट है कि अपने सामन्तों के साथ हर्ष यद्यपि अपरिमित सेना लेकर दक्षिण की ओर अग्रसर हुआ था, लेकिन पुलकेशिन से

---

१ Record of Western Countries, Vol II, Beal, pp 268–69, Early History of India, IIIrd ed, V Smith, p 340

टकराकर उसका दक्षिण-अभियान व्यर्थ हो कर रह गया। परिणामत हर्ष दक्षिण विजेता होने का हर्ष न प्राप्त कर सका।

ऐहोल अभिलेख में अंकित तिथि ५५६ शक सवत् अथवा ६३४–३५ ई० सन् है। युद्ध कहा पर और कब हुआ था इसका अभिलेख में स्पष्ट उल्लेख नही है। अनुमानत यह युद्ध ऐहोल-अभिलेख की तिथि से कुछ समय पूर्व रेवा अथवा नर्मदा के तट पर लडा गया था।[1] लाइफ और रेकर्डस में भी हर्ष के दक्षिण के असफल अभियान का उल्लेख है।[2] वि० स्मिथ ने इस युद्ध की तिथि अनुमानत ६२० ई० में रखी है।[3] पणिक्कर के अनुसार यह युद्ध वल्लभीराज्य की विजय के बाद ६३६ ई० सन् मे हुआ होगा।[4] हर्ष की पराजय का उल्लेख करने वाला ऐहोल लेख की तिथि ६३४–३५ ई० है, जिससे प्रकट है कि हर्ष और पुलकेसिन में युद्ध इस तिथि से पूर्व हो चुका था। अत चालुक्यो के साथ के युद्ध की तिथि ६३४ ई० सन् अथवा उसके कुछ पहले ही रखी जा सकती है, यद्यपि निश्चित तिथि का अनुमान करना प्रमाणो के अभाव में सम्भव नही है। लेकिन यह कहा जा सकता है जैसा कि पणिक्कर अनुमान करते हैं कि युद्ध ६२० और ६३५ के बीच कभी हुआ होगा।[5]

---

१ Epigraphia Indica, Vol VI, pp 1 ff
Dynasties of the Kanarese Districts, Fleet, p 35

२ Life, Book IV, p 147
'Siladitya Raja, boasting of his skill and the invariable success of his generals, filled with confidence himself marched at the head of his troops to contend with this prince-but he was unable to prevail or subjugate him (Chalukya king Pulkeshi)"
Records of Western countries, Book XI, pp 256–57

३ Early History of India, IIIrd ed, p 340

४ Shri Harsha of Kanauj, p 84

५ डा० त्रिपाठी इस युद्ध की तिथि अनुमानत ६३० ई० के आसपास रखते हैं। अन्य विद्वानो की सम्मति के लिये देखिये—History of Medieval Hindu India, Vol I, p 13 by C V Vaidya', Ancient History of the Deccan (English Translation) p 113 by Prof S Dubreuil,

पुलकेशिन की विजय ने उसकी कीर्ति और सुयश को मुखरित कर दिया था। उत्तरापथेश्वर का विजेता होने का गौरव प्राप्त करने से उसने अब गौरवानुरूप 'परमेश्वर' की उपाधि धारण की। चालुक्य-राज की यह विजय निःसंदेह बहुत महत्त्वपूर्ण थी, यही कारण है कि अनेक चालुक्य अभिलेखों में हर्ष की पराजय का सगौरव उल्लेख किया गया है।[१] इस में संदेह नहीं कि पुलकेशिन की इस गौरवपूर्ण विजय ने उत्तर की वर्धन-सत्ता को दक्षिण में कदम बढाने से रोक दिया था।

ह्वेनसाग के अनुसार हर्ष का अन्तिम आक्रमण कोग-उ-तो अथवा कोनयोध (Kong-u-To or Konyodha) पर हुआ था।[२] कोनयोध अथवा कोंगद या कोंगोद उडीसा का दक्षिणी भाग था, जिसे कनिंघम ने गजाम से मिलाया है।[३] यह आक्रमण लगभग ६४२–४३ ई० हुआ था। कागोद में तब शिलोद्भव वश के राजा राज्य करते थे। शशाक के समय कांगोद के राजा गौड के अधीन सामत अथवा महासामत थे। शशाक के समय कोंगोद का महासामत माधवराज द्वितीय था। अत जिस समय हर्ष का कोंगोद पर आक्रमण हुआ उस समय शायद सशोभीत वहाँ राज्य करता था। लाइफ के विवरणानुसार कोंगोद को दबाने के बाद हर्ष लौटती बार कुछ दिन उडीसा में ठहरा था।

कोंगोद के राजा को पराजित करने के बाद हर्ष ने सभवतया उनसे केवल अधीनता स्वीकार करवायी थी, लेकिन अपने राज्य के आतरिक शासन के लिए उसे स्वतन्त्र छोड दिया था। यही कारण है कि कोंगोद के शिलोद्भव राजा आठवीं शताब्दी के मध्य तक वहाँ राज्य करते ही रहे।[४]

---

१. Epigraphia, Indica, Vol V Inscriptions Nos 401–404 Indian Antiquary, VI, p 87, Vol VIII p 244, Vol IX, p 125 & Vol XIII

२ Records, Vol II, Book X, p 206, Life Book IV, p 159

३ कनिंघम के अनुसार गजाम तब उडीसा का ही एक अग था (Records, Vol II, p 206, p 57)। फर्गुसन के अनुसार कोग-उ-तो राज्य की सीमा कटक से असक (गजाम जिले में) तक थी। (Epigrapia Indica, Vol VI, p 127), History of North Eastern India, R G Basak, pp 158–59

४ History of North Eastern India p 179

कोणगोद को छोड उडीमा का शेप जनपद जैसा कि लाइफ में दिए गये दान के विवरण से प्रतीत होता है, कनौज-साम्राज्य मे मिला दिया गया था। लाइफ के अनुमार शीलादित्य राजा ने उडीमा के प्रमिद्ध बौद्ध पण्डित जयमेन को वहाँ के अस्सी बडे नगरो का राजस्व[1] देना चाहा था लेकिन त्यागमूर्ति बौद्धाचार्य ने उन्हें लेना स्वीकार नही किया। उडीमा के अस्सी गाव हर्प द्वारा दान मे प्रदान किये गये थे, से प्रकट है कि उडीमा पर उसका स्वामित्व था, अन्यथा वह वहाँ के गावो को दान मे देने का निश्चय कैसे कर मकता था ?

ह्वेनसाग के यात्रा-विवरण (रेकर्ड्स) और लाइफ के वर्णन से मालूम होता है कि कोणगोद की विजय मे पूर्व ६४०–४१ ई० सन् तक, हर्प ने मगध को भी अपने माम्राज्य में मिला लिया था। हर्प ने ६४१ ई० मे चीन के सम्राट के पास अपना दूतमण्डल भेजा था और तदनतर शीघ्र ही फिर दूसरा दूतमण्डल भी चीन भेजा गया था। पहले दूतमण्डल के माथ जो पत्रादि चीन भेजे गये थे उनमें हर्ष को मगध का मम्राट कहा गया है।[2]

लाइफ के अनुमार शीलादित्य राजा ने नालन्द के पास मौ फीट ऊँचा एक सुप्रसिद्ध विहार का निर्माण भी करवाया जो बाहर से पीतल की चादरो से मडित

---

१ लाइफ के विवरण से यह भी प्रकट है कि उडीमा पूर्णवर्मा के समय में भी मगध-राज्य का अग था। अत अनुमान किया जा सकता है कि पूर्णवर्मा के बाद जब हर्प ने मगध पर अधिकार किया तभी उडीमा उसके अधिकार मे चला आया था (लगभग ६४१ ई० के आस-पास) The Life of Hiuen-Tsiang, pp 153–54

२ "In the year 641 he sent an embaeey to the Chinese court, and appa ently he sent another soon after His title in the documents connected with the former embassy seems to have been "King of Magadh" (Watters, Vol I p 351)

"In 641 Siladitya (Harsa) himself assumed the title of King of Magadha and exchanged embassies with China"—(An advanced History of India, ed R C Majumdar, etc p 158)

था।[1] नालन्द में हर्ष की मुहरें भी प्राप्त हुयी हैं। ये सब वृत्त हर्ष का मगध पर आधिपत्य प्रमाणित करते हैं।[2]

ह्वेनसाग के अनुसार शशांक के समय में पूर्णवर्मा मगध के सिंहासन पर था। जब वह लिखता है कि शशांक ने जब बोधिवृक्ष को काटकर गिराया तो कुछ समय बाद पूर्णवर्मा ने बड़े प्रयत्न से उस पवित्र-वृक्ष को पाल कर फिर से जीवित कर दिया था। पूर्णवर्मा को ह्वेनसाग ने अशोक का अन्तिम वंशज कहा है। हर्ष ने सम्भवतया पूर्णवर्मा अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी को पदच्युत करके ही मगध व उड़ीसा पर अधिकार किया था।[3]

निष्कर्षतः हर्ष की दिग्विजय के परिणामस्वरूप उत्तरीभारत का बहुत बड़ा भाग वर्धन-साम्राज्य के अन्तर्गत चला आया था, जिस कारण उसे चालुक्य-अभिलेखों में 'सकलोत्तरापथेश्वर' कहा गया है और हर्षचरित में बाण[4] ने भी उसे

---

१ Life, p 189

२ Epigraphia Indica, Vol XXI, pp 74–76

३ Records, II, Book VIII, pp 117–118 Watters, II, p 115

४ (I) "वह (हर्ष) उस चन्दन के सदृश्य उज्ज्वल लावण्य के समुद्र को धारण कर रहे थे जो उनके एकाधिपत्य के बड़े (अर्जित) शौर्य के प्रताप से खौल कर फेनिल हो रहा था, दर्प के कारण अपने ही प्रतिबिम्बों को जो राजाओं की चूड़ामणियों में पड़ रहे थे, सहन नहीं कर पाते थे। चवर की हवा के बहाने बार-बार सांस छोड़ती हुयी लक्ष्मी को धारण कर रहे थे, मानों चारों समुद्रों के सम्पूर्ण लावण्य को लेकर निकली हुई श्री ने उनका आलिंगन किया था।"

(II) "समस्त नृपतियों के मुकुटों में अधिक पान किये हुये पद्मराग मणि की प्रभा को मानो वमन कर रहे थे।"

(III) "मानों दीपनाग सम्राट (हर्ष) की भुजाओं पर सारे पृथ्वी के भार (समस्त भूभार) को रख कर विश्राम की नींद ले रहे थे।"

(IV) "नरों में केसरी (सिंह) हर्ष ने अपने भुजबल से शत्रु को मारकर अपना पराक्रम दिखाया (प्रकट किया)।"

(V) "लोकनाथ हर्ष ने प्रत्येक दिशा में प्रजापालकों (लोकपाल) की देख-भाल के लिये नियुक्त किया।"—
Indian Antiquary, Vol VII, p 85, History of Kanauj, p 82

इसीलिए 'चतुरसमुद्र' के लावण्य से युक्त श्री से संयुक्त एकराज अथवा एकाधिपति,

(फेनायमानमिव चन्दनधवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तमेकराज्योर्जितयेन, निजप्रतिबिम्बान्यपि नृपचक्रचूडामणिधृतान्यसहमानमिव दर्पोद्धुर खामिकया चामरानिलनिभेन बहुधव स्वमन्ती राजलक्ष्मी दधानम्, सकलमिव चतुः समुद्रलावण्यमादायोत्थितया श्रिया समुपश्लिष्टम—(I) (हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२१–१२२),

सकलनृपतियों के मुकुटों के पद्मराग मणि का पान करने वाला,—

सकलनृपतिमौलिमालारवतिपीत पदमरागरत्नातपमिव वमन्तौ—(II) (वही, पृ० १२३),

चतुर उदधि के भोग चिह्नों से युक्त,—चतुरम्भोधिभोगचिह्नाविव—(वही पृ० १२३), समस्त भूभार लब्ध,—

शेषेणेव च तद्भुजस्तम्भविन्यस्तसमस्तभूभारलब्धविश्रान्तिसुखप्रसुप्तेन—(III) वही, पृ० १२४), पुरुषोत्तम,—(विष्णु का प्रतिबिम्ब—प्रातिवेशिकमिव पुरुषोत्तमस्य—(वही, पृ० १३० तथा 'अत्र पुरुषोत्तमेन सिंधुराज प्रमथ्य'—तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५३–१५४), इन्द्र के सदृश्य, (उपायमिव पुरदर दर्शनस्य द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३१), चक्रवर्ति (चक्रवर्तिन—वही, पृ० १३१), जेष्ठ मल्लदेव परमेश्वरेण (सकलादिराजचरितजयज्येष्ठमल्लो देव परमेश्वरो हर्ष '—(वही पृ० १३१–३२ तथा अत्र परमेश्वरेण—तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५४), नरसिंह—

अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशमितारातिना प्रकटीकृतो विक्रम –(IV) (तृतीय उच्छ्वास, पृ०१५४), राजर्षि व पुण्यराजर्षि (द्वितीय उच्छ्वास, पृ०११९ व तृतीय उच्छ्वास, १५५), प्रजापति (अत्र प्रजापति—तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५३), लोकनाथ—

अत्र लोकनाथेन दिशा मुखेषु परिकल्पिता लोकपाला —(V) (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५४), तथा महाराजाधिराजपरमेश्वर (महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ८९), आदि सार्वभौमिक विरदों एवं उपाधियों से अलंकृत किया है।

बाण के हर्षचरित और ह्वेनसाग द्वारा हर्ष की दिग्विजय के विवरणों तथा हर्ष के अभिलेखों व सिक्कों आदि के आधार पर वर्धन-साम्राज्य की सीमायें इस प्रकार निर्धारित की जा सकती है—पूरबी पंजाब का अधिकांश भाग कुलूत प्रदेश (अम्बाला जिला) सरहिन्द, थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ और उसके आसपास का प्रदेश

(मथुरा और मतिपुर को छोड़कर)[1] कर्णसुवर्ण को छोड़कर[2] लगभग समस्त बंगाल, पुण्ड्रवर्धन (काजंगल अथवा राजमहल) समतट और ताम्रलिप्ति एवं उड़ीसा (उत्कल अथवा ओड्र) पश्चिम में वल्लभी की सीमा तक (मध्यभारत में

---

१ जालन्धर के बाद ह्वेनसांग कुलूतो और शि तो- तु-लु (She-to-tu lu शतद्रु का प्रदेश) पहुँचा था। इन दोनों जगहों की राजनीतिक स्थिति और वहाँ के शासकों के सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने कुछ नहीं लिखा है जिससे यह प्रतीत होता है कि ये प्रदेश सीधे हर्ष के विजित राज्य में थे। कुलूत अथवा कुलूतो को व्यास की ऊपरी घाटी में कुलूत प्रदेश (Ancient Geography of India, Cunningham p 163) से मिलाया गया है। यह प्रदेश चारों ओर पहाड़ों से घिरा था और हिमशैल के निकट था। अतः प्रकट है कि वर्धन-साम्राज्य की सीमा व्यास की ऊपरी घाटी में हिमालय तक विस्तृत थी। कुलूत की पुरानी राजधानी नागरकोट (वर्तमान सुल्तानपुर) थी (Records Vol I p 177, fn 131)। शतद्रु-प्रदेश शतद्रु नदी का प्रदेश था इसकी राजधानी सम्भवतया वर्तमान सरहिन्द में थी (Ancient Geography of India, p 166, Records Vol I p 178, fn 34)

मथुरा का वर्णन करते हुये चीनी यात्री ने लिखा है कि वहाँ का राजा और बड़े मन्त्री धार्मिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। प्रकट है कि मथुरा एक अलग राज्य के रूप में था। वर्धन साम्राज्य से घिरे होने से यह अनुमान किया जा सकता है कि शायद मथुरा हर्ष के प्रभावक्षेत्र का एक अर्द्धस्वतन्त्र सामन्त राज्य था (Records, Vol I, p 181)।

मतिपुर में ह्वेनसांग के समय एक शूद्रवंशीय राजा राज्य करता था Ibid, p 190। मतिपुर सम्भवतया पश्चिमी रुहेलखण्ड में बिजनौर के पास स्थित मण्डावर नगर है (Ibid, fn 77 Ancient Geography of India p 349)।

गढ़वाल और जौनसार का प्रदेश हर्ष के राज्य में थे, जिससे यह अनुमान होता है कि मण्डावर राज्य भी हर्ष के प्रभावक्षेत्र के अन्तर्गत था। अतः मथुरा की तरह मतिपुर का राजा भी हर्ष के सामन्तों में स्थान रखता था।

२ पहले उल्लेख किया जा चुका है कि कर्णसुवर्ण हर्ष ने जीतने के बाद कामरूप के राजा को सौंप दिया था। निधानपुर अभिलेख में भास्करवर्मन का

जझौती अथवा बुन्देलखण्ड, माहेश्वरपुर अर्थात ग्वालियर और मालवा में उज्जैन का प्रदेश राज्य के अन्तर्गत न थे)[1] तथा उत्तर में हिमालय से दक्षिण में रेवा अथवा नर्मदा तक।[2]

विजेता के रूप में कर्णसुवर्ण में प्रवेश करने का उल्लेख है (Epigraphia, Indica, Vol XII, p 66)। भास्करवर्मन का कर्णसुवर्ण में प्रवेश हर्ष की सहायता से ही संभव हुआ होगा।

डा० त्रिपाठी के अनुसार हर्ष द्वारा कर्णसुवर्ण का जैसा उपजाऊ प्रदेश यों ही कामरूप को देना सम्भाव्य प्रतीत नहीं होता। कर्णसुवर्ण पर भास्करवर्मन ने हर्ष की मृत्यु के पश्चात् राजनैतिक उथल-पुथल का लाभ उठाकर ही स्वयं अधिकार किया होगा। उनके अनुमान में "This must have happened after the tumult following Arjuna's usurpation and Bhaskara's siding with Wang-Hiuen-tse" (History of Kanauj p 103)

इस मत के विरुद्ध देखिए—History of North-East India, Basak, p 153, Shri Harsha of Kanauj, Panikkar, p 17, Harsha, Mukherji, p 43

१ जझौती (चीकितो) में एक ब्राह्मणवंशी राजा राज्य करता था (Watters, II, p 25 Records, Vol II, p 271)। वर्धन साम्राज्य से घिरा होने के कारण यह राज्य भी हर्ष के प्रभावक्षेत्र में पड़ता था। अतः निश्चय ही यहाँ का राजा भी हर्ष के सामन्तों में स्थान रखता था।

माहेश्वरपुर वाटर्स के अनुसार चम्बल और सिन्धु के बीच ग्वालियर का प्रदेश है। यहाँ का राजा ब्राह्मण था (Watters, II, p 251)। उज्जैन में भी ब्राह्मण राजा राज्य करता था (Ibid)। माहेश्वरपुर और उज्जैन के राजा भी शायद हर्ष के अधीन सामन्त राजा थे

२ हिमालय के एक ओर वर्धन सीमा व्यास की ऊपरी तरफ कुलु अथवा कुलूत के पहाड़ी प्रदेश तक गयी थी और दूसरी तरफ सुवर्णगोत्र के प्रदेश को छोड़, मायापुर (हरिद्वार), ब्रह्मपुर (गढ़वाल) और श्रुघ्न (जौनसार में काल्सी) के प्रदेश हर्ष के राज्य के अन्तर्गत थे। इन स्थानों की राजनीतिक स्थिति तथा वहाँ के राजाओं के सम्बन्ध में ह्वेनसांग मौन है, जिससे यह अनुमान होता

विजित प्रदेश के अलावा कुछ राज्य ऐसे थे जिन्हें हर्ष के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत गिना जा सकता है। ये सामन्त राज्य थे। इन राज्यों के राजा हर्ष का प्रभुत्व मानते थे, लेकिन आंतरिक शासन में वे स्वतन्त्र थे। सामन्त राज्यों में मुख्यतया थे—सिन्ध, कश्मीर और उसके अधीनस्थ राज्य, जालन्धर, वल्लभी और उसके अधीनस्थ राज्य तथा कामरूप। सिंध, कश्मीर कामरूप और वल्लभी के राज्यों का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। लाइफ के अनुसार ह्वेनसांग ने जब हर्ष से वापसी यात्रा के लिये विदा ली थी तो चीनी यात्री को सीमान्त तक पहुँचाने का कार्यभार वर्धन-सम्राट ने जालन्धर के राजा उदितो अथवा उदितराज को सौंपा था।[1] कुमारराज (कामरूप) और ध्रुवभट्ट (वल्लभी) को साथ लेकर हर्ष भी स्वयं कुछ दूर तक ह्वेनसांग को विदा देने गया था।[2] हर्ष ने ता-क्सान (पथ-

---

है कि ये प्रदेश हर्ष के सीधे विजित राज्य में शामिल थे। (Records, Vol I, p 186, fn 64, p 197 fn 98, p 198, fn 100)

सुवर्णगोत्र का प्रदेश गढ़वाल के उत्तर में हिम से ढके पहाड़ों में स्थित था। यह देश बढ़िया सोने की उपज के लिये प्रसिद्ध था। इस प्रदेश का शासन मुख्यतः रानी द्वारा होता था जिस कारण यह राज्य 'स्त्रीराज्य' के नाम से प्रसिद्ध था (Records Vol I, p 199)।

१ "As for his books and images the master confided them to the military escort of a king of North India called Udhita the advance being slow king Siladitya afterwards attached to the escort of Udhita-raja a great elephant, with 3000 gold pieces and 10,000 silver pieces, for defraying the master's expenses on the road" (The Life of Hiuen Tsang p 189, Records, Vol pp 175–76)

२ "Three days after separation the king, in company with Kumar-raja and Dhruva-Bhatta-raja took several hundred light horsemen and again came to accompany him (Hiuen-Tsang) for a time and to take final leave, so kindly disposed were the kings to the master" Life, p 189

प्रदर्शक) अथवा महातार नाम के चार अधिकारी भी चीनी यात्री को पहुँचाने वाले दल के साथ भेजे थे। इन अधिकारियों को हर्ष ने सीमांत राज्यों के लिये कुछ पत्र भी लिख कर दिये थे।[१] ताकि मार्ग में पड़ने वाले राजा भी ह्वेनसांग को चीन तक पहुँचने में सुविधायें प्रदान करते रहें।

लाइफ के अनुसार कपिशा और कश्मीर के राजाओं ने भी चीनी यात्री का अपने राज्य में पहुँचने पर बहुत आदर-सत्कार किया था। कपिसा का राजा ह्वेनसांग को अपने राज्य के सीमान्त तक पहुँचाने गया था। विदा लेते समय कपिसा के राजा ने आगे की यात्रा के लिये अनेक उपयोग की वस्तुएँ भेंट की थी और सुरक्षा के लिए सौ आदमियों का एक दल भी ह्वेनसांग के साथ कर दिया था।[२] बौद्ध होने के नाते कपिसा और कश्मीर के राजाओं का यद्यपि ह्वेनसांग के प्रति सद्व्यवहार करना स्वाभाविक था, तथापि यह अनुमान किया जा सकता है कि हर्ष के पत्रों ने भी उन्हें ऐसा करने के लिये प्रेरित किया था। निःसंदेह, उत्तरीभारत अथवा आर्यावर्त्त का सब शक्तिशाली राजा होने से ही हर्ष ने अपने सीमांत के बाहरी राजाओं को भी निर्देशात्मक पत्र लिखे थे, जिनका सभी जगह आदर सहित स्वागत किया गया।

संक्षेप में हर्ष के विजित राज्य (अथवा साम्राज्य) में यद्यपि उत्तरीभारत के समस्त प्रदेश सीधे शामिल नहीं थे तथापि यह निर्विवाद है कि उसका प्रभाव, उत्तर में कश्मीर और कपिसा, पश्चिम में सिंध और वल्लभी, पूरब में कामरूप और दक्षिण-पूरब में कोंगोद (गंजाम) तक छाया हुआ था।

प्रभावक्षेत्र के राज्यों के अलावा सामंत राज्यों की संख्या भी कम न थी। हर्षचरित और ह्वेनसांग के विवरणों से हर्ष के अधीनस्थ सामंतों का अंदाजा लगाया जा सकता है। हर्षचरित में बाण ने सामंतों का उल्लेख करते हुये लिखा है कि राजप्रासाद के तीनों कक्ष सहस्त्रों सामंत राजाओं (भुपालकुल सहस्त्र संकुलानि—द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११२) से आमकुल (भरी) थे, इसी तरह गौड़ के प्रति अभियान के अवसर पर बहुत से सामंत राजा जो सहयोग के लिये आये थे, उनमें बाण ने लिखा है—राजाओं से भरा हुआ था—'राजभिरापूरे राजद्वारम्' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६९)। लेकिन बाण ने इस

---

१ Ibid, pp 189–90

२ Ibid, pp 193–94

सामान्य विवरण को छोड़, सामंतों की निश्चित संख्या नहीं दी है। बाण के विवरण से यही लगता है कि सामंतों की संख्या बहुत काफी थी। लेकिन लाइक और रेकड्ंस के विवरणानुसार हर्ष के सामंतों की संख्या १८ अथवा २० थी। ये सामंत राजा सम्भवतया वर्धन-राज्य के अन्तर्गत पडने वाले अधीनस्थ राज्य थे।

हर्ष के राज्य-विस्तार, सामंतो की संख्या तथा उनके प्रभावक्षेत्र के प्रसार को देखते हुए यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं कि वह उत्तरीभारत का

---

१ हर्ष के 'सकलोत्तरापथनाथ' होने के सम्बन्ध में सम्मतियां —

आर० के० मुकर्जी लिखते हैं—" the mere size of the territory directly governed by Harsa would not be at all a correct measure of his true political position and achievments, the sphere of his influence With all the possible reservations, it can not be doubted that Harsa achieved the proud position of being the paramount sovereign of the whole of Northern India That the Indian public opinion of the times held this view is clear from the decription of Harsa as 'the lord of whole Uttarapath' in even the south Indian inscriptions" —(Harsa, R K. Mukherji, p 43)

पनिक्कर—"Harsha Seems to have brought the whole of Northern India under his control"—(Shri Harsha of Kanau, pp 22& 26)

वि० स्मिथ—"In the later years of his reign the sway of Harsha extended over the whole of the basin of the Ganges (including Nepal), from the Himalayas to the Narmada, besides Malwa, Gujrat and Saurashtra, was undisputed Detailed administration of coruse remained in the hands of the local rajas, but even the king of distant Assam (Kamrupa) in the east obeyed the orders of the Suzerain whose son-in-law the king of Vallabhi in the extreme

एकाधिराज अथवा महाराजाधिराज था और उसे 'सकलोत्तरापथनाथ' के विरद से ठीक ही अलंकृत किया गया है।

---

west, attended in the imperial train' (Early History of India, IIIrd ed p 341)

डा० राजवली पाण्डेय—"मोटे तौर पर हर्ष के साम्राज्य का विस्तार उत्तर में कश्मीर और नेपाल से लेकर दक्षिण में नर्मदा और महेन्द्र पर्वत (उडीसा में) तक और पश्चिम में सुराष्ट्र से लेकर पूर्व में प्राग्ज्योतिष (आसाम) तक था। सारा आर्यावर्त्त उसके अधीन था और वास्तव में वह सकलोत्तरापथ-नाथ (सम्पूर्ण उत्तरभारत का अधिपति था (भारतीय इतिहास की भूमिका, पृ० २५९)।

अध्याय : ६

साम्राज्य का शासन



पुष्यभूतियों का सीमित राज्य[1] हर्ष की दिग्विजय के फलस्वरूप उत्तरी-भारत का सार्वभौम राज्य बन गया था। राज्य के विस्तार और प्रसार के साथ उसके सीमान्तों की सुरक्षा, आंतरिक व्यवस्था और शांति की समस्यायें भी बढ़ गयी थी। बाहरी आक्रमणों और आन्तरिक विद्रोहों को दबाने तथा शांति बनाये रखने के लिए एक शक्तिशाली स्थिर सेना की अत्यधिक आवश्यकता उत्पन्न हो गयी थी।[2] अतः ह्वेनसांग लिखता है कि ६ वर्षों के निरंतर युद्धों के

---

१ हर्ष को जो पैतृक राज्य मिला था वह स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) और उसके आसपास के प्रदेश तक सीमित था, यह हर्षचरित के विवरण से स्पष्ट है।

२ हूणों का भय शायद इस समय भी बना हुआ था। राज्यवर्धन जब हूणों को दबाने (६०५ ई०) भेजा गया था तो अभियान की कुछ मंजिलों तक हर्ष भी साथ गया था। लेकिन हर्ष के समय हूणों की चेष्टा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। शायद हर्ष के प्रभाव और उसकी दृढ़ सीमांत नीति के कारण हूणों को उनके समय में भारत की सीमाओं में घुसने का साहस नहीं हो सका था।

साथ ही, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि राज्यवर्धन जब अपने

बाद हर्ष ने पाँच गौडों (Five Indies) पर अधिकार स्थापित किया और इस प्रकार राज्य का विस्तार करने पर उसने सेना की संख्या बढ़ा दी। हाथियों की संख्या साठ हजार और घुड़सवारों की संख्या एक लाख पहुँचा दी गयी। इसके बाद बिना शस्त्र उठाये उसने तीस वर्ष तक शांतिपूर्वक शासन किया।[१] ह्वेनसांग

पिता द्वारा हिमालय प्रदेश में हूणों को दबाने भेजा गया था तो उससे प्रतीत होता है उनकी शक्ति को कुचल कर रख दिया था। हूणों के साथ हुये समर से लौटने पर बाण ने लिखा है कि राज्यवर्धन का शरीर हूणों को पछाड़ देने वाले समर में बाणों से लगे व्रणों (घावों) पर बंधी धवल पट्टियों से शबलित था—

> हूणनिर्जयसमरशरव्रणबद्धपट्टकैर्दीर्घधवलै शबलीकृतकायम्—
> (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३०९)।

फिर भी कुचले हूणों के प्रति सतर्क और सजग रहना नीतियुक्त और आवश्यक था।

हूणों के अलावा पड़ोसी व दूरस्थ शत्रु राजाओं से भी आक्रमण का भय हो सकता था। अतः ऐसे राज्यों और विद्रोह पर उतारू सामन्तों-महासामन्तों आदि को विनीत बनाये रखने के लिये शक्तिशाली वाहिनी नितान्त आवश्यक थी।

वॉर्टर्स ने बहुत सही लिखा है कि, "When his wars were over Siladitya (the style of Harshavardhana as king) proceeded to put his army on a peace-footing, that is to raise it to such a force that he could overawe any of the neighbouring states disposed to be contamacious'—Watters', Vol I, p 346 Beal, Records p 213

१ 'Then having enlarged his territory he increased his army, bringing the elephant corps up to 60,000 and the cavalry to 100,000, and reigned in peace for thirty years without raising a weapon—(Watters, Vol I, p 343)

ने हर्ष की हाथी और अश्वसेना के साथ, पदातियों (पैदल सेना) की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु चीनी यात्री द्वारा वर्णित हस्ति और अश्वसेना की संख्या को देखते हुये यह अनुमान करना असंगत न होगा कि पदातियों की संख्या हाथी और अश्वसेना से कहीं अधिक रही होगी।

हर्ष के अभिलेखों (बासखेड़ा और मधुबन) में हस्ति और अश्वसेना के साथ नौसेना का भी उल्लेख है।

पदाति (चाट-भट या चार-भट) सेना का हर्षचरित में यत्र-तत्र जो विवरण मिलता है उसमें हमें पैदल सैनिकों के वेश-भूषा आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ बातें ज्ञात होती हैं। प्रथम उच्छ्वास में बाण ने एक मस्त युवा (जवान) पदातियों का वर्णन किया है जिनके ललाट (सिर) पर लम्बे घुघराले बालों का जूड़ा बंधा था और जो काले अगरु की बुंदकियों के छींट वाले काषाय रंग के कंचुक पहने थे तथा सिर उत्तरीय (पगड़ी) से वेष्टित था। कमर में उनके कपड़े की दोहरी पट्टी (पट्टिका) बन्धी थी और उसमें 'असि' (तलवार) खोंसी हुयी थी। अनवरत व्यायाम से उनका शरीर कर्कश अथवा कसा हुआ था (स्पष्ट है कि सैनिकों को रोज व्यायाम (ड्रिल) करना आवश्यक था)—

'अनवरत-व्यायामकृतकर्कशशरीरेण'—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३६—३७)।

गौड़ के विरुद्ध अभियान के लिये तैयार कटक का वर्णन करते हुये बाण ने उस में शामिल मर्जी-बर्जी चार-भट (चाट-भट) सेना के हरावल दस्तों का उल्लेख किया है जो छापे हुये निशानों वाले वस्त्रों से चारु अथवा सजे थे—

"चारुचारभटसैन्यन्यस्यमाननासीरमण्डलाडम्बरस्थूलस्थानके" (सप्तम् उच्छ्वास, पृ० ३६५)।

बासखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र लेखों में चार-भट का 'भट-चार' नाम से उल्लेख है।

बाण के विवरण से यह प्रकट होता है कि चार-भट सैनिकों की संख्या सेना में बहुत अधिक थी, और वे हाथों में चमचमाती हुयी छोटी-छोटी चौरियों से युक्त कार्दरंग चर्म की मण्डलाकार (गोल) ढाल लिये रहते थे। हर्ष के कटक में उनका वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि ये चटुल (चचल) तथा डामर चाट-भट (उत्कट योद्धा) भुवन-भाग को भर दे रहे थे—

पुनश्चञ्चच्चामरकिर्मीरमकार्दरङ्गचममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडामरचार-भट भरितभुवनान्तरं —(वही पृ० ३६८)।

सैनिक प्रयाण के अवसर पर नगाडे बजाये जाते और शखो से ध्वनि की जाती थी (वही, पृ० ३६२)। सेना को समायोग-ग्रहण (व्यूहबद्ध होने अथवा परेड में एकत्र होने) की सूचना देने के लिये वार-बार सन्ना-शख बजाया जाता था—

"समायोगग्रहणसमयशसी सस्वान सन्नाहाह्वो मुहुर्मुहु "—(वही, पृ० ३६९)।

'अपास्तसमायोगश्च क्षणमासिष्ट'—

वहा से समायोग (परेड) के बर्खास्त होने की सूचना देकर क्षण भर हर्ष वही ठहरे—(वही पृ० ३८१)।

अभियान पर जाती हुयी हर्ष की विशाल सेना का वर्णन करते हुये बाण ने उसकी उपमा जगत का ग्राम बनाने वाले प्रलय-काल के जलधि से दी है—

'प्रलयजलधिमिव जगदग्रामग्रहणाय प्रवृत्तम्' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७९)।

अत ऐसी विशाल वाहिनी के स्वामी हर्ष को यथार्थ ही बाण ने 'महावाहिनीपति' (शन्तनोर्महावाहिनीपतिम्—द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३०) विरद दिया है।

अत ह्वेनसाग का कथन कि साम्राज्य की वृद्धि को देखते हुये हर्ष द्वारा सेना बढा दी गयी थी, सही है। लेकिन ह्वेनसाग का यह कहना कि प्रथम ६ वर्षों के बाद हर्ष को फिर शस्त्र नही ग्रहण करना पडा अथवा युद्ध नही लडना पडा था, सर्वदश सही नही है। क्योंकि 'लाइफ' के विवरण के अनुसार हमे ज्ञात है कि कोणगोद पर हर्ष ने अपने शासन के अन्तिम दिनो में ही चढाई की थी और शशाक को ६१९–२० *के बाद ही दबाया जा सका था, तथा पुलकेसिन् और वल्लभी के साथ शासनकाल* के उत्तरार्द्ध में ही युद्ध हुये थे।

हर्षचरित में बाण ने यद्यपि चतुरग सेना का उल्लेख किया है (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३३) लेकिन अभियान पर जाते हुए हर्ष के सैन्यदल में रथ सेना का उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु ह्वेनसाग ने हर्षयुगीन सेना के चार अगो

में रथों का भी उल्लेख किया है।[1] इससे प्रकट है कि रथों का प्रचलन बिल्कुल बन्द हो गया हो, ऐसा नहीं था।

निःसंदेह सेना के चार अंगों में रथों का भी स्थान था, यद्यपि दूर के अभियानों पर रथ विशेष उपयोगी न थे और इसीलिये शायद हर्ष ने रथों को दिग्विजय के अभियान पर साथ नहीं लिया था। प्रकट है कि सेना में रथों का विशिष्ट स्थान नहीं रह गया था।[2]

---

१ The Army is composed of foot, Horse, Chariot and Elephant Soldiers The war-elephant is covered with coat-of-mail, and his tusks are provided with sharp barbs On him rides the commander-in-chief, who has a soldier on each side to manage the elephant The chariot in which an officer sits is drawn by four horses, *whilst infantry guard it on both sides The infantry go lightly into action and are choice men of* valour, they bear a large shield and carry a long spear some are armed with a sword or Sabre and dash to the front of the advancing line of battle They are perfect experts with all the implements of war such as spear, shield, bow and arrow, sword, sabre etc having been drilled in them for generations'—(Watters Vol. I p. 171)

२ हर्षचरित (सप्तम उच्छ्वास, पृ० २६३) के विवरणानुसार दाक्षिणात्य— 'सादिनि' दक्षिणी (सैनिक) सवार उत्सेक से बैठे हुये दिखाई पड़ते थे— 'स्कन्धवेसर विन्यस्तदीर्घदाक्षिणात्यसादिनि'—
इस से प्रकट है कि हर्ष की सेना में दक्षिण भारत से भी सैनिक भरती किये जाते थे।

प्रोफेसर अग्रवाल का मत है कि ये दक्षिणी-सैनिक महाराष्ट्र को छोड़ शायद पल्लव राज्य से भरती किये गये द्रविड थे। वे लिखते हैं—

The question arises as to the source of southern contingent It seems that these were not the Maratha

हर्षचरित के विवरणानुसार हर्ष की सेना में शायद ऊँट और खच्चरों की सेना भी शामिल थी (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६४–६७)। बाण ने राजद्वार पर हाथी और घोड़ों के साथ ऊँटों का भी उल्लेख करते हुये कहा है 'ऊँटों ने राजद्वार को कपिल वर्ण में परिणित कर दिया था—ऊँटों के कानों में पञ्च-रंगी उन के फूँदने लटक रहे थे जो कपि के कपोल की भाँति कपिल वर्ण के थे—

> 'कपिलकपोलकपिलै क्रमेलककुलै कपिलायमानम्'—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १००)।

हर्षचरित के विवरणानुसार राज्यवर्धन ने जब मालवराज के विरुद्ध अभियान किया था तो वह अपने साथ केवल अश्वसेना साथ ले गया था (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२४)। और हर्ष ने जब गौडाधिप के विरुद्ध अभियान का निश्चय किया तो उसने प्रमुखतया गजसेना को तैयार करने का गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त को आदेश प्रेषित किया था—

> शीघ्र प्रवेश्यन्तां प्रचारनिर्गतानि गजसाधनानि—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५०)।

अतः प्रतीत होता है कि हर्ष मुख्यतया गजसेना पर आस्था व भरोसा रखता था। और यह उस समय की स्थिति में ठीक भी था। क्योंकि हाथी, जैसा

---

soldiers since Harsha was not on good terms with the chalukyan ruler Pulkesin II The enemies of the chalukyan kingdom were the Pallavas and it may be that Harsha was allowed by the Pallava rulers to recruit a Contingent of Dravida soldiers for his army—The Deeds of Harsha, p 179

हर्ष के 'कटक' का जो विवरण बाण ने दिया है—वह उसके सिंहासनारोहण (६०५–६ ई० सन्) के समय का है, और पुलकेसिन से विग्रह बहुत बाद में हुआ था।

प्रारम्भ में ही वर्धनों और चालुक्यों में वैमनस्य व संघर्ष रहा हो, इसका कहीं कोई उल्लेख हमें नहीं प्राप्त है। अतः हर्ष के शासन के प्रारम्भिक काल में चालुक्यों ने महाराष्ट्र के लोगों को उसकी सेना में भरती होने पर प्रतिबन्ध लगा रखा हो, यह संगत नहीं प्रतीत होता।

कि बाण ने कहा है, राज्य के 'सचारि गिरिदुर्ग' सदृश थे, जिन पर आरूढ़ होकर 'योद्धा' सुरक्षा के साथ युद्ध लड़ सकते थे, साथ ही शत्रुओं के दुर्गों (किलों) पर आक्रमणात्मक-कार्यवाही के लिए भी हाथी वर्तमान टैंकों की भाँति कारगर थे— सचारिगिरिदुर्ग राज्यस्य—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११६)। इसके अलावा शत्रुओं के बाणों की बौछार को रोकने में वे लोहे के प्राकार अथवा दीवार का काम करते थे—

इतानेकशरासारविवरसहस्र लोहप्राकार परिखा (वही)।

अभियान अथवा दण्डयात्रा के लिए मौहूर्तिकों अथवा ज्योतिषियों द्वारा शुभ दिन और विजय-योग्य लग्न निश्चित कर लिया जाता था। बाण ने लिखा है *कि गौडाधिप के विरुद्ध जब ज्योतिषियों ने शुभ दिन और मुहूर्त निश्चित कर दिया* तो हर्ष ने चाँदी सोने के कुम्भों से स्नान किया, कनक-पत्रों (सोने के पत्तरों) से मढ़े सींग और खुर वाली सहस्रों गाय ब्राह्मणों को दान में दीं, फिर प्रथम आसन पर और तब अपने शरीर पर चंदन का लेप किया, शिव का पूजन किया, और तदनन्तर परिपूजित प्रसन्न ब्राह्मणों ने उनके सिर पर शांति का सलिल (जल) छिड़का। इस प्रकार दानपूजन पूरा करने के बाद हर्ष हर्षित प्रजाजनों के जयजयकार के कोलाहल के साथ दण्डयात्रा पर जाने के लिये राजभवन से निकले—

प्रमुदितप्रजाजन्यमानजयशब्दकोलाहलो भवनान्निर्जगाम—
(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६१)।

अभियान के दौरान सेना जहाँ पड़ाव डालती थी, उसे 'स्कन्धावार' अथवा जयस्कन्धावार कहते थे। हर्षचरित के विवरणानुसार अभियान का प्रथम स्कन्धावार सरस्वती के तीर पर स्थापित हुआ था (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७३)। बाण की, देव हर्ष से प्रथम भेंट उनके अजिरावती (राप्ती) के तटपर स्थित मणिपुर (मणितारा) के स्कन्धावार में हुई थी।[1] बासखेड़ा ताम्रपत्र में

---

[1] हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ९८—

'अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरमजिरवति कृतसन्निवेशं समाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य—

'(बाण) अन्य दिन (दूसरे दिन) अजिरवती (राप्ती) नदी के किनारे मणिपुर के पास स्कन्धावार में पहुँचा और राजभवन के पास ही ठहरा।'

वर्धमानकोटि, और मधुबन ताम्रपत्र में कपित्थक (मकाशय) के जयस्कन्धावारो का उल्लेख है।

स्कन्धावार में राजा का निवास, जिसे हर्षचरित मे राजमन्दिर या मन्दिर कहा गया है, पृथक् रूप से अस्थायी तौर पर निर्मित किया जाता था। थानेश्वर से सेना के साथ प्रयाण कर जब हर्ष का सरस्वती के तीर पर शिविर पड़ा था तो उत्तुंग तोरणो से युक्त विशाल राजभवन (मन्दिर) तृणो (घास-फूस) से छा कर खड़ा किया गया था—

'निर्मिते महति तृणमये, समुत्तम्भिततुङ्गतोरणे'—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६१)।

स्कन्धावार में अन्यान्य सैनिक अधिकारियो, सैनिको आदि के लिये अस्थायी घर-डेरे, तम्बू, कनात और शामियाने खड़े करने और प्रयाण के बाद उन्हे उखाडने-बटोरने के लिये गृहचिन्तक व चेट (सेवक) साथ रहते थे—

'गृहचिन्तक चेटकसवेष्ट्यमानपटपुटीकाण्डपटमण्डपपरिवस्त्रावितानके' (वही, पृ० ३६३-३६४)।

अभियान में सेना के साथ राजाओं और सामन्तो की स्त्रियाँ भी साथ जाती थी। बाण ने लिखा है कि सेना के साथ अभिजात राजपुत्रो के द्वारा भेजे गये पीतल के पत्रो से मढे वाहनो में कुलीन-कुलपुत्रो की स्त्रियाँ जा रही थी—

"अभिजातराजपुत्रप्रेष्यमाणकुप्ययुक्ताकुलकुलीनकुलपुत्रकलत्रवाहने'—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६४)।

दूसरे स्थल पर बाण ने हाथी पर सवार अन्त पुर की स्त्रियों के गमन का उल्लेख किया है जिन के साथ मशाल लिये लोग आगे-आगे चलते थे और जिनके सकेत पर जनता मार्ग छोड कर अलग हो जाती थी—

'पुर सरदीपिकालोकविरलायमानलोकोत्पीडाप्रस्थितान्त पुरकरिणीकदम्बके' —(वही, पृ० ३६६)।

स्कन्धावार स्थित अत पुरो मे पहरा देने के लिये याम चेटी अथवा चेटियाँ नियुक्त रहती थी। बाण ने लिखा है कि प्रात प्रयाण के समय पहरेदार याम-चेटियो के चरणो की आहट पाकर सोये हुये स्त्री-पुरुष जाग उठे—

'यामचेटीचरणचलनोत्थाप्यमानकामिमिथुने'—(वही, पृ० ३६३)।

बाण ने महाराज प्रभाकरवर्धन के अन्तःपुर में गृहदेवताओं के समान पहरा देने वाली स्त्रियों [यामिकिनीषु—चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१०] का उल्लेख किया है। अतः प्रकट है कि सैनिक अन्तःपुरों में ही नहीं, राजधानी के अन्तःपुरों में भी रात्रि के समय सुरक्षार्थ पहरा देने के लिये स्त्री-सैनिकाएँ नियुक्त रहती थीं।

ह्वेनसांग ने सेना के मुख्य कार्य और कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुये लिखा है कि सेना का मुख्य कर्तव्य सीमान्त की सुरक्षा तथा विद्रोहियों का दमन करना था। तथा—

रात्रि में राजप्रासाद की सुरक्षा पहरा देने के लिये भी सैनिक तैनात किये जाते थे।

ह्वेनसांग के अनुसार सैनिक-कर्म पैतृक था, और राष्ट्रीय सुरक्षा सेना अथवा स्थिर सेना में चुने हुये सुभट [वीर योद्धा] भर्ती किये जाते थे। सैनिक-कर्म पैतृक होने के कारण सैनिक समर-कौशल में निपुण होते थे। युद्ध के समय वे आगे बढ़ कर धावा करते थे, और शान्तिकाल में राजा के प्रासाद की रक्षा में रत रहते थे।[1]

सेना का मुख्य अधिकारी राजा स्वयं होता था। बाण ने हर्ष को इसीलिये महावाहिनीपति (महावाहिनीपतिम्—द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३०) कहा है।

राजा के नीचे सेना के लिये अन्यान्य अधिकारी भी नियुक्त किये जाते थे।

हर्षचरित में जिन कतिपय सैनिक-अधिकारियों के नाम मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

बृहदश्ववार—अश्वसेना का प्रधान। इस पद पर हर्षचरित में राज्यवर्धन के प्रसाद-पात्र कुन्तल और भण्डि नाम के पुरुषों का उल्लेख है। भण्डि अश्वदल

---

१ "The National Guard (Warriors) are heroes of choice valour, and as the profession is hereditary, they become adapt in military tactics. In peace they guard the sovereign's residence, and in war they become the intrepid vanguard."—

(Watters, Vol I, p 171)
(Records Beal, Vol I, p 87)

के साथ राज्यवर्धन के साथ मालवराज के विरुद्ध अभियान पर गया था। बाद में हर्ष ने भी उसे ही कटक के साथ गौड के विरुद्ध अभियान पर जाने की आज्ञा दी थी—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२९, और सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०८)।

सेनापति अथवा वाहिनीनायक—हर्षचरित मे इस पद पर सिंहनाद का नाम आया है, जो सम्राट हर्ष के पिता का मित्र और युद्ध के अवसर पर सबसे आगे रहने वाला और वाहिनी-नायक की मर्यादा का अनुसरण करने वाला वीर पुरुष था—

'पितुरपि मित्र सेनापति समग्रविग्रहप्राग्रहरो वाहिनीनायक-मर्यादानुवर्तने'—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३३ और ३३४)।

सम्राट हर्ष की माता महारानी यशोमति भी वाहिनीपति राजा के कुल की कन्या थी (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०६)।

महासन्धिविग्रहाधिकृत—यह युद्ध और सन्धि का मंत्री था। इस पद पर बाण ने हर्षचरित मे अवन्ति नाम के पुरुष का उल्लेख किया है। सम्राट हर्ष ने—सन्धिविग्रहाधिकृत अवन्ति द्वारा ही पूर्व मे उदयाचल से लेकर, दक्षिण मे चित्रकूट पर्वत और पश्चिम में अस्ताचल से लेकर उत्तर मे गन्धमादन पर्वत तक के समस्त राजाओ को स्वामित्व स्वीकार कर, 'कर' देने के लिए आज्ञा प्रेषित की थी (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४३–४४)।

गजसाधनाधिकृत—हाथियो का प्रधान नायक। इस पद पर बाण ने स्कन्दगुप्त नाम के वीर पुरुष का उल्लेख किया है, जिसे हर्ष ने तत्काल गौडाधिप के विरुद्ध गजसेना प्रस्तुत करने का आदेश दिया था (वही, पृ० ३४७)।

हर्ष के बांसखेडा और मधुबन ताम्रपत्र लेख से विदित होता है कि स्कन्दगुप्त महासामन्त थे और महाप्रमातार एव दूतक नाम के अधिकारी भी थे।

महासामन्त के बाद सामन्त (राजाओ) का स्थान था। बांसखेडा ताम्रपत्र मे सामन्त महाराज (भानु) और मधुबन मे सामन्त महाराज ईश्वर गुप्त का नाम उल्लिखित है।

गजसेनापतियो के अधीन—हाथियो की देखरेख के लिए इभ भिषगवर (हस्ति-

चिकित्सक, इसलिए (वाजिवाग्वरागाना—षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४८) नियुक्त रहते थे।

गजिताधिकारी—(वहीं, पृ० ३८७-४८) गजिताधिकारी हाथियों के गुणों और कर्तव्यों के ज्ञाता (व निरीक्षक) थे।

कर्पटी—हाथियों की सेवा करने वाले परिचारक।

महामात्र—ये मृत हाथी के चर्म का पुतला बना कर हाथियों को युद्ध की शिक्षा देने वाले अधिकारी थे—'महामात्रपटकैश्च प्रवर्तितकरिकर्मचर्मपुटै'—(वहीं, पृ० ३४७)। 'For all officers and attendants in the elephant wing of the army the Mahamatras were of the highest rank'—(The Deeds of Harsha, p 159)

नागवन वीथीपाल—(वहीं, पृ० ३४७ द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ८९), हाथियों के वनों के रक्षक।

आधोरण—भाष्यकार शंकर के अनुसार महावत। सम्भवतया आधोरण सेना के गजों को 'धोरण गति' में चलने की शिक्षा देने वाले अधिकारी थे (The Deeds of Harsha, p 159—हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास पृ० १११ सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६४)।

लेसिक और नाडिवाहक—हाथी के लिए घास लाने वाले—(वहीं, द्वितीय तथा सप्तम उच्छ्वास)।

हस्तिपक—महावत (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३०१)।

मेंठ—हाथियों को नहाने-धुलाने वाले परिचारक—(वहीं)।

वल्लनपाल-स्थानपाल—अश्वों का पालन करने वाले अश्वपाल अथवा सेवक (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६५)।

परिवर्तक—अश्वों के परिचारक जो घोड़ों को आरोहण के लिये जीन-काठी से सज्जित करते थे (वहीं)।

बलाधिकृत—सेना का उच्चाधिकारी, जिसका कार्य सेना को संगठित करना था। निःसंदेह उसका पद सेनापति के समकक्ष रहा होगा (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६७)। बलाधिकृत और महाबलाधिकृत गुप्तों के समय में सेनापति व महासेनापति कहे जाते थे।

पाटीपति—सेना का निरीक्षण करने वाले अधिकारी (वहीं, पृ० ३६३)।

सम्भवतया इनका स्थान कौटिल्य अर्थशास्त्र मे वर्णित सेनाध्यक्षो के समकक्ष रहा होगा ।

दण्डधर—दण्डयात्रा अथवा यात्रो के समय दण्डधर सैनिक राजा के आगे-आगे जनसमूह को हटाते हुये और 'आलोकशब्द' (जय का कोलाहल) करते हुये मार्ग बनाते चलते थे (सप्तम उच्छ्‌वास, पृ० ३७१) ।

दण्डधरो को वेत्रधारि भी कहते थे (चतुर्थ उच्छ्‌वास, पृ० २२६ और सप्तम उच्छ्‌वास, पृ० ३२९) ।

महाप्रतिहार-और प्रतिहार तथा प्रतिहारी—राजा के राजभवन एव अत पुर के अधिकारी (चतुर्थ उच्छ्‌वास, पृ० २४७) । स्कन्धावार अथवा यात्रा में जहाँ भी राजभवन स्थापित किया जाता था, ये अधिकारी राजप्रासाद मे नियुक्त रहते थे । महाप्रतिहार का निवास अथवा भवन राजप्रासाद के निकट ही बना होता था । मार्ग मे भण्डि जब सम्राट हर्ष को स्कन्धावार के राजमदिर में मिला था तो उसने महाप्रतिहार-भवन में ही स्नान आदि किया था (सप्तम उच्छ्‌वास, पृ० ४०४) ।

महाप्रतिहार के नीचे का अधिकारी, प्रतिहार कहा जाता था । प्राग्ज्योतिष के राजा भास्करवर्मन (कुमार) के दूत हसवेग के आगमन की सूचना सम्राट हर्ष को प्रतिहार ने ही दी थी (वही, पृ० ३८२ और पृ० ४०२) ।

राजा के अन्त पुर मे प्रतिहार का काम स्त्रियाँ करती थी, जिन्हें प्रतिहारी कहा जाता था (अन्त पुरवर्तिन—प्रतिहारी, तृतीय उच्छ्‌वास, पृ० १७२) ।

दौवारिक—यह महाप्रतिहार के ऊपर का अधिकारी अथवा मुखिया था । बाण ने हर्ष के महाप्रतिहारा के मुखिया (दौवारिक) का नाम पारियात्र दिया है—

'एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवारिक '—(द्वितीय उच्छ्‌वास, पृ० १०६) ।

शस्त्रधारी मौल—ये राजा के अगरक्षक सैनिक थे, जो राजा को प्रवृत कर मण्डल में पक्तिबद्ध होकर स्थित रहते थे—

'शस्त्रिणा मौलेन पक्तिस्थितेन मण्डलेनेव परिवृतम्'—(द्वितीय उच्छ्‌वास, पृ० ११८) ।

लेखहारक—यह सूचनायें, पत्रादि पहुँचाने वाला अधिकारी था। सम्राट की सन्धि के आसन्न की सूचना मार्ग के शिविर में लेखहारक ने ही दी थी। (सप्तम उच्छ्वास पृ० ४०२)।

लेखहारक

दीर्घाध्वग (द्रुतगामी) होते थे। महाराज प्रभाकरवर्धन की बीमारी की सूचना पहुँचाने को हर्ष के पास थानेश्वर से कुरंगक नाम का दीर्घाध्वग लेखहारक भेजा गया था (पञ्चम उच्छ्वास पृ० २५९–६०)।

देव हर्ष के भाई कृष्ण ने दीर्घाध्वग (लेखहारक) मेखलक को बाण के पास सम्राट् से मिलने आने के लिये पत्र व संदेश देकर भेजा था (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ८९–९०)।

भाण्डागारिणी—ये भण्डार के अधिकारी थे जो सेना के लिये आवश्यक सामान व रसद आदि पहुँचाने का प्रबन्ध करते थे। ये अधिकारी सामन्तों आदि के शिविर का सामान हाथियों पर लादने की भी व्यवस्था करते थे—

समारोप्यमाणभाण्डागारिणि, भाण्डागारवहनवाहनवहनार्थिवाहिके (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६४)।

अश्वारोही—ये सैनिक प्रवास पर अपने स्वान (कुत्ते) भी साथ ले जाते थे—

हयारोहाहूयमानश्वितश्वनि (वही, पृ० ३६६)।

अश्वारोहियों का वेश—अश्वारोहियों की पोशाक (वर्दी) का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि कुछ सवार नेत्रों को सुन्दर लगने वाले (नेत्र-सुकुमार) नेत्र-सूत्र रेशमी वस्त्र के छापे वाले पजामे पहने थे। उनके पजामे कर्दम के रंग से रंगे कल्माष लिये लाल वर्ण के थे। कुछ 'अलिनील' (भौंरों के जैसे नीले रंग) रंग के जांघिये पहने थे। कुछ लाल व नीले रंग के कंचुक पहने थे। कुछ, चीन देश का कंचुक धारण किये थे। कुछ तारों जैसे मोतियों के स्तबक से शोभित वारबाण नामक कंचुक पहने थे। कुछ अनेक रंगों से रंगे चित्रकबरे कूर्पासक पहिने थे (वही, पृ० ३६७–३६८)।

अश्वारोहियों के विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की वेशभूषा और रंगों से अनुमान होता है कि विभिन्न महासामन्तों व सामन्तों आदि के अश्वारोही पृथक्-पृथक् प्रकार के रंगों और प्रकारों के वस्त्र अथवा वर्दियाँ धारण करते थे। इसीलिये हर्ष की वाहिनी में सम्मिलित अश्वारोहियों की वर्दियाँ एक जैसी न होकर नाना प्रकार की वर्णित मिलती हैं।

हर्षचरित में बाण ने सैनिकों द्वारा प्रयुक्त होने वाले विभिन्न आयुधों का, विस्तार में तो नहीं, संक्षेप में विवरण दिया है। बाण ने जिन आयुधों (आक्रमणात्मक और रक्षात्मक) का उल्लेख किया है उनके नाम नीचे दिये जाते हैं —

असि—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३७) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में असि को खड्ग का एक प्रकार कहा गया है। कौटिल्य ने लम्बी और पतले आकार वाली तलवार अथवा खड्ग को 'असियष्टि' कहा है—(२ अधिकरण, अध्याय १८)।

खड्ग—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३७७ और षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५२)।

कृपाण—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३७, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १९२)। यह भी खड्ग (अथवा तलवार) का एक प्रकार था। कृपाण छोटी, बड़ी दोनों तरह की होती थी। बाण ने 'कृपाण्या' का उल्लेख किया है, जो शायद छोटी प्रकार की कृपाण थी और 'खुखरी' की तरह कमर की पटी में खोंसी जाती थी—कृपाण्या करालितविशङ्कटकटिप्रदेशाम्'—(अष्टम् उच्छ्वास, पृ० ४१५)।

अट्टहास कृपाण—यह अत्यन्त प्रखर धार और बिजली जैसी प्रभा (चमक) वाली बड़ी तलवार अथवा कृपाण थी, जिसे 'महाअसि' कहा गया है (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १८२–८३)।

निस्त्रिंश—(शैगुनागिश्च नगरोपकण्ठेकण्ठे निचकृते निस्त्रिंशेन—षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५३ और तृतीय उच्छ्वास, पृ० १८७)। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने खड्गों (तलवार) के प्रकार में एक खड्ग का नाम निस्त्रिंश दिया है। इस खड्ग या तलवार (असि) का अग्रभाग वक्र (टेढ़ा) होता था (२ अधिकरण, अध्याय १८)।

भिन्दिपाल—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६७) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इस आयुध का नाम आया है (अधिकरण २, अध्याय १८)। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित आयुधों में भी भिन्दिपाल का उल्लेख है। बाण ने भिन्दिपाल का 'पूलों' में वर्णन (भिन्दिपाल पुलिकैः) किया है, जिन्हें हाथियों पर आरूढ़ सैनिकों के पीछे बैठे परिचारक तरकशों में भर कर साथ रखते थे। डा० फ्लीट के अनुसार ये लोहे के तीर थे (Iron arrows, C I I Vol III, p 12)।

अर्थशास्त्र (कौटिल्य) में लोहे से निर्मित बाणों को दण्डासन और नाराच कहा गया है (अधिकरण २, अध्याय १८)।

जब भिन्दिपाल को लोहे के बाण समझना सही न होगा। बाणों का यह नाम प्रचलित प्रयोग में भी नहीं मिलता। ये सम्भवतया छोटे भाले (लघु प्रास) थे, जिनका अग्र बाण की तरह नुकीला होता था, और जिनसे आजकल के ग्रिनेड की तरह पास-पास के युद्ध में योद्धा हाथ से चला कर शत्रु पर प्रहार करते थे।

कोण—मुगरी या मुद्गर (हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३७)।

क्षुर-धार वाले शस्त्र—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५५) बाण ने क्षुरधार वाले दर्पण का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा रानी रत्नावती ने अयोध्या के राजा जारूथ्य को मार डाला था (हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०८)। अर्थशास्त्र में कुठार, पट्टिस (त्रिशूल सदृश्य जिसके दोनों सिरे नुकीले होते थे) और कुद्दाल आदि का 'क्षुरकल्पों' कहा गया है (अधिकरण २, अध्याय १८)।

भल्ली—छोटे भाले जिन्हें बाण की तरह तरकश में भर कर रखा जाता था। सम्भवतया ये निकट से फेंक कर प्रहार करने अथवा पास के युद्ध में 'संगीनों' की तरह प्रयुक्त करने में काम आते थे (अष्टम उच्छ्वास, पृ ४१५)।

धनुष—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३५९, अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१५)। बाण ने 'चाप' (चापवनाटनिटाकारताद) 'कार्मुक' (कार्मुककर्मव्यग्रविटपमर्कटे) और 'कोदण्ड' नामों से धनुषों का उल्लेख किया है (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३८१, सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४१० और अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१४)।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में धनुषों के तीन प्रकारों का नाम कार्मुक, कोदण्ड और द्रुण दिया है। चाप, कार्मुक और कोदण्ड बांस, दारु (लकड़ी) आदि से बनाये जाते थे।

बाण ने 'शार्ङ्ग' धनुष का भी उल्लेख किया है (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६७)। यह सींग से बनाया जाता था। भगवान् राम का धनुष 'शार्ङ्ग' विश्रुत था, जिस कारण उन्हें शार्ङ्गिन कहते हैं।

भस्त्राभरण—बाँस, भल्ली और भिन्दीपाल के समूहों को रखने का तरकश। हर्षचरित में भल्ली और शरों तथा भिन्दिपालों से परिपूर्ण भस्त्राभरणों (तरकशों) का उल्लेख है—'भल्लीप्रासप्रभूतशरभृता भस्त्राभरणेन—वही, पृ० ४१५, और 'भस्त्राभरणभिन्दिपालशूलिनि' पृ० ३६७)।

शर—तीर या बाँण (हर्षचरित, अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१५), अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने शरों के प्रकारों में वेणु, शर, शलाका, नाराच (वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाश्च इषवः—अधिकरण २, अध्याय १८) आदि का उल्लेख किया है। वेणु, शर और शलाका लकड़ी के बनाये जाते थे। बाणों के अग्रभाग विषम विष से दूषित करके (बुझाकर) भी प्रयुक्त किया जाता था—विषमविषदूषितवदनेन च　(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१६)।

ज्या—(गुञ्जज्ज्याजालजनितजगज्ज्वर—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४१), धनुष की डोरी। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार ज्या, मूर्वा, अर्क, शण, गवेधु, वेणुव स्नायु (तांत) से बनाई जाती थी ('मूर्वार्कशणगवेधुवेणुस्नायूनि ज्या'—अधिकरण २, अध्याय १८)।

परिवार—म्यान, जिसमें असि व कृपाण को रखा जाता था। यह चर्म से मढ़ी होती थी। बाण ने चित्रक (चीते) की चित्रित खाल से मढ़ी म्यान का उल्लेख किया है—

चित्रचित्रकत्वक्तारकितपरिवारया—(हर्षचरित, अष्टम् उच्छ्वास पृ० ४१४)।

पट्टिका—कमर में कसने बाँधने की पेटी, जिसमें असिधेनु (छोटी तलवार) व कृपाण्या (छुरी) खोंस दी जाती थी—

द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३७)।

बाण ने वस्त्र के अलावा सर्प के चर्म से निर्मित पेटी का भी उल्लेख किया है—

अहोरमणीचर्मनिर्मितपट्टिकया—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१४)।

कादरंग चर्म (ढाल, चर्मफलक, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १८७)—बाण ने कार्दरंग चर्म (चमड़े) की बनी ढाल का उल्लेख किया है (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६८) कार्दरंग चर्म सम्भवतया बाहरी द्वीप[1] (देश) से आयात होता था। इससे प्रकट है कि विदेशों से भी ढाल बन कर आती थी।

१　भाष्यकार शंकर के अनुसार—'कादरङ्गचर्मणा कादरङ्गदेशभवाना' अर्थात् कार्दरङ्ग देश (द्वीप) से आया हुआ चर्म या ढाल।

कार्दरङ्ग सम्भवतया इण्डोनीसिया (Indonesia) का कोई द्वीप था—

The Deeds of Harsha, Professor Vasudeva S Agarwala, pp 202–203

कामरूप के राजा ने हंसवेग द्वारा उपहार में कार्दरंग चर्म भी भेजा था (वही पृ० ३८६)।

शिरस्त्राण—उष्णीष, शिरस्त्र तथा दुकूलपट्टिका ये योद्धाओं के सिर पर पहिनने के आवरण थे (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४३, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४४, सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६८)।

कंचुक—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३४ सप्तम उच्छ्वास पृ० ३६८)। कौटिल्य के अनुसार कंचुक वर्म अथवा कवच होता था (अधिकरण २, अध्याय १८)।

कंचुक[1] शब्द घुटने तक पहिनने का सैनिक-आवरण या लौह-कोट था। बाण ने चीन के बने कंचुक का भी उल्लेख किया है—कञ्चुकैश्चासचितचीनचोलकैश्च—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६८)।

वारबाण[2]—बाण ने सितारों के सदृश मोतियों से टँके वारबाणों का उल्लेख किया है—तारमुक्तास्तवकितस्तबकवारबाणैश्च—(वही)। वारबाण भी लौह वर्म (कवच) था। यह शब्द नीचे टखनें तक पहिना जाता था।

कूर्पास—बाण ने अनेकानेक रंगों से रंगे चित्रकबरे कूर्पासों का उल्लेख किया है (वही)।

यह भी वर्म (कवच) था। यह सम्भवतया स्कन्ध के सुरक्षार्थ पहिना जाता था।[3]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चर्म (ढाल), शिरस्त्राण, कंचुक, वारबाण और कूर्पास आदि, को 'आवरणानि' (शरीर को ढकने के आवरण) कहा गया है (अधिकरण २, अध्याय १८)।

ह्वेनसांग ने भी सैनिकों द्वारा प्रयुक्त होने वाले आयुधों में मुख्यतया—भाले, धनुष, बाण, तलवार, खड्ग और ढाल आदि का उल्लेख किया है (Watters, Vol I, p. 171)

शासक हर्ष .

उत्तरापथेश्वर देव हर्ष शीलादित्य भारत के प्राचीन दिग्विजयी प्रवीर क्षत्रिय राजाओं की शृंखला में अन्तिम महान् राजा हुआ है। अपनी महान् दिग्विजयो

---

१ 'A coat extending as far as the Knee joints'—Kautilya Arthasastra, R shama sastry, p 114

२ 'a coat extending as far as the heels'—Ibid

३ 'Cover for the trunk'—Ibid

के फल से उसे आर्यावर्त का अन्तिम सार्वभौम सम्राट होने का मूर्धन्य श्रेय प्राप्त है। इसीलिये बाण के हर्षचरित और मधुबन व बांसखेड़ा ताम्रपत्र-अभिलेखों में उसे सार्वभौमिक उपाधियों महाराजाधिराज परमेश्वर (महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्षदेवस्य—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ८९) तथा परमभट्टारक महाराजाधिराज आदि से विभूषित किया गया है। देव हर्ष ने चक्रवर्ती का यह गौरवपद अपने निज भुज-बल से अर्जित किया था। यह उसके बल-विक्रम का ही फल था कि अपने पैतृक थानेश्वर के एक छोटे से राज्य को उसने उत्तरापथ के सार्वभौम साम्राज्य में परिणत किया और अपने शत्रु चालुक्यों से भी सकलोत्तरापथनाथ होने का गौरव स्वीकार करवाया। इस प्रकार हर्ष के पिता महाराज प्रभाकरवर्धन ने उसके लक्षणों को देखकर उसके चक्रवर्ती होने की जो भविष्यवाणी की थी वह उसकी उपलब्धियों से सत्य सिद्ध हुयी।[1]

हर्ष के महान राजकीय व्यक्तित्व का बाण ने यथार्थता के साथ मनोहर चित्रण किया है। बाण ने जब सर्वप्रथम मणिपुर (अथवा मणितारा) के शिविर स्थित राजभवन में देव हर्ष से प्रथम भेंट की थी तो हर्ष के महान् व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित होकर उसने लिखा है कि 'देव हर्ष के रूप को निरख कर ऐसा लगता था मानो केवल तेज के परमाणुओं से उनका निर्माण हुआ था—

तेजस परमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्'—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११९)।

'उनके शरीर का चन्दन सदृश लावण्य (अथवा सौन्दर्य) सार्वभौमिकता के यश से उफन कर फेनिल हो रहा था—

फेनायमानमिव चन्दनधवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तमेकराज्योर्जितयेन'—(वही पृ० १२०)।

'उनके पादपद्म अरुण और सुगत थे, हाथ की कलाइयाँ वज्रायुध (इन्द्र के समान कठोर थी—वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन'—(वही, पृ० १२२)।

'स्कन्ध वृष के सदृश थे—वृषस्कन्धेन' (वही)।

---

१ मृत्यु शय्या पर पड़े प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को सम्बोधित कर कहा था—

'करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि'—(पंचम उच्छ्वास, पृ० २७४)।

'You bear marks declaring the sovereignty of the four oceans, one and all, to be almost in your grasp'—Hc C & T, p 142

'अवलोकन में प्रसन्न मुखचन्द्र सदृश था—प्रसन्नवलोकितेन चन्द्रमुखेन' (वही) और, 'कृपालु थे—कृपालोकेन (वही)।

इस लावण्यपूर्ण भव्य व्यक्तित्व को देख कर बाण को लगा जैसे हर्ष के शरीर में सब देवता एक होकर अवतरित हो प्रकट हो रहे हैं—सर्वदेवतावतार-मिवैकत्रम दर्शयन्तम् (वही)।

देव हर्ष की परमेश्वर उपाधि तथा सर्वदेवताओं के स्वरूप का दर्शन प्रकट करने की उपमा से यह भ्रम न होना चाहिये कि हर्ष एक निरकुश अथवा स्वेच्छाचारी शासक था।[1] इन उपाधियों, विरुदों अथवा विशेषणों का सम्राट हर्ष के देवतुल्य गुणो एव कर्मों का द्योतक और परिचायक समझना चाहिए। अत इन उपाधियों व उपमाओं के आधार पर यह समझने की भूल नही करनी चाहिए कि हर्ष 'दैवी अधिकार' के सिद्धात को मानने वाले थे, या हर्ष राजत्व को दैव-प्रदत्त मानते थे।

प्राचीन स्मृतिकार व राजधर्म-विशारदो द्वारा राजा के लिये जो धर्म अथवा कर्त्तव्य निर्धारित किये गये थे, हर्ष राजधर्म के पालन में उनका सर्वथा अनुगत और अभ्यासी रहे। इसीलिए बाण ने कहा है कि 'समस्त जनो के हृदय में स्थित होने पर भी वे न्याय पर स्थित थे'—"सकललोकहृदयस्थितमपि न्याये तिष्ठन्तम्" (वही पृ० १२१)।

अपने अभिलेखो (मधुवन और बासखेडा) में हर्ष ने 'श्री (लक्ष्मी, वैभव) और 'धर्म' की व्याख्या करते हुये कहा है कि 'वैभव (श्री-सम्पदा) तभी सुफल है जब उसे दान देने और दूसरो के यश की वृद्धि अथवा परिपालन में प्रयुक्त किया जाय, और सबसे उत्तम अथवा परमधर्म यही है कि मन से, वचन से और कर्म से प्राणिमात्र का हित सम्पादित हो'—

---

१ श्री पणिक्कर ने हर्ष के राजकीय स्वरूप को प्रकट करते लिखा है कि हर्ष की 'सत्ता' यद्यपि एक अर्थ में निजी (अथवा एकतंत्रीय) थी, लेकिन वह निरकुश न था—

' there can be no doubt that though Harsha's Government was personal in one sense, the royal authority was by no means despotic'—Harsha, p 32

लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचंचलाया
दानं फलं परयशः परिपालनं च ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा कर्त्तव्यं प्राणिभिर्हितम् ।
हर्षेणैतत्समाख्यातं धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥२॥

इन उद्धरणों से प्रकट है कि राजत्व अथवा राजधर्म के प्रति देव हर्ष के विचार जगविश्रुत मौर्य सम्राट अशोक के विचारों के अनुरूप थे। अशोक ने अपने अभिलेखों में दान, भूतों के प्रति अनुकम्पा और सर्वहित को ही परमधर्म उद्घोषित किया था—'कर्त्तव्य हि मे सर्वलोकहितम्, तथा नास्ति हि कर्मान्तर सर्वलोकहितेन (शिलालेख ६) और सब प्राणियों के प्रति अहिंसा—(अक्षति-नुकसान न पहुँचाना) समचर्या (समान आचरण) और मृदुता (मार्दव) का व्यवहार करना उत्तम अथवा श्रेष्ठधर्म है'—

इच्छति हि देवप्रिय सव्वभूतानां अक्षति च सयमं च समचर्या च—(शिलालेख १३)।

हर्ष के अशोक-सम गुणों के कारण ही उसे 'सर्वसत्वानुकम्पी'—सब पर अनुकम्पा (अनुग्रह) करने वाला कहा गया है (बाँसखेड़ा—मधुवन ताम्र-पत्र लेख)।

देव हर्ष में साधु राजा अथवा उत्तम राजा के सभी गुण विद्यमान थे जिनका शान्तिपर्व और अर्थशास्त्र (कौटिल्य) में निरूपण किया गया है।

महाभारत में कहा गया है कि कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग 'राजवृत्त' हैं, अर्थात् राजा ही इन विभिन्न युगों का कर्त्ता अथवा कारण होता है। क्योंकि राजा के धर्माचरण अथवा अधर्माचरण पर ही युग की श्रेष्ठता एवं अश्रेष्ठता व निकृष्टता निर्भर करती है, और इस कारण राजा को ही "युगम उच्यते"—युग कहा जाता है—

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ
राजवृत्तानि सर्वाणि राजैव युगमुच्यते।[1]

और बाण[2] ने लिखा है कि हर्ष कृतयुग के कारण थे—(कारणमिव कृतयुगस्य), अर्थात हर्ष का ऐसा प्रभाव, राजवृत्त या सुशासन था कि कलियुग का उनके समीप पहुँचना दुष्कर हो गया था—'दुरुपसर्पं इति कलिना' तथा कलिया-

---

१ शान्तिपर्व, अध्याय, ९१, श्लोक, ६।
२ हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२९–३०।

नाग के फणों को आक्रान्त करने वाले बालकृष्ण की तरह हर्ष ने 'कलि' के सिर को विनीत बना दिया था—

'आक्रान्तकालियफणाचक्रवालं बालमिव पुरुषोत्तमम्' (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२३ और १२०)।

बाण का यह उल्लेख इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि हर्ष के धर्म-शासन में जन एवं लोक कुशासन अथवा कलिकाल के त्रास एवं आतों से विरत सुख-चैन का अनुभव करते थे।

कौटिल्य ने इन्द्रिय-जयी (जयी मनमी), प्रज्ञावान्, लोक (जनता) के योगक्षेम के लिये उद्योगी (पराक्रम करने वाला), अनुशासन द्वारा प्रजा को स्वधर्म में स्थापित करने वाले, परस्त्री व द्रव्य को न छूने वाले, धर्म का सेवन अर्थात् धर्म के विरुद्ध अर्थ और काम का सेवन न करने वाले तथा लाकहित की वृत्ति और हिंसा से विरत रहने वाले राजा को राजर्षि की संज्ञा दी है।[1]

बाण ने भी इन्हीं गुणों के कारण सम्राट हर्ष को राजर्षि की संज्ञा दी है (अविनिवादिन राजर्षिम्)। हर्ष के राजर्षि रूप पर प्रकाश डालते हुए बाण ने लिखा है—विषमराजमार्ग अथवा राजधर्म से स्खलित होने से बचने के लिये वे धर्म का आश्रय लिये थे, इन्द्रियों को निगृहीत किये थे (वश में किये थे), व्यसन के प्रति नीरस थे (अर्थात व्यसनों से दूर रहते थे), वे भीष्म से भी बढ़कर इन्द्रियजयी अथवा जितेन्द्रिय थे—भीष्माज्जितकामिनिनम् (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३०), बुद्ध के समान शान्त मन (सुगत इव) और मनु की तरह वर्णाश्रम की व्यवस्था स्थापन करने वाले—वर्णाश्रमव्यवस्थाना और दण्ड देने में साक्षात् यम (दण्ड में निपुण) थे—सकलवर्णातीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे' (वहीं, पृ० १३६)।

समासतः देव हर्ष के पूर्ण व्यक्तित्व को आलोकित करते हुये बाण लिखता है—चक्रवर्ती हर्ष गम्भीर प्रसन्नवदन, त्रास-जनन (अपराधियों और शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने वाले), रसाधार (पण्डितों, विद्वानों और सत्पुरुषों के साथ रमण करने वाले), कौतुक-जनन (लोगों में आह्लाद अथवा उत्साह पैदा करने वाले) और पुण्यवान् (पवित्र) चक्रवर्ती थे—

---

१ "तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। प्रज्ञा उद्योगेन योगक्षेमसाधन, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापन हितेन वृत्तिम्। परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। धर्मार्थाविरोधेन काम सेवेद—(१ अधिकरण ७ अध्याय)।

'गम्भीर च प्रसन्न च, त्रासजनन च, रमणीय च, कौतुकजनन च, पुण्य च, चक्रवर्त्तिन हर्षम्'—(वही, पृ० १३१)।

बाण ने हर्ष के राजकीय व्यक्तित्व का जो चित्रण किया है, ह्वेनसांग का विवरण उसका अनुमोदन करता प्रतीत होता है।

'शीलादित्यराज' (हर्ष), ह्वेनसांग ने लिखा है, का शासन न्यायस्थित था, और अपने कर्त्तव्यों के प्रति वह अप्रमादी (जागरूक) था। राज्य के कार्यों (अथवा लोकहित के कार्य) में निमज्ज हो कर वह निद्रा और भोजन भी बिसार बैठता था।[1]

जो पड़ोसी राजा (अथवा सामन्त) व राजनीतिज्ञ लोकहित के कार्यों में उत्साह रखते और धर्म के लिये पराक्रम करने में अविश्रामी थे, उनको शीलादित्य अपने आसन के पास स्थान देता, उन्हें अपना सुहृद् मानता और उन्हीं से बातें भी करता था, अन्य प्रकार के पुरुषों से नहीं।[2]

ह्वेनसांग का यह कथन कि धूर्त व लम्पटों से हर्ष बात करना पसन्द नहीं करते थे, हर्षचरित से भी प्रकट है। हर्षचरित में उल्लेख है कि बाण के परोक्ष में कुछ निन्दकों ने उस कविवर की बुराई कर सम्राट के कान भर दिये थे—

> 'यतो भवन्तमन्तरेणान्यथा चान्यथा चाय चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्' (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ९१)।

अतः बाण जब प्रथम बार सम्राट् हर्ष से मिलने पहुंचा तो उन्होंने उससे बात करने में अनिच्छा सी प्रकट की थी और उसकी ओर इंगित कर कहा था—क्या यही वह बाण है? और फिर मुंह फेर कर मालवराजपुत्र से कहा कि यह (बाण) 'महानय भुजङ्ग इति', भारी भुजंग (लम्पट) है—(वही, पृ० १३४-३५)। बाण के प्रति की गयी निन्दायें, जैसा कि सम्राट् हर्ष के भाई कृष्ण ने कहा था

---

१ "He (Siladitya-Harshavardhna) was just in his administration and punctilious in the discharge of his duties He forgot sleep and food in his devotion to good works" (Watters, Vol I, pp 343–344)

२ The neighbouring princes, and the statesmen, who were zealous in good works, and unwearied in the search for moral excellence, he led to his own seat, and called 'good friends', and he would not converse with those who were of a different character—" (Ibid)

उच्चहीन अथवा अमन्द थी (न च उत्तया—वही, पृ० ९१)। अतः इस भेद भुलने पर सम्राट हर्ष ने बाण की प्रतिभा और पांडित्य से प्रसन्न होकर उसको मान, ऐश्वर्य (धन), विश्वास, प्रभाव सभी परमकोटि को पहुँचा दिया था—

> "स्वल्पैरेव चाहोभि परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य विस्रम्भस्य द्रविणस्य प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति"—(वही, पृ० १४०)।

राज्य की स्थिति और जनों की परिस्थितियाँ उनके दुःख-सुख, कष्ट व क्लेशों की प्रत्यक्ष जानकारी करने के लिए देव हर्ष अशोक की भाँति राज्य का भ्रमण दौरा किया करते थे। वर्षाकाल के तीन महीनों को छोड़कर वे निरन्तर राज्य के सभी प्रदेशों की निरीक्षण-यात्रा पर रहते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि सम्राट अपने राज्य भर के निरीक्षणार्थ यात्रा किया करते थे। किसी स्थान पर वे अधिक दिन तक नहीं ठहरते थे। निवास के लिए हर जगह (जहाँ वे ठहरते) अस्थायी आवास खड़े किये जाते थे (हर्षचरित में मणितारा के तीर पर स्थित स्कन्धावार में हर्ष का राजभवन तृण-घास-फूस से ढाकर ही निर्मित किया गया था)। वर्षा के तीन महीनों वह यात्रा पर नहीं जाते थे। राजकीय निवास में प्रति दिन एक हजार बौद्ध भिक्षुओं और पाँच सौ ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता था।[1]

यात्राओं के दौरान वह नगरों के पौर-जनों की गतिविधियों पर भी नजर रखते थे।[2]

हर्षचरित और हर्ष के अभिलेखों से हर्ष के कतिपय यात्रा-स्थानों पर प्रकाश पड़ता है। बाण ने हर्षचरित में सम्राट के अजिरावती स्थित मणितुर अथवा

---

१ "The King also made visits of inspection throughout his dominion, not residing long at any place but having temporary buildings erected for his residence at each place of Sojourn, and he did not go abroad during the three months of the Rain season Retreat At the royal lodges every day viands were provided for 1000 Buddhist monks and 500 Brahmins'—(Watters, Vol I, p 344)

२ If there was any irregularity in the manners of the people of the cities, he went amongst them " Beal, Vol I, p 215

मणितारा के स्कन्धावार का उल्लेख किया है, जहाँ के राजभवन में उसने देव हर्ष से प्रथम भेंट की थी।

मधुवन और बासखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेखों में क्रमश कपित्था (ह्वेनसाग द्वारा उल्लिखित कपित्थ जिसे कन्नौज के समीप के सकाशय से मिलाया जाता है), और वर्द्धमानकोटी (सम्भवतया अहिच्छत्र भुक्ति में स्थित) के जय-स्कन्धावारों का उल्लेख है।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि जब वह नालन्दा से भास्करवर्मन कुमार के निमन्त्रण पर कामरूप गया था, उस समय हर्ष कजूघिरा (Kadjughira) में था। सम्राट हर्ष से ह्वेनसाग की पहली भेंट कजूघिरा (Kadjughira) स्कन्धावार में ही हुई थी।[१] ह्वेनसाग के विवरणानुसार हर्ष बहुत यात्राप्रिय था और विभिन्न प्रकार के शास्त्रों व विद्याओं का शोधक व अन्वेषक था। वह चीन के सम्राट चिन-वाग-तिन-जु (Chin-wang-Tien tzu) के समर-अर्जित सुयश से भी परिचित था, जो जानकारी शायद उसने दूरस्थ सीमान्त के अभियानों के अवसर पर प्राप्त की थी। महाचीन के देव-पुत्र महाराज चिन-वाग के सन्दर्भ में सम्राट हर्ष ने ह्वेनसाग से पूछा था कि 'शायद वह आपके देश का राजा है। सुना है उसने चीन राष्ट्र को विप्लव व विनाश से बचाकर उसे समृद्ध और खुशहाल बनाया है और दूर-दूर तक विजयों द्वारा चीन-राज्य को विस्तृत कर दिया है। उसके 'विजय के गीतों' से यहाँ के लोग भी परिचित है।[२]

---

१ Watters, Vol I, p 348 Vol II, p 183, Beal, Vol I p 215

२ In the course of a conversation His Majesty said to Yuan-Chuang—"At *present in various States of India a song has* been heard for some time called the 'Music of the conquest of Ch'in (T Sin) Wang" of Mahachina-this refers to your Reverence's native country I presume " The pilgrim replied—"Yes, this song praises my Soverign's excellence "

हर्ष ने ह्वेनसाग से बातचीत करते हुए विस्तार में कहा था—' he (Harsh) had heard of the Ch'in (TSin)-Wang-T ien-tzu, 'that is, the Deva-putra Prince Chin, of Mahachina, who

सम्राट हर्ष, शासन और धर्म के कार्यों के सम्पादन में सदा तत्पर और उचित रहता था। मेगास्थनीज ने जिस तरह चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में लिखा है कि वह राजकार्य करते कभी थकता न था और मालिश का समय हो जाने पर भी काम छोड़ कर दरबार से उठता नहीं था उसी तरह ह्वेनसांग ने हर्ष के लिये कहा है कि वह राज्य व धर्म का कार्य करते कभी थकता न था। वह अविश्रामी था और राजकार्य में इतना निमग्न रहता था कि दिन उसके लिये छोटा पड़ता था।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के 'राजप्रणिधि प्रकरण' (१ अधिकरण, १९ अध्याय) में निर्देशित किया है कि राजाको अपने रात-दिन का समय विभिन्न कार्यों के लिये विभाजित करके रखना चाहिए। श्री हर्ष ने इस परम्परा पर अपना दिन, जैसा कि ह्वेनसांग से ज्ञात होता है तीन भागों में विभाजित कर रखा था, पहले भाग में वह शासन का कार्य करता था और शेष दो भाग धार्मिक कार्यों में व्यतीत करता था।[१]

इस विवरण से प्रकट है कि परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज हर्ष प्राचीन शास्त्र-विहित राजधर्म का अनुशासन करने वाला 'राजर्षि' था जिसका जैसा कि कौटिल्य ने निर्देशित किया है—'उत्थान (उद्योग) ही व्रत था और कार्यानुशासन यज्ञ, तथा जो प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में रत रहने वाला था—

> राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।
> प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते रतम्। (श्लोक ४-५, अधिकरण १ अध्याय १९)।

राजप्रासाद—दृषद्वती के अजिरवती और सरस्वती तट पर स्थित स्कन्धावारों में निर्मित राजमंदिर अथवा राजभवन का जो विवरण बाण ने हर्षचरित में

---

had brought that country out of anarchy and ruin into order and prosparity, and made it supreme over distant regions to which his good influences extended (Watters, Vol I, pp. 348-349)

१ "The King's day was divided into three periods, of which one was given up to affairs of government, and two were devoted to religious works He was indefatigable, and the day was too short for him"—(Watters, Vol. I, p 344)

प्रस्तुत किया है, उससे हर्ष के राजप्रासाद की भव्यता और विशालता तथा व्यवस्था की हमें यथेष्ट झांकी मिल जाती है।

स्कन्धावार[1] (जिसमे सैनिकों का पडाव पडता था) राजमन्दिर से पृथक् होता था। स्कन्धावार, राजमन्दिर के द्वार के बाहर स्थित होता था और उसमें लोग स्वतन्त्रता से आ-जा सकते थे। किन्तु राजमन्दिर में प्रवेश, राजप्रासाद के दौवारिक द्वारा सम्राट से अनुमति लेकर ही हो सकता था।

बाण जब अजिरवती के स्कन्धावार स्थित राजभवन के द्वार पर पहुँचा था तो उस समय बाण ने राजद्वार पर शत्रु सामन्तों (शत्रुमहासामन्तैः), विभिन्न देशों (नानादेशजैर्महामहीपालैः (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १०३) के महीपाल, जैन, बौद्ध (अर्हत), पाशुपत (शैव) सन्यासी आदि तथा जनपदों के निवासी एवं अनेक देशों के राजदूतों को सम्राट् से मिलने की अनुमति प्राप्त करने की प्रतीक्षा में उपस्थित देखा था। दर्शनों की अनुमति की प्रतीक्षा में वे दिन बिता देते थे—दिवस नयद्भिर्भुजनिर्जितैः (वही, पृ० १०३)।

बाण को भी सम्राट् से मिलने की अनुमति प्राप्त होने तक राजद्वार पर खडा रहना पड़ा था। राजद्वार पर पहरे के लिए द्वारपाल स्थित रहते थे। बाण के आगमन की राजभवन के भीतर जब सूचना पहुँचायी गयी तो दौवारिक वृद्ध पारियात्र जो महाप्रतिहारों का मुखिया था, सम्राट् की अनुमति से उसे देवदर्शन (सम्राट् के दर्शन) के लिये प्रासाद के भीतर ले गया था—

'आगच्छत। प्रविशत देवदर्शनाय। कृतप्रसादो देव' (वही, पृ० १०६)।

---

१ कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में स्कन्धावार के बाहरी मध्यभाग में राजा का निवास अथवा राजप्रासाद बनाने और राजप्रासाद के पश्चिमी भाग में अन्तःपुर (रानियों का निवास), और अन्तःपुर के समीप अन्तर्वेशिक सेना का निवास बनाने का निर्देश दिया है।

स्कन्धावार चारों ओर से परिखा या खाई, वप्र (मिट्टी के ढूहों), साल (प्राकार या दीवार), प्रवेशद्वार व अट्टाल (बुर्जों) आदि से सज्जित रहना कौटिल्य ने आवश्यक बतलाया है—

स्कन्धावार खातवप्रसालद्वाराट्टालकसम्पन्न भये स्थाने च मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुक पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरम्। अन्तर्वंशिकसैन्य चान्ते निवेशयेत (अधिकरण १०, अध्याय १)।

राजप्रासाद के बतन में चार कक्ष अथवा कोष्ठ थे। राजद्वार के भीतर पहले कोष्ठ में सम्राट के अश्वों का मन्दुरा (अश्वशाला)—*भूपालवल्लभैस्तु-रङ्गैरारचिता* मन्दुरा (वही पृ० १०९) था, उसके बाद थोड़ी दूर पर बाईं ओर राजकीय उत्तुंग हस्ति-मण्डप अथवा गजशाला (विष्णागार) थी, जो अपनी ऊँचाई से आकाश को अवकाशहीन बना रही थी—निरवकाशमिवाकाश कुर्वाणाम् (वही, पृ० १०९)। इसके बाद दूसरे कक्ष में बाह्य आस्थानमंडप—बाह्यया कक्षाम् (वही, पृ० १०३) था। तीसरे कक्ष में राजा का निजी आवास था जिसे धवलगृह कहते थे।[1]

अन्तःपुर में शयन वाले कक्ष को 'वासगृह' कहा जाता था।[2] ग्रहवर्मा और राज्यश्री विवाहोपरान्त शयन के लिये 'वासगृह' में गये थे जिसके द्वार-पक्षों पर एक ओर रति और दूसरी ओर प्रीति (कामदेव की प्रिया) के चित्र बने थे और (गृह की भित्ती पर) एक ओर लाल फूले वाले अशोकवृक्ष (रक्ताशोक) के नीचे धनुष पर शर साधे (बाण चढ़ाये) तिरछी मिचमिचाती ऐंची आँखों से निशाना साधे हुये कामदेव का चित्र बना था (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २५४, और Hc [3] C

१ हर्षचरित के अनुसार हर्षवर्धन अपने बीमार पिता को मिलने तीसरे कक्ष में स्थित धवलगृह (प्रासाद) में गये थे। जहाँ महाराज प्रभाकरवर्धन निःशब्द पड़े थे (पंचम उच्छ्वास, पृ० २६६)। आगे वर्णन है कि धवलगृह में राजा के उपचार के लिये अनेकानेक औषधियों, पथ्य के लिये फल और दासियों द्वारा शिल पर पीस कर ललाट पर लेप करने का मलहम तैयार किया जा रहा था आदि (वही, पृ० २६८)।

२ कौटिल्य ने भी अन्तःपुर में राजा के शयन वाले निवासगृह को 'वासगृह' कहा है जो अन्तःपुर में कोशगृह के पास स्थित होता था—अन्तःपुर प्राकार (परकोटा), परिखा (खाई) और द्वारों से युक्त अनेक कक्षा वाला होता था। (कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण १, अध्याय २०)।

हर्षचरित में धवलगृह का जो वर्णन मिलता है वह इसी प्रकार अनेक 'कक्षों' वाला था।

३ "About its (Chamber) portals were figured the spirits of Love and Joy At the foot of a blossoming red Asoka carved on one side stood the god of love aiming his shaft, the arrow drawn to the string, and a third of his eye sideways closed"

& T, p 130)। शयनगृह को 'हर्म्य' व 'सौध' भी कहते थे, जो अन्त पुर की ऊपरी मंजिल पर होता था। हर्षचरित में ग्रीष्मकाल में चन्द्रमा की चाँदनी से सुधाधवल हर्म्य मे प्रभाकरवर्धन और यशोमति के सोये होने का उल्लेख है (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०८)। तथा कहा गया है कि गर्भ से बोझिल नूपुरो के भार से खिन्न यशोमति, मन से भी सौध मे जाने के लिये सीढ़ियाँ चढ़ने का साहस न कर पाती थी—

आस्तां नूपुरभारखेदितं चरणयुगलं मनसापि नोदसहत सौधमारोढुम् (वही, पृ० २१३)।

चौथे कक्ष में (धवलगृह के पृष्ठ में) भुक्तास्थानमंडप[1] था जहाँ बैठ कर देव हर्ष दोपहर के भोजन के पश्चात् विशिष्ट पुरुषों से भेंट करते थे। यह विशिष्ट अथवा खास दरबार था। बाह्य कक्ष अथवा बाहरी आस्थानमंडप मे सभी उपस्थित जनता को सम्राट् दर्शन देते अथवा भेंट करते थे—

भुक्तास्थाने दास्यति दर्शनं परमेश्वर, निष्पतिष्यति वा बाह्यां कक्षाम् (वही, पृ० १०३)।

राजप्रासाद, प्रतोली, प्राकार (दीवार), और शिखरो व उत्तुंग तोरणो से सम्पन्न होता था (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४२, और सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६१)। प्रासाद के ऊपरी कक्षो मे आने-जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी होती थी। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर बाण ने प्रतोली, प्राकार और शिखरो पर हाथ में कूँची और कंधो पर पलस्तर के बर्तन लिये सफेदी (चूने से धवल करने वाले) करने वाले मजदूरो के सीढ़ी (अधिरोहिणी) पर चढ़ने का उल्लेख किया है[2]—

उत्कूर्चकरैश्च सुधाकर्पूरस्कन्धैरधिरोहिणीसमारूढैर्धवलीक्रियमाण-प्रासादप्रतोलीप्राकारशिखरम—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४२)।

---

१ श्रीणी कक्षान्तराणि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम् (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११८)।

२ "Workmen mounted on ladders, with brushes upheld in their hands and plaster paints on their shoulders, whitened the top of the street-wall (=प्राकार) of the palace"—(HC, C & T, p. 124)

बाण ने भुक्तास्थानमण्डप (भोजन के बाद सम्राट इसी मण्डप में बैठते थे) में ही देव हर्ष से भेंट की थी। जब बाण वहाँ उपस्थित हुआ तो उसने देखा कि सम्राट के पास (आसन्न) विशिष्ट जन बैठे थे और दूर पर सम्राट को परिवृत्त किये हुये शस्त्रधारी पैतृक आप्तजन पंक्ति में स्थित सुवर्ण स्तम्भ की भांति खड़े थे—शस्त्रिणा मौलेन—

पंक्तिस्थितेन कार्तस्वरस्तम्भमण्डलेनेव परिवृतम्—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११८)।

देव हर्ष, चन्द्र सदृश पट्टासन (सिंहासन) पर विराजमान थे, जो मुक्ताशैल की शिलाओं से निर्मित था, हरिचन्दन के रस से प्रक्षालित (धुला) था, हिम के शीकरों (फुहारों) की तरह शीतल था, और जिसके पाण्डुरपाद चन्द्र-रश्मियों की तरह शुभ्र हाथी दांत के बने थे—

हरिचन्दनरसप्रक्षालिते तुषारशीकरशीतलतले दन्तपाण्डुरपादे शशिमय इव मुक्ताशैलशिलापट्टशयने समुपविष्टम्—(वहीं पृ० ११९)।

सम्राट के निकट वारविलासिनियाँ चामरग्राहिणी—(वहीं, पृ० ११९) पंखा झलने के लिये खड़ी थी—आसन्न वारविलासिनी, (वहीं, पृ० १२०)।

सम्राट आभरण पहिने थे जिनके मणियों की उज्ज्वल किरणों से सहस्रों इन्द्रधनुष बन गये थे—

आभरणमणिकिरणप्रभाजालजायमानानीन्द्रधनुः सहस्राणीन्द्रसानुप्रभहिमानि विलम्बमानमिव—(वहीं, पृ० १२१)।

सम्राट का प्रिय कृपाण पास में था, और पैरों को टेकने के लिये उनकी पादपीठ महानीलमणि से निर्मित और माणिक्यों की माला से मण्डित था और उस पर हर्ष अपना बाया चरण रखे थे—

महति महार्हे माणिक्यमालामण्डितमेखले महानीलमये पादपीठे वाम-चरणम्—(वहीं, पृ० १२२)।[1]

---

१ "He (Harsha) was sitting on a throne made of stone clear like a pearl, washed with sandal wood-water, and bright as the moon with its feet (pillars) made of ivory and its surface cool to the touch like snow water',—(Hc C & T pp 56–57)

सम्राट अमृत के फेन जैसा उज्ज्वल, मणियों से खचित नेत्र-सूत्र रेशम का अधोवस्त्र (धोती) पहने और और ऊपर से झीने (अघन) सूत्रबिन्दुओं से कढ़ा हुआ (अघनेन सतारागणेनोपरिकृतेन) उत्तरीय धारण किये थे। उनके वक्ष पर मुक्ताओं का हार शोभित था (वही, पृ० १२३)।

सम्राट के सिर के बालों में उत्फुल्ल (खिले) मालती के पुष्पों की मुण्ड-माला बँधी थी और उनका शिखण्डाभरण (शीश का मुकुट-आभरण) मोतियों और मरकत मणियों से युक्त था (वही, पृ० १२६-२७)।

बाण का यह विवरण सम्राट हर्ष के उज्ज्वल एवं आकर्षक व्यक्तित्व और उनके दरबार के अनुपम वैभव का हमें यथेष्ट परिचय प्रदान करता है।

राजप्रासाद के अधिकारी व सेवक —राजप्रासाद के मुख्य अधिकारियों के हर्षचरित में ये नाम मिलते हैं—

द्वारपाल—राजप्रासाद के द्वार के रक्षक (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १०४)। हर्षचरित में श्रीमान् प्रभाकरवर्धन के 'धवलगृह' के द्वार पर अनेक वेत्रधारी पुरुषों के पहरा देने का उल्लेख है। वेत्रधारी पुरुषों से अभिप्राय द्वार-पालों से ही है—

गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि (पंचम उच्छ्वास, पृ० २६६)।

दौवारिक—यह प्रतिहारों व महाप्रतिहारों का मुखिया था। स्पष्ट है कि राजप्रासाद में दौवारिक के नीचे जो अधिकारी होते थे वे प्रतिहार और महाप्रति-हार कहलाते थे।

सम्राट् हर्ष के दौवारिक पारियात्र को 'महाप्रतिहाराणामनन्तरश्च-क्षुष्यो'—कहा गया है (द्वितीय, पृ० १०६)।

बाण ने पारियात्र के दौवारिक पद को—'नैष्ठुर्याधिष्ठानेऽपि प्रतिष्ठितेन पदे' (वही, पृ० १०५) निष्ठुर पद कहा है। इसका कारण स्पष्टतया यह था कि दौवारिक किसी भी बड़े सामन्त राजाओं अथवा विशिष्ट जनों आदि को भी कड़ाई के साथ तब तक द्वार पर रोके रखता था, जब तक कि सम्राट् प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं कर देते थे।

दौवारिक अपने महान् पदानुरूप बायें हाथ में स्थूल मुक्ताओं (मोतियों) की मूठवाली कृपाण और दायें हाथ में सुवर्ण की विद्युल्लता के सदृश-चमक वाली सुवर्ण की वेत्र-यष्टि (छड़ी) लिये रहता था—

वामेन स्फुरन्मुक्ताफलकञ्चुकादनुरत्नम् करकिसलयेन कलयन्ती कृपाणम् दक्षिणेनासनीकृतरत्ना शाखिनीमिव लता शातकौम्भी वेत्रयष्टिमनुसृता धारयन्ती (वही, पृ० १०६)।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी राजप्रासाद के अधिकारियों में दौवारिक और अन्तर्वंशिक का उल्लेख है (अधिकरण ५, अध्याय ६)। अन्तर्वंशिक अन्तःपुर का अधिकारी था। अन्तःपुर में प्रतीहार पद पर स्त्रियां नियुक्त की जाती थीं। महाराज पुष्यभूति जब अन्तःपुर में थे, तो भैरवाचार्य के आगमन की सूचना प्रतीहारी ही अन्तःपुर में पहुँचाने गयी थी (हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १०२)।

महारानी यशोमति के पुत्र होने पर अन्तःपुर में प्रतिहारी परिचारिकाओं के नृत्य करने का उल्लेख है (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२२)। माता यशोमति के चितारोहण की तैयारी की प्रथम सूचना हर्ष को अन्तःपुर की प्रतीहारी ने पहुँचायी थी (पंचम उच्छ्वास, पृ० २८२)।

शस्त्रधारीमौल—ये सशस्त्र अंगरक्षक सैनिक थे (अग्निना मौलेन, द्वितीय, पृ० ११८)। मौल बल अथवा मौल सेना का अर्थशास्त्र में उल्लेख है। यह पैतृक स्थिर अथवा स्थायी सेना थी। मूलस्थान अथवा राजधानी की रक्षा का मुख्य दायित्व इसी मौल पर होता था (कौटिल्य, अधिकरण ९, अध्याय २)। और अंग-रक्षक भी पिता-पितामह की वंशपरम्परा से सम्बद्ध सैनिकों (मौल) में से ही नियुक्त किये जाते थे (अधिकरण १, अध्याय)।

वारविलासिनियाँ—राजप्रासाद में चँवर (चामरग्राहिणी चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१६) आदि झलने वाली परिचारिकाएँ, सम्राट् को नृत्य-गान से रिझाने और चरण दबाने (चरणग्राहिणी) के लिये भी वारविलासिनियाँ ही नियुक्त रहती थीं (हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२७–१२९, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२३)।

अर्थशास्त्र के अनुसार रूपाजीवियों (वारविलासिनी-वेश्याओं) को राजा के अन्तःपुर में नियुक्त किया जाता था (अधिकरण १, अध्याय २०), तथा गणिकाध्यक्ष (वेश्याओं के अध्यक्ष) राजप्रासाद में राजा की विभिन्न सेवाओं के लिये नियुक्त गणिकाओं का वेतन निर्धारित करता था।

राजा के ऊपर छत्र लेकर स्थित रहना, राजा का सुवर्णपात्र (झरी) रखना, राजा पर व्यजन डुलाना (चँवर झलना), राजा के साथ उसकी सेवा के लिये शिविका, पीठिका (सिंहासन) व रथ पर साथ रहना, ये सब गणिकाओं के ही कार्य थे (अधिकरण २, अध्याय २७)।

राजा को स्नान कराने (स्नापक), शरीर मलने (सवाहक), बिछौना लगाने (आस्तरक), वस्त्र धोने (रजक) और माला तैयार करने के कार्यादि भी परिचारिकायें (गणिकायें) ही करती थी (अधिकरण १, अध्याय २१, Kautilya Arthashastra, Sham Shastri, Bk I, Chap XXI, p 45)

हर्षचरित मे अन्त पुर मे पहरा देने वाली 'यामिकिनीषु' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१०) और 'यामचेटी' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६३) सम्भवतया विशिष्ट वेश्याओ मे से ही विशेषतया नियुक्त की जाती थी।

कञ्चुक या कञ्चुकी—अन्त पुर के अधिकारियो मे कञ्चुक का भी हर्षचरित मे उल्लेख है। कञ्चुकी के पद पर वृद्ध ब्राह्मण नियुक्त किये जाते थे। प्रभाकरवर्धन के मरणासन्न होने के दु ख मे दु खी कञ्चुकी का हर्ष ने उल्लेख किया है—'कञ्चुकिभिदु खैश्चातिवृद्धैरनुगताम्'—(पचम उच्छ्वास, पृ० २८७)। यशोमति जब मरणासन्न पति के शोक मे विह्वल चिता में जाने को प्रस्तुत हुयी तो 'कञ्चुकी' के रोकने पर यशोमति ने कहा था—'तात कञ्चुकिन्! कि मामलक्षणा प्रदर्शिणीकरोषि' (वही, पृ० २८५)।

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो जाने पर सूने अन्त पुर मे बाण ने लिखा है कि वहाँ शोक से आकुल केवल कुछ एक कञ्चुकी ही शेष रह गये थे—

'शोकाकुलकतिपयकञ्चुकिमात्रावशेषेषु शुद्धान्तेषु'—(वही, पृ० ३००)।

पुरोहित, ज्योतिषी और मौहूर्तिक—राजकुल से सम्बन्धित विशिष्ट राज पुरुषो में पुरोहित, ज्योतिषी और मौहूर्तिक का स्थान भी महत्वपूर्ण था।

हर्षचरित में प्रात बेला में जागरण का मगल पाठ करने वालो का उल्लेख है। प्रकट है कि मगलपाठ करने वाले ब्राह्मण पुरोहित ही रहे होंगे—

जयजेति प्रवीयन् नृत्यगृष्टिपाठकमामूर्च्चवांचीमाधवन्त—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २११)।

प्रभाकरवर्धन का प्रधान विद्वान ब्राह्मण पुरोहित (वही, पृ० २१०) भी प्रतीत होता है गरुकुल का पुरोहित[1] और राजा का मन्त्री (मन्त्री) था।

मौखरिन के विरुद्ध अभियान के अवसर पर इस हर्ष के मस्तक पर प्रसन्न और पूजित पुरोहितों ने शान्ति-जलिल छिड़का था (सप्तम उच्छ्वास पृ० ३६१)।

हर्ष के जन्म पर गरुकुल के ज्योतिषि तारक ने जो ज्योतिष विद्या की समस्त प्रत्संहिताओं का पारगत विद्वान (पारदृश्वा), भविष्यदन्त (त्रिकालज्ञ)

---

१ बौद्धधर्म ग्रहण कर लेने पर, चीनी यात्री ह्वेनसांग से मालूम होता है कि हर्ष धार्मिक प्रवचनों के लिये परम सुयोग्य भिक्षुओं को निजी 'पुरोहित' अथवा कुलाचार्य के रूप में अपने दरबार में नियुक्त कर दिया करता था—दरबार में जो भिक्षु 'कुलाचार्य' नियुक्त होता था, उसे विशेष आसन जिसे 'सिंहासन' (lions Throne) कहते थे, बैठने को दिया जाता था—

' Siladitya promotes the most deserving bhikshus at his Court, and makes them his private chaplins, personally receiving from them religious instructions'

A special seat or pulpit, called a "Lion's Throne", was sometimes given by a king to the Brother whom he chose to be court preacher '—Watters, Vol, I, p 348, and fn 1

हर्षचरित से भी हमें मालूम है कि प्रज्ञावान आचार्यों के प्रति हर्ष अनन्य श्रद्धालु और विनीत थे—विन्ध्य-अटवी में बौद्ध आचार्य दिवाकर मित्र से भेंट होने पर हर्ष ने कहा था कि उनके जैसे मनुष्य रत्न का दर्शन 'दैवता' के प्रसाद से ही मिलता है। तथा जब से हमने आप को देखा है, आपके गुणों से हमारा मन (हृदय) आप के वशीभूत हो गया है—

'दर्शनात्प्रभृति प्रभूतगुरुगुणाहृतेन हृदयेन परवन्तो वयम्'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ ४५२)।

अतः विन्ध्याटवी से लौटते वेर हर्ष आचार्य दिवाकर मित्र को दहिन राज्यश्री का क्लेश हरने के लिये, शीलनिदेशार्थ अपने साथ ही लिवा लाये थे (वही, पृ ४५३)।

और गणित के अनुसार फल देखने वाला था, प्रभाकरवर्धन से बच्चे (हर्ष) के भविष्य की गणना कर कहा था कि आप का यह पुत्र प्रसिद्ध सात चक्रवर्ती राजाओं में अग्रणी होगा—

सप्तानां चक्रवर्तिनामग्रणीश्चक्रवर्तिचिह्नाना—(चतुर्थ उच्छ्‌वास, पृ० २१८)।

प्रभाकरवर्धन को राज्यश्री के विवाह के लग्न की सूचना देते हुए मौहूर्तिकों ने जामात (ग्रहवर्मन) को कौतुकगृह (जहाँ विवाह का मण्डप बना था) में ले चलने का निवेदन किया था (वही, पृ० २५०)। मृत्युशय्या पर पड़े प्रभाकरवर्धन की दशा से दुःखी एकत्र जनों के साथ धवलगृह में राजकुल का पुरोहित भी दुःख से मंद अथवा उदास था—'मन्दायमानपुरोधसि' (पंचम उच्छ्‌वास, पृ० २६७)।

गौडाधिप के विरुद्ध दण्डयात्रा का लग्न (शुभदिन) मौहूर्तिकों (ज्योतिषियों) ने ही गणना द्वारा निश्चित किया था—(सप्तम उच्छ्‌वास, पृ० ३५९)।

दीर्घाध्वग-लेखहारक—यह राजप्रासाद के आवश्यक और गोपनीय संवादों को लाने-ले जाने वाला कर्मचारी था। हर्ष के भाई कृष्ण ने अपने दीर्घाध्वग-लेखहारक मेखलक का पत्र देकर बाण को सम्राट से मिलने का संदेश भिजवाया था।

दीर्घाध्वग[1] सुविख्यात (विश्वासपात्र) व्यक्ति होता था—

श्रीहर्षदेवस्य भ्राता कृष्णनाम्ना भवतामन्तिक प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वग प्रहितो द्वारमध्यास्ते (द्वितीय उच्छ्‌वास, पृ० ८९)।

राज्यवर्धन के हूणों पर चढ़ाई के लिए जाते समय हर्षदेव जब हिमालय की तराइयों (तुषारशैलकण्ठे) में आखेट करने में लगे थे तो उन्हें पिता की बीमारी का संदेश दीर्घाध्वग-लेखहारक कुरंगक से प्राप्त हुआ था (पंचम उच्छ्‌वास, पृ० २६०)।

---

१ "A renowned courier is waiting at the door, sent to you by Krishna, the brother of Shri Harsha"

HC, C & T, p 40

दीर्घाध्वग, किस तेजी के साथ चलकर संदेश पहुँचाते थे, इस का अंदाजा कामरूप के राजा कुमार द्वारा, नालन्दा में रहे चीनी यात्री ह्वेनसांग को निमंत्रित करने को भेजे गये संदेश वाहक लेखहारकों के कामरूप से दो दिन में नालन्दा पहुँच जाने से लगाया जा सकता है—(Life, p 169)।

गौडाधिप के विरुद्ध अभियान के समय मार्ग में लेखहारक ने ही राज्यवर्द्धन के सेनापति भण्डि के आगमन की सूचना देव हर्ष को पहुँचायी थी (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०२)।

राजप्रासाद के अनेक और कर्मचारियों के भी नाम मिलते हैं जैसे ताम्बूल दायक, आसनाभिवाहक और वस्त्रकर्मान्तिक (राजकीय वस्त्र ढोनवाने का अधिकारी) आदि (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४३, पृ० २६६ और षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२१)।

राज्य के शासनाधिकारी —हर्षचरित, हर्ष के अभिलेखों व ह्वेनसाग से हर्षयुगीन कतिपय अधिकारियों के नाम हमें ज्ञात होते हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिये कि हर्षकालीन सैनिक व प्रशासनिक अधिकारियों के नाम गुप्तयुग के शासनाधिकारियों के नामों के ही अनुरूप हैं, जिससे यह अनुमान करना सर्वथा सही और सगत होगा कि हर्ष की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था का मूलाधार और प्रकार उसके पूर्ववर्ती गुप्तों के साचे पर ही आधारित था।

हर्षचरित और अभिलेखों में जिन अधिकारियों के नाम हमें प्राप्त होते हैं, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

ग्राम अक्षपटलिक और करणिक :—हर्ष के गौड-दण्डयात्रा के अवसर पर यह अधिकारी (ग्रामाक्षपटलिक) अपने सहयोगी करणिकों (लिपिकों)[1] के साथ सम्राट से मिला था। उसने महाराज हर्षवर्धन की मुद्रा से निर्मित और वृषभ् चिह्न से अंकित मुद्रा (मुहर) भेंट की थी। देव हर्ष के हाथ से मुद्रा अचानक सरस्वती तीर की कोमल भूमि पर गिर पड़ी और उसके अक्षर स्पष्ट रूप से धरती पर अंकित हो गये थे।

सम्राट के परिजन आदि इस घटना को अमाङ्गल्य-सूचक समझ खिन्न से हो चले, लेकिन हर्ष ने उनके प्रारम्भ-जनित भाव को असगत समझा और उस का अर्थ यह लिया कि सारी पृथ्वी उनके 'एकछत्र शासन' से मुद्रांकित होगी—

'एकशासनमुद्राङ्काभूर्भवतो भविष्यतीति'—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६२)।

स्वय हर्ष के मधुवन और बासखेडा ताम्रपत्र लेखों में 'महाअक्षपटल-धिकरणाधिकृत' (अर्थात् महाक्षपटल-अधिकरण का अधिकारी) के अधिकारी

१ HC, C & T, p 198, fn 1

'महाक्षपटलाधिकृत' का उल्लेख है। प्रकट है कि वह अक्षपटल (अथवा अक्षपटल अधिकरण का अधिकारी अक्षपटलाधिकृत) के ऊपर का अधिकारी था। ताम्रपत्रों में इस पद पर महासामन्त महाराज भानु (वासखेटा) और सामन्त महाराज ईश्वरगुप्त के नामों का उल्लेख है। निर्विवाद है कि महाक्षपटल और अक्षपटल के पदों पर उच्चस्थानीय पुरुष ही नियुक्त किये जाते थे जो इन पदों की गुरुता अथवा महत्व को इंगित करता है। शायद अक्षपटलक और उसके ऊपर का महाक्षपटलक भूमि और राजस्व के उच्च अधिकारी वर्ग में से थे।

समुद्रगुप्त के गया ताम्रपत्र[1] (जिसे जाली समझा जाता है) में अन्य ग्राम अक्षपटलाधिकृत (अक्षपटलक) का उल्लेख है। अन्य (दूसरे) ग्राम के अक्षपटलक के उल्लेख से प्रकट है कि प्रत्येक ग्राम के लिये पृथक्तया शासन की ओर से भूमि सम्बन्धी मामलों के कागजपत्रों को रखने और भूमि से सम्बन्धित विवादों को निपटाने व भूमिकर संग्रहित करने आदि के लिये अक्षपटलक नाम का अधिकारी नियुक्त रहता था।[2]

---

१ 'अन्य ग्राम अक्षपटलाधिकृत'' C I I Vol III, p 257

२ Ibid, p 190, f n 2

डा० फ्लीट् के अनुसार अक्षपटलिक कागजपत्रों के संरक्षण (Keeper of Records) का अधिकारी था। अक्षपटलिक 'अक्षपटल' से बना है जिसका अर्थ न्यायाधिकरण (Court of law) व न्यायिक लेखों का आगार (Depository of legal Documents) होता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य के विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय-व्यय के अधिकरण को 'अक्षपटल' कहा गया है और उसके अधिकारी को 'गाणनिक' (अधिकरण २, अध्याय ७)।

इस से प्रतीत होता है कि 'अक्षपटल', आय-व्यय की गणना अथवा लेखा-जोखा के कागजपत्रों को रखने का अधिकरण या दफ्तर था। और उस का अधिकारी 'अक्षपटलिक' था जो राजकीय आय-व्यय को 'निबन्ध पुस्तिका' (अर्थशास्त्र, २ अधिकरण ७ अध्याय) में दर्ज कराता था। संभवतया भूमि सम्बन्धी मामलों व वाद विवादों को न्यायिक रूप से निपटाना भी उस का कार्य था।

समुद्रगुप्त के गया दानपत्र लेख से यह भी विदित होता है कि दान में प्रदत्त भूमि का पट्टा (दानपत्र) ग्राम के अक्षपटलिक के आदेश पर लिखा

महाराज ध्रुवभट्ट शीलादित्य सप्तम के अलिना अभिलेख में महाक्षपटलिक का उल्लेख है। वह सम्भवतया अक्षपटलिकों के ऊपर का अधिकारी था। सम्भवतया कई एक ग्रामों के अक्षपटलिक महाक्षपटलिक के अधीन होते थे, जिन के कार्यों का वह निरीक्षण करता था।

राजकीय अभिलेखागार—ह्वेनसांग के अनुसार राजकीय अभिलेखागारों के सञ्चालन और घटनाओं का विवरण रखने के लिए पृथक् अधिकारी होते थे। प्रशासकीय वार्षिक विवरणों और राजकीय प्रपत्रों को सामूहिक रूप से नीलपिट कहते थे। नीलपिट में अच्छी और बुरी घटनायें तथा सार्वजनिक आपदाओं एवं सुन्दर शुभ घटनाओं का विवरण विस्तार से लेखबद्ध किया जाता था।[1]

चीनी यात्री के इस उल्लेख से विदित होता है कि हर्ष की इतिहास में यथेष्ट अभिरुचि थी और इसीलिये उसकी तत्कालीन सरकार ने इतिहास लेखन के हेतु ऐतिहासिक महत्त्व के वृत्त को सङ्ग्रहित करने और रखने के लिये पृथक् अधिकारियों के निर्देशन में अभिलेखागार (archives) की व्यवस्था कर रखी थी।

जाता था। दानपत्र के अन्त में उल्लेख है कि यह (दानपत्र) 'अन्य ग्राम के अक्षपटलाधिकृत ईश्वरस्वामी के आदेश से लिखा गया।' इससे विदित होता है कि राजाज्ञा द्वारा दान में दी जाने वाली भूमि का दानपत्र लिखाने का अधिकारी अक्षपटलिक ही था। यह तथ्य भी उसके पद की गुरुता को इंगित करता है।

प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत में अक्षपटलिक ग्राम का राजकीय अधिकारी था जो गाँव की मालगुजारी का पूर्ण विवरण रखता था। ग्राम की मालगुजारी का अभिलेख 'अक्षपटल' कहलाता था और उसका अधिकारी अक्षपटलिक—

(Deeds of Harsha, p 169)

१. "As to their archives and records there are separate Custodians of these. The official annals and state papers are called *collectively* ni–lo–p–tu (Nilapita)· in these good and bad are recorded, and instances of public Calamity and good fortune are set forth in detail—Watters, Vol I, p 154.

लेखक और पुस्तकृत —बाण ने हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में लेखक और पुस्तकृत इन दो का उल्लेख किया है।

लेखक का अर्थ लिखने वाला स्पष्ट है। पुस्तकृत का अर्थ भाष्यकार के अनुसार लिपिकार (लेप्यकार) है। गुप्त सम्राट बुद्धगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखो[1] में पुस्तपाल नाम के अधिकारी का उल्लेख है जो शासनादेशों के लेखो के रक्षण का अधिकारी था। सम्भवतया गुप्तयुगीन पुस्तपाल ही हर्ष के समय में पुस्तकृत कहलाते थे।[2] लेखक और पुस्तकृत शायद ह्वेनसांग द्वारा उल्लेखित अभिलेखागारो और नीलपिट (records) के संरक्षण और घटनाओ के विवरणो को लिपिबद्ध करने वाले अधिकारी व कर्मचारी भी थे। शासन की स्थिरता के लिए शासनादेशो और घटनाओ का आलेखन व संरक्षण नितांत महत्व का कार्य था।

सचिव —बाण ने महाराज पुष्यभूति के लिये नगरजनो (पौरो), राज्य-कर्मचारियो (पादोपजीवी) और सचिवो व करद-महासामंतो द्वारा शिव की पूजा के लिये उपहार लाने का उल्लेख किया है (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १७१)।

पंचम उच्छ्वास मे प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से दु खी राजवल्लभ भृत्यो और सुहृदो के साथ सचिवो के भी गृहत्याग करने का उल्लेख है (पृ०३०१)।

थॉमस और कॉवेल ने सचिव से अभिप्राय मंत्रणा देने वाले (Councilrs) व मंत्री (ministers) लिया है।[3]

चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहा-अभिलेख में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के अन्वयप्राप्त सचिव (वंशपरम्परागत सचिव) का उल्लेख है जो सधिविग्रहिक भी था।[4]

इससे विदित होता है कि सचिव का पद वंशानुगत भी होता था। सचिव संभवतया 'अमात्य' थे जिन का पद मंत्री से नीचे था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र मे सचिव (अथवा अमात्य) का पद मंत्री से नीचे का पद बताया गया है। इस पद पर राजकार्य में समर्थ व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे।

---

१ Select Inscriptions, D C Sarkar Ins Nos 34 & 36

२ थॉमस और कॉवेल ने पुस्तकृत को, 'Scribe'—लिपिकार बताया है—(HC p 33, fn 2)।

३ Hc, C & T p 85-86

४ C I I Vol III, p 35

किन्तु मंत्री पद पर मानवंश के अलावा अन्य गुणों से भी युक्त व्यक्ति नियुक्त किया जाता था, इसीलिये 'मंत्रीपद को 'गुणवानन्वादिति' गुणवान कहा गया है।[1]

मौलमंत्री और मंत्री —बाण ने प्रभाकरवर्धन की अन्त्य बीमारी के अवसर पर धवलगृह की चन्द्रशालिका (कोठे का कमरा या कोठा) में दुःख से मूक हुये मौल-मंत्रियों (वंशपरम्परागत मंत्रियों) और दुःख में डूबे खिन्न, घबराये हुये मंत्रियों का हर्षचरित में उल्लेख किया है।[2]

हर्षचरित के षष्ठ उच्छ्वास में हर्ष का मौलों (वंशानुगत मंत्रियों) से वेष्टित (घिरे) होने का उल्लेख है (पृ०३०८)। प्रकट है कि गुप्तयुग की तरह हर्ष के समय में भी कतिपय सचिव व मंत्री वंशानुगत (मौल) हुआ करते थे।

> थामस और कावेल ने मौलों से 'राज्य के मंत्रियों' (State-ministers)
> और मंत्रियों से मंत्रणा देने वाले सलाहकार (= advisers)
> अथवा सचिवों से अर्थ लिया है।[3]

आग्रहारिक —अग्रहारों (ब्राह्मणों को जो गांव दान में दिये जाते उन्हें अग्रहार कहते थे) के राजकीय प्रबन्धक आग्रहारिक कहलाते थे।[4]

महत्तर —यह शब्द महत् (बड़ा) से बना है। मोनियर विलियम्स के अनुसार महत्तर गांव का मुख्य या वयोवृद्ध व्यक्ति होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[5] में ग्राम (गाँव) के मुख्य को ग्रामिक कहा गया है और निर्देश दिया गया

---

१ कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते। सामर्थ्यश्च—
विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः ॥२॥
(अधिकरण १, अध्याय ८)।

२ चन्द्रशालिकाशालिनमूकमौलमौलकं (पंचम उच्छ्वास, पृ०२६६) और—दुर्मनायमानमन्त्रिणि—(वहीं, पृ० २६७)।

३ In the Moon Chamber crouched the silent ministers of state the king's advisers sunk in dejection Hc, C & T p 138

४ C I I, Vol III, p 52, fn 3 owner of an agrahara or officer superintending the Agrahara'—select Ins, p 360 fn 9

५ कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण ३, अध्याय १०।

है कि यदि गाँव के कार्य मे ग्रामिक ग्राम के बाहर जाय तो ग्रामवासियो को उसके साथ जाना चाहिए। गाव से सम्राट हर्षदेव को मिलने जाते समय ग्रामवासियो को हम इसी प्रकार, महत्तर के साथ पाते है। अत महत्तर गाँव का मुख्य व्यक्ति ग्राम-पचायत का मुख्य सदस्य या ग्रामिक था।

हर्षचरित में उल्लेख है कि ग्राम के महत्तर और आग्रहारिक, ग्रामवासियो के साथ जो हाथो में जलकुम्भ (मगल के लिये), दधि (दही), गुड, खाड, कुसुमकण्डियाँ (फूलो की टोकरी) लिये थे गौड-अभियान के समय सम्राट हर्षदेव से भेंट करने आये थे। इन लोगो ने हर्ष से पूर्वकाल के भोगपतियो के दोषो की निन्दा और आयुक्तको की सराहना की थी। तथा कुछ लोग चाटो के अपराधो और परिपालको के प्रति परितोष की चर्चा कर रहे थे।[1]

भोगपति —परिव्राजक महाराज हस्तिन, महाराज जयनाथ और महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र अभिलेखो मे भौगिक नाम के अधिकारी का उल्लेख है। सम्भवतया भौगिक को ही हर्षचरित में भोगपति कहा गया है। डा० फ्लीट के अनुसार भोगिक या भोगपति का पद सामन्त से नीचे लेकिन विषयपति से ऊँचा था।[2]

थॉमस और कॉवेल ने भोगपति का अर्थ 'गवर्नर' (governors) किया है।[3]

महाराज विजयसेन के मल्लसारुल ताम्र-पत्र-लेख में विषयपति का उल्लेख है।[4]

भोग सम्भवतया 'भुक्ति' (प्रात) का पर्याय था। महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्रो मे फल्गुदत्त नाम के पुरुष का उल्लेख है जो भौगिक और अमात्य था।[5] इन सन्दर्भो से प्रतीत होता है कि भोगपति प्रात का पति अथवा शासक था, जैसा कि थॉमस और कॉवेल मानते है।

---

१ सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७७–७८।
२ C I I, Vol III, p 100, fn 2
३ Hc C & T, p 208
४ डी सी सरकार भोगपति से अश्वशाला का अधिकारी अथवा जागीरदार अर्थ लेते है—select Inscriptions, p 360 fn 9
५ C I I Vol III, p 124 and p 129

चाट —ये सम्भवत्या पुलिस[1] के सिपाही थे। डा० फ्लीट के मत में चाट अनियमित (अथवा अस्थायी) सैनिक—(Irregular soldiers) थे।[2]

परिपालक —परिपालक का अर्थ पालन करनेवाला होता है, जिस से प्रतीत होता है कि परिपालक ग्रामो में जनकल्याण का कार्य करने वाले अधिकारी थे।[3]

आयुक्त —हर्षचरित में 'अधिकृत आयुक्त (प्रशमित आयुक्तो का) उल्लेख है। युक्त नाम के अधिकारी का कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी उल्लेख है जो अर्थ विभाग (जयव्यय) अथवा वित्त-विभाग के अधिकारी थे। कौटिल्य ने कहा है कि आकाश में उडने वाले पक्षियो की गतिविधि जानना शक्य है, लेकिन युक्तो द्वारा प्रच्छन्न भाव से धन के अपहरण का पता लगाना कठिन है—

अपि शक्या गतिर्ज्ञातु पतता खे पतत्रिणाम्।
न तु प्रच्छन्नभावाना युक्तना चरता गति ॥३॥

सम्भवतया आयुक्त अथवा युक्त अर्थविभाग के अधिकारी थे। कौटिल्य ने इस पद पर अमात्य-गुणवाले व्यक्तियों को ही नियुक्त करने का निर्देश दिया है।[4] इससे प्रकट है कि युक्त-आयुक्त उच्च वर्ग के अधिकारियो में स्थान रखते थे।

युक्त नाम के अधिकारियो का अशोक के अभिलेखो में भी उल्लेख है, जो विषय के शासनाधिकारी थे और राजकार्य के साथ-साथ जनता में धर्म-प्रचारार्थ अपने जनपद अथवा विषय (जिला) का दौरा भी किया करते थे।[5]

आयुक्त नाम के अधिकारी का समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी नाम आता है[6] जो समुद्रगुप्त द्वारा विजित अनेकानेक राजाओं के निजी वैभव (सम्पत्ति) को लौटाने (प्रत्यर्पण) के लिये नियुक्त किये गये थे—

१ Dr Bhagwanlal Indraji, Ind Anti Vol IX, p 175 Harsha, R K Mukherji, p 100
२ C I I Vol III., p 98
३ थॉमस और कॉवेल ने इन्हें निरीक्षक (O erseers) कहा है—Hc p 208
४ कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण २ अध्याय ९।
५ मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, म० प्र० पाथरी, पृ० १२८।
६ C I I Vol III, Inscription NO 1

स्वभुजबल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्पणा नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य—(पंक्ति २६)।

इस सन्दर्भ से भी प्रकट है कि आयुक्त अर्थशास्त्र के युक्त के जैसे अर्थ के अधिकारी थे।

बुद्धगुप्त के दामोदरपुर ताम्र-पत्र अभिलेख में भी 'आयुक्त' अधिकारी का उल्लेख है—(Select Ins No 36 p 328)।

छठी शताब्दी ई० सन् के प्रारम्भ काल के गोपचन्द्र के मल्लसारुल ताम्र-पत्र अभिलेख में तदायुक्तक नाम के अधिकारी का उल्लेख है जिसमे शायद आयुक्त ही अभिप्रेत है। डा० डी० सी० सरकार के अनुसार आयुक्त मजिस्ट्रेट या कोषाध्यक्ष (Treasury officer) थे।[1]

राष्ट्रकूट राजा गोविन्द चतुर्थ (९३० ई० सन्) के अभिलेखों में भी युक्त व उपयुक्त नाम के कर्मचारियो का उल्लेख है।

कुलपुत्र —डा० फ्लीट ने कुलपुत्र का अर्थ उच्चकुल (highborn)[2] का किया है। शीलादित्य सप्तम के अलिना ताम्र-पत्र लेख में कुलपुत्र अमात्य गुहा का उल्लेख है। वाकाटक महाराज प्रवरसेन द्वितीय के ताम्र-पत्र लेख में सर्वाध्यक्ष अधियोग (Office of General superintendents) में नियुक्त आज्ञाकारी कुलपुत्र अधिकारियो (अधिकृत) का उल्लेख है—सर्वाध्यक्ष अयोग नियुक्ता आज्ञासचारी-कुलपुत्र-अधिकृता।[3]

हर्षचरित मे वर्णन है कि देहाती चेट अथवा नौकर-चाकर कुलपुत्रो पर यह ताना दे रहे थे कि परिश्रम तो हम करेंगे और फल ये लेंगे।[4] अत प्रकट है कि आभिजात-वर्ग के व्यक्ति जिन्हें 'कुलपुत्र' कहा जाता था राज्य के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किये जाते थे।

दण्डि —बाण ने प्रकुपित प्रचण्ड दण्डियो का उल्लेख किया है, जिन के भय से राजा को देखने आये हुये लोग भाग खडे होते थे (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७७)। गुप्तयुग मे पुलिस का मुख्य अधिकारी को दण्डपाशिक (बंगाली में प्राप्त

---

१ Select Inscriptions, p 360, fn 9
२ C I I Vol III, p 190
३ C I I Vol III, Ins Nos 55–56
४ सल्चेटक सेव्यमानामविभक्तकुलपुत्रलोकम्—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७७)।

मुद्रा) कहा गया है।[1] अतः अनुमान होता है कि दाण्डी (दण्डधारी) पुलिस अधिकारी के नीचे कार्य करने वाले सिपाही थे।

अध्यक्ष—हर्षचरित में 'यथाधिकारम् अध्यक्षान्' उल्लेख है अर्थात् विभिन्न अधिकारों अथवा विभागों के अध्यक्ष (वही पृ० ४०६)। सन्दर्भित अध्यक्षों का कॉवेल और थामस ने विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए नियुक्त निरीक्षक (Overseers) कहा है।[2]

कामरूप के राजा भास्करवर्मन के दूत हंसवेग द्वारा जो विभिन्न प्रकार के उपहारादि भेंट किये गये थे, उन सब को देखने तथा निरीक्षण करने के बाद सम्राट् हर्ष ने विभिन्न प्रकार के अध्यक्षों को अपने अपने अधिकारों (यथा-अधिकार) के अनुसार उपहार में आयी वस्तुओं को स्वीकार करने (सम्हालने) की आज्ञा दी थी।

प्रकट है कि विभिन्न प्रकार के विभागों के लिए पृथक् अध्यक्ष हुआ करते थे। कौटिल्य ने भी विभिन्न प्रकार के कार्यों अथवा विभागों के लिये पृथक् अध्यक्षों का निरूपण किया है जैसे सुवर्णाध्यक्ष, कोष्ठागाराध्यक्ष, आयुधागाराध्यक्ष, आदि (अर्थशास्त्र, २ अधिकरण)।

लोकपाल—'अत्र लोकनाथेन दिक्षु मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः',[3] सम्राट् हर्ष ने प्रत्येक दिशा अर्थात् जनपदों के लिये लोकपाल (लोकप्रजा के रक्षक) नियुक्त किये, जिस प्रकार परमेश्वर द्वारा पूर्व में इन्द्र, दक्षिण के लिये यम, पश्चिम के लिये वरुण और उत्तर के लिये कुबेर नियुक्त हैं। सन्दर्भ से प्रकट है कि लोकपाल वर्तमान राज्यपालों के जैसे प्रान्तों के रक्षक अथवा प्रान्तपति (गवर्नर) या शासक थे। गुप्तकाल में प्रान्तपति को गोप्तृ अथवा 'गोप्ता' भी कहते थे जिसका अर्थ रक्षक होता है। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि सम्राट् (स्कन्दगुप्त) ने 'सौराष्ट्रावनि (देश) पालनार्थ' सुयोग्य (वस्तु) पर्णदत्त को गोप्तृ नियुक्त किया था (C I I Vol III, Ins 14)।

---

१ Annual Report of the Archaeological survey of India, 1903-04 Nos 13-14

२ Hc C & T, p 225

३ बाण ने अन्यत्र कहा है कि श्री हर्ष अपने दीर्घ दृष्टिपात से लगते थे कि लोकपालों के क्रिया-कलाप का निरीक्षण कर रहे हों—

दीर्घैर्दिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृतमिव प्रत्यवेक्षमाणम् (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १५४, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२०)।

गुप्तसम्राट बुद्धगुप्त के अभिलेख मे महाराज सुरश्मिचन्द्र को, जो कालिन्दी (यमुना) और नर्मदा के बीच के प्रदेश का पालक अथवा प्रान्तपति था, लोकपाल के गुणो वाला कहा गया है—

'कालिन्दी-नर्म्मदयोर्म्मध्य पालयति लोकपाल—गुणैर्ज्जगति महाराज श्रियमनुभवति सुरश्मिचन्द्रे च' (पक्ति ३)—(Ibid , Ins No 19) ।

लोक रक्षक के रूप में राजा भी लोकपाल कहे जाते थे । हर्षचरित में कामरूप के राजाओ की वशगाथा का वर्णन करते हुये हसवेग ने कहा था कि 'आभोग' नाम का छत्र जो वरुण के बाह्य हृदय जैसा था, नरक नाम के राजा (कामरूप के) ने ही छीना था । वह ऐसा वीर था कि उसके बाल्यकाल मे ही लोकपाल उसके चरणो पर नत हो गये थे—

वीरस्य यस्याभवन्बाल्य एव पादप्रणामप्रणयिनश्चूडामणयो लोकपालानाम् (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३९१) ।

पहलादपुर (पलादपुर—गाजीपुर जिला) पाषाण स्तम्भ-लेख मे शिशुपाल नाम के राजा को पञ्चम लोकपाल कहा गया है (C I I Vol III Ins No 58) ।

सचारा और सर्वगता—बाण ने प्रथमउच्छ्वास (पृ० ६२) मे 'मनोरथा सर्वगता और 'रणरणक सचारक' वाक्यो का प्रयोग किया है । भाष्याकार के अनुसार सचारा का अर्थ 'चर' अथवा गुप्तचर होता है (चारा सस्था, सचारकाश्च) ।

कौटिल्य ने गुप्तचरो में सचारा और सस्था नामक चरो व गूढपुरुषो का उल्लेख किया है । सचारा गुप्तचर अपने राष्ट्र के बाहर भी काम करते थे और सस्था नामक गुप्तचर देश के भीतर राजा के प्रासाद, अन्त पुर और मन्त्रियो आदि अधिकारियो तथा दुर्गों के अधिकारियों की गतिविधि पर नजर रखते थे और गुप्तचर सस्था को सभी उपलब्ध समाचार भेजा करते थे । गुप्तचर विभाग जो चरो को सचारित या सचालित करता था उसे सस्था कहते थे (चारसचारिण सस्था) ।[१]

चर सभी जगह घूमा फिरा करते थे । अत बाण द्वारा उल्लेखित सर्वगता[३] (सब जगह जाने वाले) से शायद चर (गुप्तचर) भी अभिप्रेत है ।[२]

---

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र, १ अधिकरण १२ अध्याय ।

२ "Bana also refers to the employment of spies whom he calls Sarvagatah—Harsha R K Mukherji, p 94

हर्ष के मधुबन और बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेखों में भी कतिपय अधिकारियों के नाम आते हैं जैसे —

दौस्साधसाधनिक —अभिलेख में इनका महासामन्त और महाराज (सामन्त) के बाद नाम आया है जिससे प्रतीत होता है कि ये अमात्य व मन्त्रियों के तुल्य उत्तरदायी अधिकारी थे जो दुःसाध्य कार्यों अथवा समस्याओं को साधने या सुलझाने में निपुण थे। डा० डी० सी० सरकार महाराजाधिराज धर्मादित्य के फरीदपुर ताम्रपत्र-लेख में उल्लेखित साधनिक का, जिसे वे न्यायाधिकरण में नियुक्त अधिकारी अनुमान करते हैं, बंगाल के दानपत्रों में उल्लेखित 'दौः साधसाधनिक' से मिलाते हैं। साधन का अर्थ उन्होंने ऋण का भुगतान व अर्थदण्ड किया है। अतः उनका अनुमान है कि साधनिक अथवा दौः साधसाधनिक नाम का अधिकारी न्यायालय द्वारा आरोपित अर्थदण्ड व राजकीय ऋणों की वसूली करता था (Select Inscriptions p 351 fn 5)।

महाप्रमातार, प्रमातार और दूतक —अभिलेख में महासामन्त स्कन्दगुप्त को महाप्रमातार और दूतक कहा गया है। प्रकट है कि महाप्रमातार और दूतक के पद पर उच्च श्रेणी के सामन्त राजा, कुलपुत्र, व उत्तरित पद के पुरुष नियुक्त किये जाते थे। महाप्रमातार के नीचे उसके सहायक अधिकारी को प्रमातार कहा जाता था।

महाप्रमातार व प्रमातार[1] सम्भवतया धर्म अथवा न्याय के मन्त्री (अशोक के धर्ममहामात्रों के अनुरूप के अधिकारी) थे।

मनु ने दूत अथवा दूतक को बहुत महत्त्वपूर्ण राजपुरुष बताया है। दूतक को सर्वशास्त्रों का ज्ञाता, शुद्ध हृदयी, कुशल और उच्चकुल का पुरुष होना आवश्यक था—

> दूत सर्वशास्त्रविशारदम्। शुचि दक्ष कुलोद्गतम् ॥६३॥ (मनुस्मृति सप्तम अध्याय)।
>
> क्योंकि मनु के शब्दों में—
>
> 'अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
> नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ ६५ ॥
>
> अमात्य के अधीन दण्ड, दण्ड के अधीन विनीत (दुष्टों आदि को) करने

---

१ Harsha R K. Mukerji, p 96

का कार्य, नृपति के अधीन कोश तथा राष्ट्र (राज्य) और दूत के अधीन सधि और विग्रह होते हैं।'

भास्करवर्मन ने सधि के लिये, ऐसा ही कुशल और दक्ष हसवेग नाम के व्यक्ति को सम्राट हर्ष के पास मैत्री (सधि) स्थापित करने के लिये दूत बनाकर भेजा था। हसवेग के दूतक कार्य की कुशलता सम्राट हर्ष द्वारा भास्करवर्मन को अविलम्ब मित्र स्वीकार कर लिये जाने से सिद्ध है।

हर्षवर्धन के दोनो ताम्रलेखो में महासामन्त स्कन्दगुप्त दूतक कहे गये हैं।

गुप्तयुग के अभिलेखो मे भी दूतक पदपर उच्चस्थानीय व्यक्ति ही मिलते हैं। महाराज सर्वनाथ के लेख में उपरिक मात्रिशिव दूतक भी कहे गये हैं।

दूतक का काम राजकीय दानपत्रो की स्वीकृति सम्बन्धित विषयो (जनपद) के अधिकारियो को ज्ञापित करना भी था, जो ज्ञापन मिलने पर दानपत्र लिपिबद्ध कर दान-प्राप्तकर्ता को अर्पित करते थे (C I I p 100 In 3)।

राजस्थानीय और उपरिक—राजस्थानीय और उपरिक ये दोनो प्रातीय शासको के विरद अथवा उपाधियाँ थी।

यशोधर्मन के मन्दसोर अभिलेख मे अभयदत्त नाम के राजस्थानीय अथवा प्रातपति (प्रान्त की प्रजा का रक्षक या पालक) का उल्लेख है। क्षेमेन्द्र के 'लोक प्रकाश' में राजस्थानीय की व्याख्या करते हुए—'प्रजापालनार्थमुद्वहति रक्षयति च, स राजस्थानीय' कहा गया है।[१]

महाराज धारसेन द्वितीय के ताम्रपत्र लेख और जीवितगुप्त द्वितीय के देववर्नाक अभिलेख मे अन्यान्य अधिकारियो के साथ राजस्थानीय का भी नाम आया है।

स्कन्दगुप्त के बिहार सतम्भलेख मे 'उपरिक' का उल्लेख है।[२]

गुप्तयुग (ई० सन् ५४३) के दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख मे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के उपरिक महाराज का उल्लेख है।[3]

महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र लेख मे दूतक उपरिक मात्रिशिव का नाम आया है।[४]

---

१ C I I Vol III, Ins No 35 p 157 fn 1

२ Ibid Ins Nos 39 & 46, pp 170, & 218 & No 12, p 52

३ Select Inscriptions, No 39, p 328

४ C I I Vol III No 30 p 144

कुमारामात्य—सामान्यतः कुमार का अमात्य या मन्त्री (Counsellor of the prince) कुमारामात्य कहलाता था।[१] जीवितगुप्त द्वितीय के देववरनार्क अभिलेख में अन्यान्य अधिकारियों के साथ राजामात्य और कुमारामात्य नाम के अधिकारियों का भी उल्लेख है।[२] इससे इंगित होता है कि अमात्यों की श्रेणी में राजा के अमात्य को राजामात्य और कुमार के अमात्य को कुमारामात्य कहा जाता था।

कुमारामात्य की अनेक श्रेणियाँ थीं। कुमारामात्य के ऊपर का पद महाकुमारामात्य था।[3]

हर्षचरित में मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त तथा महादेवी यशोमति के भाई का पुत्र भण्डि जो बाल्यावस्था में राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचरों के रूप में—

'भण्डिनामानमनुचर कुमारयोरर्पितवान्'—तथा "कुमारगुप्तमाधवगुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ" (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २३१-३५ पृ० २३६)।

नियुक्त किये गये थे, प्रतीत होता है वे कुमारों के अमात्य अथवा कुमारामात्य के रूप में ही नियुक्त हुये थे।

विषयपति—ये विषय अथवा जिले के शासक थे। विषयपति, उच्चपदीय पुरुष ही नियुक्त किये जाते थे। दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख में उल्लेख है कि कुमारगुप्त प्रथम के समय पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के उपरिक चिरातदत्त ने विषय के शासन के लिये वेत्रवर्मन को विषयपति नियुक्त किया था जो कुमारामात्य भी था।[४]

गुप्त-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विषयपति की नियुक्ति सम्राट के अलावा प्रान्तों के उपरिक (गवर्नर) भी किया करते थे।

सम्राट स्कन्दगुप्त ने अन्तर्वेदी विषय के लिये शर्वनाग को विषयपति नियुक्त किया था।[५]

---

१ Ibid , pp 16, fn 7

२ Ibid , Ins No 46, p 216–18

३ Indian Antiquary Vol XXV , p 306

४ Epigraphia Indica Vol XV , p. 130 f & 133 f

५ C I I Vol III p 71

गुप्तसवत् २२४ (=ई० सन् ५५४) में पुण्ड्रवधन भुक्ति के उपरिक महाराज ने स्वयम्भुदेव को कोटिवर्ष विषय का विषयपति नियुक्त किया था।[१]

महाराजाधिराज धर्मादित्य के फरीदपुर ताम्रपत्र-लेख में उल्लेख है कि प्रसाद-लब्ध महाराज स्थाणुदत्त (नव्यावासिका का उपरिक) ने जजाव नामक व्यक्ति को वारकमण्डल का विषयपति नियुक्त किया था।[२]

विषयपति का कार्यालय (अधिकरण) अधिष्ठानअधिकरण कहा जाता था। कुमारगुप्त प्रथम के दामोदरपुर ताम्रपत्र लेखो मे (गु० स० १२४—ई० सन् ४४४ और गु० स० १२८ ई० सन् ४४८) कोटिवर्ष—विषय के विषयपति (शासक) कुमारामात्य वेत्रवमन के अधिष्ठानअधिकरण के साथ उसकी प्रशासनिक समिति का भी उल्लेख है जिसमें निम्नलिखित सदस्य थे—

१ नगरश्रेष्ठी—पूँजीपति अथवा धनिक सेठो का मुखिया[३] धृतपाल।
२ सार्थवाह—व्यापारियो के निगम का मुखिया— बन्धुमित्र।[४]
३ प्रथम कुलिक—ब्याज पर रुपया देने वाले साहूकारो के सघ का मुखिया— धृतिमित्र।[५]
४ प्रथम कायस्थ—वणिको का मुख्य या शासन समिति का मुख्यसचिव शाम्बपाल।[६]
५ पुस्तपाल, तीन—रिशिदत्त (ऋषिदत्त), जयनन्दि, और विभुदत्त।

राष्ट्र के शासन को सुसचालित करने के लिये गुप्तयुग की तरह देव हर्ष के समय मे भी साम्राज्य भुक्ति, विषय और ग्राम म विभक्त था।

बासखेडा ताम्रपत्र लेख में अहिच्छत्र भुक्ति के अन्तर्गत अगदीय विषय के मर्कटसागर का तथा मधुबन लेख मे श्रावस्ती भुक्ति के अन्तर्गत कुण्डधानी विषय और कुण्डधानी के सोमकुण्डा ग्राम का उल्लेख है।

---

१ Epigraphia Indica Vol XV 142 f
२ Indian Antiquary Vol XXXIX, 1910, p 195 and J R A S 191‥, p 710 ff and select Inscriptions, p 351 fn 1
३ The Age of the Imperial Guptas, Banerji p 86
४ Ibid p 79
५ Ibid डी० सी० सरकार के अनुसार शिल्पियो के निगम (corporation) का मुखिया—(select Inscriptions, p 284 fn 6
६ Ibid,

मन्त्री-परिषद्—परमभट्टारक हर्ष 'परमेश्वर' विरुद से विश्रुत थे, लेकिन इस का अर्थ यह नहीं था कि शासन में वे स्वेच्छा से काम करते थे।

कौटिल्य ने उत्तम राजा उसे बतलाया है जो इन्द्रिय-जयी हो, प्रज्ञावान् वृद्ध पुरुषों का संग करने वाला हो, उत्थान (कार्यतत्परता) द्वारा प्रजा का योग-क्षेम साधने वाला हो, प्रजा को अनुशासन द्वारा स्वधर्म में स्थित रखने वाला हो, विद्या के उपदेश से प्रजा को विनयी बनाने वाला हो, प्रजा को समृद्ध कर लोक-प्रियता प्राप्त करने वाला हो, और हित की वृत्ति अथवा न्याय से अपनी वृत्ति चलाने तथा कुपथ में जाने से रोकने और प्रमाद में न पड़ने देने वाले आचार्यों एवं अमात्यों से संचालित होने वाला हो। इस तरह आचरण करने वाला राजा कौटिल्य के शब्दों में 'राजर्षि' है।[१]

हर्षचरित, अभिलेखों व ह्वेनसांग द्वारा देवहर्ष के शासकीय रूप का जो चित्र उपस्थित किया गया है उससे प्रकट है कि सम्राट् हर्षदेव,[२] कौटिल्य-निरूपित राजर्षि के गुणानुरूप एक प्रबुद्ध शासक और 'महानृपति' थे।

हर्ष के राजर्षि रूप का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि वे धन के प्रति निःस्नेह थे, दोषों (व्यसनों) के लिये अनाश्रयी थे, इन्द्रियों को निगृहीत (वश में) रखने वाले थे, व्यसनों के प्रति नीरस थे, दृढ़ मन (दुर्ग्रह चित्तवृत्ति) के थे, सरस्वती के अनन्य भक्त थे, जिस कारण सरस्वती उन्हें स्वीपर (स्त्रैण) समझती थी, ब्राह्मण उन्हें अपना कर्मकर (भृत्य) समझते थे और शत्रु समझते थे कि इन (हर्ष) के बहुत सहायक हैं (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२९-३०)।

आगे बाण ने हर्ष के चरित्र का आलेखन करते हुये कहा है कि देवहर्ष भीष्म से भी बढ़कर जितेन्द्रिय थे, कर्ण से अधिक मित्रों के प्रिय थे, युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक क्षमावान् थे, कृतयुग (जिस युग में प्रजा पूर्ण सुख का लाभ

---

१ इन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां,—उत्थानेन योग क्षेमसाधनं, कार्यानुशासने स्वधर्मस्थापनं, विनय विद्योपदेशेन, लोकप्रियं अर्थसंयोगेन, हितेन वृत्तिम्—(१ अधिकरण ७ अध्याय)।

२ आदित्यसेन के अफसड़ पाषाणलेख में सम्राट् हर्षवर्धन का 'हर्षदेव' नाम से उल्लेख है। हर्षचरित में सामान्यतः देव हर्ष नाम से उल्लेख हुआ है। डा० फ्लीट ने इंगित किया है कि हर्षचरित के कश्मीरी सम्करण में भी 'हर्षदेव' नाम मिलता है। विक्रमादित्य पंचम के कौथेम दानपत्र में सम्राट् हर्ष को 'हर्षमहानृपति' कहा गया है—C I I Vol III, p 207 fn 3

करती थी) के कारण थे, विद्वानो की सृष्टि के बीज थे (बीजमिव विबुधसर्गस्य) करुणा के आगार थे, सरस्वती की सर्वविद्याओ के सगीतगृह जैसे थे, लक्ष्मी (समृद्धि) के उदयस्थान थे, मर्यादा के एकस्थान थे (एकस्थानमिव स्थितीनाम्), धर्म का आवर्तन (प्रचार) करने वाले (आवर्तनमिव धर्मस्य) थे, कलाओ के अत -पुर (कन्यान्त पुरमिव कलानाम्) थे आदि (द्वितीय उच्छ्‌वास पृ० १३०-१३१)।

राजर्षि के इन प्रगल्भ और प्रभूत गुणो के कारण ही बाण ने हर्ष को अविसवादी (समभाव से व्यवहार करने वाला) राजर्षि—'अविसवादिन राजर्षिम्' घोषित किया है।

देवहर्ष के सुचरित और मनोहर व्यक्तित्व की ह्वेनसाग ने भी प्रशसा के साथ चर्चा की है। अत बाण की प्रशसा को हम हर्ष के राजकवि की अतिरजित प्रशस्ति मात्र कह कर अग्राह्य नही कह सकते। बाण के चित्रण में यथेष्ठ यथार्थता विद्यमान् है।

ह्वेनसाग ने हर्ष के शासन को न्यायपूर्ण और हर्ष को अपने कर्त्तव्यो के प्रति सजगता अथवा नियमितता बरतने वाला कहा है, जो राज्य के कार्यानुशासन एव लोक के योग-क्षेम साधनार्थ खाना-सोना भी बिसर जाता था। हर्ष की गुणग्राहकता की प्रशसा मे चीनी यात्री ने लिखा है, वह सुचरित के उत्थान के लिये प्रयत्नशील सामन्ता (राजाओ) और राजनीतिज्ञो को अपना सुहृद मानता था। जनता से सम्पर्क रखने के लिये वह निरन्तर दौरा किया करता था। राजकार्य करने मे वह थकता न था (Watters Vol I, pp 343-344)।

हर्ष के सुशासन की प्रशसा करते हुये चीनी यात्री ने स्पष्ट घोषित किया है कि चूँकि शासन न्यायसमता पर आधारित था और जनता में पारस्परिक सौहार्द था, इसलिए अपराधी वर्ग अल्प रह गया था।[१]

परिषद्—हर्षचरित, हर्ष के अभिलेख और ह्वेनसाग के यात्राविवरण मे मन्त्री-परिषद् का यद्यपि स्पष्टतया उल्लेख नही हुआ है, लेकिन कौटिल्य के इस निर्देशनका कि उत्तम राजा (राजर्षि) को आचार्यों और अमात्यो (मन्त्रियों) को, जो उसे प्रमाद और खतरो में पड़ने से रोकें, नियुक्त कर उन की मर्यादा पर ध्यान

---

१ "As the Government is honestly administered and the people live together on good terms the criminal class is small" (Watters Vol I, p 171)

रखना चाहिये अथवा उनका आदर करना चाहिये हर्ष और उन के पूर्वज निष्ठा के साथ अनुगमन और पालन करते रहे, इस का हमें हर्षचरित और चीनी यात्रों के विवरण में प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध है। प्राप्त प्रमाण इस तक के साक्षी हैं कि पुष्यभूति राजा राज्य को एकतन्त्रीय (चक्रैक) नहीं, सहायसाध्य मानते थे और सचिवों (मन्त्रिगा) की मन्त्रणा को श्रवण कर उन के सदुपरामर्शानुसार कार्य करते थे।[१]

हर्षचरित में बाण ने पुष्यभूति अथवा वर्धनवंश के आदिपुरुष महाराज पुष्यभूति के लिये गुप्तमन्त्रणा में सुमन्त्र (अथवा अच्छी सलाह देने वाला), और सभा में विदग्ध बुद्धिमान (बुध सदसि) कहा है (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६९ और Hc C & T, p 84)। इन उल्लेखों से प्रकट है कि राजा की अपनी मन्त्री-सभा अथवा मन्त्री-परिषद् थी जिसमें राज्य की गूढ समस्याओं पर कार्य आरम्भ करने से पूर्व जैसा कि कौटिल्य ने निर्देश दिया है, गुप्त मन्त्रणायें हुआ करती थी।[२]

बाण ने राजधानी के बाहर विशाल सभाभवन बने (जहाँ सभासद लोग बैठते थे—

'समज्या परिषद्गोष्ठीसभासमितिसंसद '—भाष्यकार, होने का उल्लेख किया है (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०५)।

महाराज प्रभाकरवर्धन के प्रसंग में हर्षचरित में उल्लेख है कि गम्भीर नाम का विद्वान ब्राह्मण-आचार्य राजा का प्रणयी (प्रिय) था—

---

१ सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम्॥१॥ (अधिकरण १ अध्याय ७)।

२ मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः। तदुद्देशः संवृतः कथानामनिस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात्—(अधिकरण १ अध्याय १५)।

"All kinds of administrative measures are preceded by deliberations in a Well-framed council The subject-matter of a council shall entirely be secret, and deliberations in it shall be so carried that even the birds cannot see them" (Kautilya Arthashastra, R Sham shastri Bk I chap. XV)

मनु का भी निर्देश है—राजा मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करे—
'मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभि '—(मनुस्मृति, सप्तम अध्याय श्लोक १४६)।

गम्भीरनामा नृपते प्रणयी विद्वान्द्विजन्मा—(चतुर्थ उच्छ्‌वास, पृ० २५०)।

प्रकट है कि आचार्य गम्भीर राजा को सुमत्र देने वाले प्रणयी (अर्थात् जिनकी मत्रणा राजा को प्रिय थी) थे। तथा उनकी कीर्ति (लक्ष्मी) उनके समीप रहने वाले मत्री-रूप रत्नो में प्रतिबिम्बित होती थी—

> यस्य चामात्येषु भृत्यरत्नेषु प्रतिबिम्बितेव तुल्यरूपा समलक्ष्यत लक्ष्मी (वही पृ० २०४)।

अमात्यो की मत्रणा व सलाह को प्रभाकरवधन कितना महत्व देते थे, वह इस वृत से भी प्रकट है कि राज्यवर्धन को जब राजा ने हूणो के विरुद्ध यान पर भेजा तो अपरिमित बल (सेना) और अनुरक्त सामतो के साथ-साथ राज्य के पुराने (वृद्ध) मत्री (अमात्य) भी कुमार के सहायतार्थ (सुमत्रणा देने के लिये) साथ कर दिये गये थे—

> अपरिमितबलानुयात चिरतनैरमात्यै रनुरक्तैश्च महासामन्तै कृत्वा साभिसर-मुत्तरापथ प्राहिणोत् (पचम उच्छ्‌वास, पृ० २५७)।

महाराज प्रभचक्रवर्धन की मृत्यु पर राज्यवर्धन जब शोकाकुल थे, तो उन्हें प्रधानसामतो, जिनके वचनो का अतिक्रमण नही किया जा सकता (टाला नही जा सकता) था, ने ही समझा-बुझा कर धीरज धराया और किसी प्रकार भोजन करने को राजी किया था—

> अतिक्रमणीयवचनैरपमृत्य प्रधानसामन्तैर्विज्ञाप्यमान कथ कथमप्यभुक्त—(षष्ठ उच्छ्‌वास, पृ० ३१४)।

हर्ष के अभिलेखो से विदित है कि महासामत स्कन्दगुप्त राज्य के हस्ति-सेना के नायक (गजसाधनाधिकृत) और मत्रणा देने वाला महाप्रमातार भी था। हर्षचरित में उल्लेख है कि सम्राट हर्ष ने जब स्कन्दगुप्त को गौड के विरुद्ध सेना तैयार करने का आदेश दिया था, उस अवसर पर स्कन्दगुप्त ने आज्ञा को शिरोधार्य करते हुये सम्राट से निवेदन किया था कि स्वामी के प्रति भक्ति के कारण वह थोडा निवेदन भी करना चाहता है, देव उसे सुनें (स्वल्प विज्ञाप्यमस्ति भर्तृ-भक्ते । तदा कणयतु देव —षष्ठ उच्छ्‌वास पृ० ३५०), और हर्ष ने अपने सेनापति मत्री की बात ध्यान से सुनी थी, और तब राज्य की सारी स्थिति को व्यवस्थित करने के बाद ही अभियान के लिये प्रयाण किया था—

> देवोऽपि हर्ष सकलराज्यस्थितीश्चकार—(वही, पृ० ३५५)।

राज्यवर्धन के गौडाधिप द्वारा मारे जाने पर शोकविह्वल हर्ष को उनके

पिता के मित्र वृद्ध सेनापति सिंहनाद (पितुरपि मित्र सेनापति —षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३३) ने धीरज बँधा कर उन्हें राजधर्म के प्रति प्रेरित कर, आश्रयहीन हुई प्रजा को आश्वस्त करने के लिये राजपद ग्रहण करने पर जोर दिया था, और हर्ष ने मन्त्रणा की मर्यादा को अंगीकृत करते हुये उनकी सलाह को करणीय और मान्य स्वीकार किया था—

करणीयमेवेदमभिहित मान्येन (वही, पृ० ३४२)।

ह्वेनसाग के विवरण से भी प्रकट है कि कन्नौज का रिक्त मौखरी-सिंहासन हर्ष ने राज्य के मंत्रियों की सलाह पर ही ग्रहण किया था— ' the ministers of state pressed Harshavardhana to succeed his brother'—Watters Vol I p 343)

ये सब वृत्त इस बात को स्पष्टतया लक्षित करते हैं कि पुष्यभूति-शासन में राज्य के कार्यों के संचालन में मन्त्रियों की, कौटिल्य व मनु आदि स्मृतिकारों के निर्देशानुरूप पूरी तरह मर्यादा थी, और महाराज हर्ष मन्त्रियों अथवा मन्त्री-परिषद् की मन्त्रणा को यथोचित सम्मान के साथ श्रवण और ग्रहण कर उसका अनुकरण भी करते थे।

दण्डव्यवस्था—चीनी यात्री ह्वेनसांग[१] ने हर्ष की दण्डव्यवस्था के स्वरूप पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि यद्यपि अपराधी वर्ग अल्प

---

१ "The statute law is sometimes violated and plots made against the sovereign, when the crime is brought to light the offender is imprisoned for life, he does not suffer any corporal punishment, but alive and dead he is not treated as a member of community (as a man) For offences against social morality, and disloyal and unfilial conduct, the punishment is to cut off the nose, or an ear, or a hand, or a foot, or to banish the offender to another country or into the wilderness Other offences can be atoned for by a money payment"—(Watters Vol I pp 171–72)

ह्वेनसाग के उल्लेख 'disloyal and unfilial conduct' का अर्थ डा० त्रिपाठी ने 'अविश्वसनीय आचरण और व्यभिचार' किया है (प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २२९)। परन्तु वि० स्मिथ ने 'disloyal and

था, लेकिन कभी-कभी नियमों अथवा कानून का उल्लंघन कर लोग राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र भी रच डालते थे। ऐसे अपराधियों को पकड़े जाने पर जीवन कैद की सजा दी जाती थी और समाज से उन्हें बहिष्कृत कर दिया जाता था, अर्थात् उन्हें जाति का सदस्य नहीं माना जाता था।

किन्तु अनैतिक अपराधों, और माता पिता के प्रति अभक्ति और असद् व्यवहार करने वाले अपराधियों के नाक या कान या हाथ या पैर काट लिये जाते थे, या अपराधी को देश से बाहर कर दिया जाता या जंगल में छोड़ दिया जाता था।

अन्य अपराधों (सामान्य अपराधों) के लिए अर्थदण्ड था।

ह्वेनसाग के विवरण से प्रकट है कि हर्ष के समय में यद्यपि अपराध होते थे, लेकिन अपराधी वर्ग अल्प संख्या में था[१] और जनता में पारस्परिक व्यवहार

---

unfilial' का अर्थ माता पिता के प्रति असद् आचरण लिया है'—mutilation of the nose, ears, hands, or feet being inflicted as the penalty of serious offences, and even for failure in filial piety"—(Early History of India, 3rd ed p 342)

अशोक के शिलालेखों में 'मातपितिसु सुसुसा' (माता-पित्रो शुश्रुषा—तीसरा शिलालेख, काल्सी) पर बहुत जोर दिया गया है तथा—

'दमभटकस सम्मपटिपति मातपितिपु सुश्रुष मित्र सस्तुतञतिकन श्रमण-ब्रमणन दन प्रणन अनरभो'—

अर्थात दास और भृत्या के प्रति शिष्टव्यवहार, माता-पिता की सेवा, परिचित, जाति और ब्राह्मण-श्रमण को दान, ये सब कर्म साधु हैं, ये सब कर्त्तव्य हैं—इम सधु, इम कटवो (इद साधु, इद कर्त्तव्यम) ऐसा आचरण 'अनन्त पुण्य प्रसवति'—अनन्त पुण्यों को देने वाला कहा गया है (११वां शिलालेख, शहबाजगढ़ी)।

अतः ह्वेनसाग के कथनानुसार हर्ष ने भी माता-पिता की सेवा न करने वालों को असद्आचरण का अपराधी मानकर उन्हें दण्डनीय करार दिया था।

१ ह्वेनसाग को स्वयं भारतयात्रा के दौरान चोर-डाकुओं से भय उत्पन्न हुआ था। अयोध्या के तीर्थस्थानों का पर्यटन करके ह्वेनसाग जब नौका द्वारा गंगा के जलमार्ग से कौशाम्बी अन्य साथियों के साथ हयमुख की ओर जा रहा था तो मार्ग में डाकुओं की दस नौकाओं ने उनके (ह्वेनसाग आदि) पोत को घेर लिया था और उसे तट पर खींच ले आये थे। डाकुओं ने

सौहार्द का था। अपराधी वर्ग की अल्पता और जनता में आपसी सौहार्द अथवा पारस्परिक मेल-जोल की भावना इस बात का मानव उपस्थित करती हैं कि देव-हर्ष के सुशासन में प्रजा सुशासित और दण्ड सुव्यवस्थित था। श्रीहर्ष के सुशासन-जनित स्थिति का चित्रण करते हुये बाण ने लिखा है कि 'उनके शासन में छन्दों के चरणों में ही भाग और विराम आदि छेद होते हैं, न कि किसी चार अथवा विशेष

देवी-दुर्गा को ह्वेनसांग की बलि चढ़ाने की तैयारियाँ भी करली थी लेकिन तभी प्रकृति के कोप से ऐसा भीषण तूफान उठा कि डाकू भयभीत हो उठे और उन्होंने महान् चीनी भक्त से अपने अपराधों के लिये क्षमा की याचना की। ह्वेनसांग की मानुता और धार्मिकता से डाकू ऐसे प्रभावित हुये कि भविष्य में चौरकर्म न करने का वचन देकर वे डाकाजनी से विरत हो बौद्धधर्म के सामान्य उपासक बन गये (Life pp 86-89)।

इसी प्रकार शाकल के पर्यटन के दौरान भी ह्वेनसांग और उसके साथी श्रमणों को डाकुओं के कारण विपत्ति उठानी पड़ी थी। शाकल से ह्वेनसांग का दल जब टक्का (वर्तमान लाहौर) की ओर जा रहा था तो मार्ग में पलाश के एक सघन जंगल में पचास दस्युओं ने उन्हें घेर कर लूट लिया और उनकी बलि चढ़ाने की भी तैयारियां करने लगे। किसी प्रकार दस्युओं की आंख बचा कर ह्वेनसांग और उसके साथी भाग कर निकट के गांव में एक ब्राह्मण कृषक के यहाँ आ पहुँचे और उस ग्राम के लोगों ने पलाश वन के डाकुओं पर हमला कर उन्हें खदेड़ दिया और जिन लोगों को उन्होंने बन्दी बना रखा था, उन्हें भी छुड़ा लिया गया (Life pp 73-79)।

ह्वेनसांग के साथ घटित दस्युओं वाली घटनाओं से कतिपय विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि श्रीहर्ष के समय मार्ग असुरक्षित हो चले थे, और हिंसक अपराध बढ़ती पर थे। किन्तु जनपद की इन छिटपुट घटनाओं से यह निष्कर्ष निकालना कि सामान्य जन में हिंसा और अपराधवृत्ति का प्राबल्य था, चीनी यात्री के साक्ष्य को अमान्य करना होगा। इस सन्दर्भ में ह्वेनसांग का यह कथन स्मरण रखना चाहिये कि अपराधी वर्ग था लेकिन अल्प संख्या में और सामान्य जन का आपसी व्यवहार सौहार्द से पूर्ण था।

डाकुओं की उपरोक्त घटनाओं पर मत व्यक्त करते हुये प्रोफेसर मुकर्जी का कथन बहुत सही है कि—"These stray cases of violence were not however indicative of the normal spirit of the people at large"—(Harsha p 108)

अपराध के कारण पाद (पैर) छेदे जाते है (वृत्ताना पादच्छेदा), शतरज के खेल मे ही चार अग (हस्ति, अश्व, रथ, पैदल) की कल्पना है, न कि अपराधी के दोना हाथ और दोनो पैर काटे जाते हैं (अष्टापदाना चतुरङ्गकल्पना), सर्प ही द्विजगुरु (गरुड) से द्वेष रखते हैं न कि प्रजाजन द्विज (ब्राह्मण) और गुरु (आचार्य) से वैर रखते हैं (पन्नगाना द्विजगुरुद्वेषा) तथा मीमामक ही विभिन्न अधिकरणो (प्रकरणो) पर विचार करते है न कि दीवानी और फौजदारी के मामलो पर विचार के लिये अदालतें (अधिकरण) लगती हैं—(वाक्यविदामधिकरणविचारा — द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३३) । इस सन्दर्भ में अन्यत्र वाण ने पुन घोषित किया हैं कि श्रीहर्ष के राज्य मे कोई विवाद करने वाला विद्रोही नही था, इसलिए राज्य के करण (अधिकरण = अदालतें) केवल विद्यापरीक्षा और धर्मनिर्णय (धर्मचर्चा) के लिये प्रसिद्ध थे और हर्षदेव का वशानुगत राज्य महाराज भरत (दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र) के मार्ग का अनुसरण करने से गुरु अथवा महनीय था—(वशानुगमविवादि स्फुटकरण भरतमार्गभजनगुरु—(तृतीय उच्छ्वास, पृ० १४७) । एक शब्द मे श्रीहर्ष—'न्याये तिष्ठन्तम्'—न्याय पर स्थित थे (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२१) और उनके दृढ शासन मे कोई ऐसा नि शक (निडर) न था जो सम्राट के दण्डभय से अविनय, जो सब व्यसनो का मूल है, को मन मे भी कल्पित करने का साहस कर सकता हो (वही, पृ० १३६) ।[१]

दिव्यपरीक्षा (ordeal)—ह्वेनसाग ने दिव्यपरीक्षा का उल्लेख करते हुए कहा है कि अपराधियो को अपराधी व निरपराधी प्रमाणित करने के लिए जल, अग्नि, भारोत्तोलन और विष का प्रयोग किया जाता था ।

जल की दिव्यपरीक्षा के लिये अपराधी को एक बोरे मे रखा जाता था और दूसरे बोरे में पत्थर, और तब दोनो को साथ बाध कर अपराधी को नदी के बीच में छोड दिया जाता था । यदि पत्थर वाला बोरा तिरता रहता और दूसरा डूब जाता तो अपराध साबित हुआ समझा जाता था ।

अग्नि की दिव्यपरीक्षा में अपराधी को घुटने पर झुक कर तप्त लोहे पर चलना व तप्त लोहे को हाथ में उठा कर चाटना होता था । यदि अपराधी को (तप्त लोहे से) घाव न पहुँचता तो वह निरपराध समझा जाता और यदि वह जल जाता तो अपराधी माना जाता था ।

---

१ Who would venture without fear to act in his own mind the character of indecorum, that bosom friend of open profligacy ?—(Hc C & T, p 66)

भारोत्तोलन की परीक्षा में अपराधी को पत्थर के साथ तोला जाता था। यदि पत्थर भार में कम निकलता तो अपराधी अदोष माना जाता था अन्यथा अपराध प्रमाणित समझा जाता था।

विष परीक्षा में भेड़ (मेष) का पिछला दाया पैर काटकर जो हिस्सा अपराधी को खाने को दिया जाता उस में विष मिला दिया जाता था। उसके खाने से अपराधी यदि मरता नहीं था तो वह अपाप समझा जाता, अन्यथा उस पर विष चढ़ जाता था।[1]

मनु ने भी मुकद्दमें में साक्ष्य देने वाले के शपथ की शुचिता और अशुचिता (असत्यता) प्रमाणित करने के लिये अग्नि व जल से दिव्यपरीक्षा का विधान दिया है,[2] लेकिन भारोत्तोलन और विष के द्वारा दिव्यपरीक्षा का मनुस्मृति में उल्लेख नहीं है।

अल्बरूनी ने[3] भी ह्वेनसाग की भाति अपराधी की शुचिता, अशुचिता सिद्ध करने के हेतु दिव्य-परीक्षाओं का उल्लेख किया है।

हर्षचरित में दिव्यपरीक्षा का कोई उल्लेख नहीं है, अपितु बाण द्वारा श्रीहर्ष के शासन के स्वरूप का जो चित्र हम ऊपर उपस्थित कर चुके हैं उससे तो यही प्रतीत होता है कि देव हर्ष के शासन में दिव्य-परीक्षा का व्यवहार प्रचलन में नहीं था। सम्भव है ह्वेनसाग ने दिव्यपरीक्षा के सम्बन्ध में भारत के पण्डितों से जो सुना उसके आधार पर उसका उल्लेख मात्र कर दिया है, अथवा हो सकता है किसी अन्य राज्य विशेष में उसे इस प्रकार की दिव्य-परीक्षा का प्रचलन देखने को मिला हो, और उसी का उसने जिक्र कर दिया है।

ह्वेनसाग ने स्वय इस बात का साक्ष्य उपस्थित किया है कि सम्राट हर्ष का शासन सुव्यवस्थित और औदार्य-पूर्ण था। फिर देव हर्ष के शासन के अतगत

---

१ Watters Vol. I p 172

२ अग्नि वाहारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत्।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥ ११४ ॥
यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥—
मनुस्मृति, अष्ट अध्याय।

३ Alberuni Sachau, Vol II p. 159

दण्ड अथवा न्याय के व्यवहार में दिव्यपरीक्षा जैसी क्लेश और पीडा पहुँचाने वाली विधियो के अपनाये जाने की बात सगत कैसे मानी जा सकती है ?

प्रशासन, वेतन और पुरस्कार—देव हर्ष के प्रशासन की प्रशसा करते हुये ह्वेनसाग ने कहा है कि सरकार उदार थी, और प्रशासनिक आवश्यकतायें अल्प थी। प्रशासन की आवश्यकताओ की अल्पता के उल्लेख से प्रकट होता है कि जनता को व्यर्थ के प्रशासकीय आयोजनो व खर्चो से भारोन्वित नही किया जाता था और जनता को सुखी और समृद्ध बनाना अथवा परिपालन एव रक्षण ही राज्य का प्रथम और अन्तिम कर्त्तव्य था। जनता के प्रति शासन के उदार होने मे यही अभिप्रेत हो सकता है।

उदार शासन का उदाहरण उपस्थित करते हुये ह्वेनसाग ने कहा है कि कुटुम्बो को रजिस्टर में निबद्धित नही किया जाता था और व्यक्तियो से जबरदस्ती बेगार व भेंट नही ली जाती थी।

राजकीय भूमि की आय चार भागो मे विभाजित कर व्यय की जाती थी। एक अश प्रशासन और धार्मिक पूजा के व्यय पर, एक उच्च अधिकारियो को पुरस्कार-दान देने पर, एक अश मूर्धन्य पडितो को पुरस्कार देने पर, और एक अश पुण्य अर्जन के लिये विभिन्न धर्मों को दान देने में व्यय किया जाता था।

राज्य के समस्त कर्मचारियो को उनके कार्य व पदानुरूप वेतन दिया जाता था और मन्त्रियों व अधिकारियो को भूमि व नगर भी जागीर में प्रदान किये जाते थे।[1]

---

१ "As the government is generous official requirements are few Families are not registered, and individuals are not subject to forced labour contributions Of the royal land there is a four fold division one part is for the expenses of government and state worship, one for the endowment of great public servants, one to reward high intellectual eminence, and one for acquiring religious merit by gifts to the various sects

Those who are employed in the government services are paid according to their work Ministers of state and common officials all have their portion of land, and

राज्य की आय—राज्य की आय के मुख्य साधन भूमिकर और व्यापार शुल्क थे। ह्वेनसांग के विवरणानुसार कर हल्के थे। कृषक राज्य को भूमि के उत्पादन का छठवां हिस्सा भूमिकर के रूप में देते थे[1] और बेगार बहुत कम ली जाती थी, इसलिए प्रत्येक जन अपनी पैतृक वृत्ति और पैतृक सम्पत्ति का बहुत ध्यान रखते थे।

व्यापारियों से घाटों (नौका के ठहरने का स्थान) और सीमान्तों के शुल्क-स्थानों पर हल्का कर लिया जाता था। इस प्रकार व्यापारी बड़ी सुगमता पूर्वक अपने माल का विनिमय किया करते थे।[2]

ह्वेनसांग द्वारा हल्के करों के उल्लेख से प्रकट है कि राज्य की अर्थनीति प्रजा को समृद्ध करने की थी, प्रजा का शोषण करने की नहीं। निश्चयेन हर्ष की प्रजा से अर्थ-ग्रहण की नीति प्राचीन भारतीय राजतन्त्र के उन सिद्धान्तों पर आधारित थी, जिनका निर्देशन हमें मनुस्मृति और शान्तिपर्व आदि में मिलता है।

मनुस्मृति में निर्देश है कि जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और भौंरे थोड़ा-थोड़ा कर अपना खाद्य ग्रहण करते हैं उसी प्रकार राजा को प्रजा से अल्पाल्प (थोड़ा-थोड़ा) वार्षिक कर ग्रहण करना चाहिए—

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥१२९॥
(मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)

---

are maintained by the cities assigned to them"—(Watters Vol I p 176-77 and Records Beal, Vol I p 213)

१ कौटिल्य ने भी कृषकों से भूमिकर की सामान्य दर उपज का षड्भाग दिया है—अधिकरण २ अध्याय १५।

मनु ने भूमि की श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता (अर्थात् अधिक और कम उर्वरता) के आधार पर भूमिकर के रूप में उपज का आठवां, छठवां या बारहवां भाग लेने का निर्देश दिया है—

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा—॥१३०॥
(मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)

२ "Tradesmen go to and fro bartering their merchandize after paying light duties at ferries and barrier stations"—(Watters Vol I, p 176)

शान्तिपर्व में युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश देते हुए भीष्म ने कहा है कि राजा के अतिखादी (बहुत खाने वाले) होने से सब उससे द्वेष करते हैं (अपनी अर्थलोलुप्ता के कारण ही नन्दराजा लोक में अप्रिय हो गये थे), जिस कारण अप्रिय राजा किसी भी प्रकार फललाभ करने में सफल नहीं होता। इसलिए जैसे लोग बछडे को भूखा न रख कर गौ दुहते हैं, उसी तरह राजा राष्ट्र को दुहे। जैसे अधिक दुहने पर बछडा कर्म करने में समर्थ नहीं रहता उसी प्रकार प्रजा का अत्यन्त दोहन किये जाने से राष्ट्र महत् कर्म (बडे कार्य) योग्य नहीं रह जाता।[1]

हर्ष के अभिलेखों में ग्रामों से लिए जाने वाले कतिपय करों उद्रग, पिण्ड, तुल्यमेय, भाग-भोग कर, हिरण्य, प्रत्याय आदि का उल्लेख है —

उद्रग —डा० बुलर (Dr Buller) ने इंगित किया है कि शाश्वतकोष में उद्रग को उद्धार और उद्ग्रन्थ (उत्ग्रन्थ) या उदग्राह कहा गया है।[2] डा० फ्लीट के अनुसार ग्रामवासियों से उपज का जो भाग राजा लेता था उसे उद्रग कहते थे। यह कर पैतृक अधिकार वाले स्थिर कृषकों से लिया जाता था। जिन कृषकों का भूमि पर स्थिर अधिकार नहीं होता था उनसे लिए जाने वाले भूमि-कर को 'उपरिकर' कहते थे।[3] महाराज हस्तिवमन के खोह ताम्रपत्रों (गुप्त-संवत १५६ ई०=सन् ४७६ और गुप्तसंवत् १९१ = ई० सन् ४११) तथा महाराज सर्व्वनाथ के खोह ताम्रपत्र (गुप्तसंवत् १९३ = ई० सन् ५१२-५१३) लेख तथा जीवितगुप्त द्वितीय के देवबरनाक अभिलेख में उद्रग व उपरिकर तथा हूण के समकालीन पंजाब जनपद के महासामंत महाराज समुद्रसेन (काल ई० सन्-

---

१ ईहाद्वाराणि सम्प्य राजा सम्प्रतिदर्शन ।
प्रद्विषन्ति परिख्यातं राजानमतिखादिनम् ॥१९॥
प्रद्विष्टस्य कुत श्रेयो नाप्रियो लभते फलम् ।
वत्सौपम्येन दोग्धव्य राष्ट्रमक्षीणबुद्धिना ॥२०॥
भृतो वत्सो जातबल पीडा सहति भारत ।
न कर्म कुरुते वत्सो भृश दुग्धो युधिष्ठिर ॥२१॥—(शान्तिपर्व, अध्याय ८७)

२ Indian Antiquary, Vol XII p 89 fn 39

३ "Udrang—'The share of the produce collected usually for the king' Uparikar—'a tax levied on cultivators who have no proprietary rights'—C I I Vol III, p 97 fn 6 & p 98 fn 1

६१२-६१३) के निर्मण्ड (कांगड़ा जनपद के कुल्लू तहसील का एक गाँव) ताम्रपत्र लेख में उद्रंग कर का उल्लेख है।[१]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'उत्संग कर' का उल्लेख है जो राजकुल में पुत्रजन्म पर लिया जाता था।[२] सम्भवतया उत्संग, उपरिकर का ही रूप था जो जन्मोत्सव आदि अवसरों पर अपर अथवा अतिरिक्त कर के रूप में लिया जाता था।

पिण्ड—सम्पूर्ण ग्रामवासियों से नियत रूप में जो वस्तुयें कर स्वरूप प्राप्त होती थी उसे अर्थशास्त्र में 'पिण्डकर' कहा गया है।[३]

तुल्यमेव—यथासमुचित, अर्थ स्पष्ट नहीं है। अर्थशास्त्र में 'तुलामानान्तर-कर' का उल्लेख है। कम तौल वाले नाप (बटखरे) से धान्य तौलने पर जो यथोचित मुआवजा लिया जाता था उसे तुलामान्तर कहते थे।[४] प्रतीत होता है कि यथासमुचित तुल्यमेव से तुलामान्तर ही अभिप्रेत है।

भाग भोग—इसका शाब्दिक अर्थ राजकर के भाग का भोग है।[५] उपज का जो अंश राजा को मिलता था उसे भाग और समय-समय पर फल-फूल दूध आदि जो ग्रामवासी राजा को प्रदान करते थे उसे भोग कहा जाता था।[६]

मनुस्मृति[७] में राजा को ग्रामवासियों से अन्न, ईन्धन आदि तथा वृक्ष, मांस, शहद, घी, गन्ध, औषधि, रस (नमक आदि) फूल, मूल, फल पत्ता, शाक,

---

१ Gupta Inscriptions, Nos —21, 23, 28, 46, & 80 C I I Vol III

२ अधिकरण २ अध्याय १५।

३ वही। The taxes that are fixed (=Pindakara)—Kau. Arth Shamshastri, Bk II Chap XV

४ "That amount or quantity of compensation which is claimed for making use of a different balance"—Kau Arth Shamshastri, Bk II chap XV

५ C I I Vol III p 120, fn 1

६ Select Inscriptions, p 372 fn. 7

७ यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥
आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३१॥

घास, चमड़ा, बांस तथा मिट्टी और पत्थर के बने बर्त्तनों के षडभाग को कर रूप में ग्रहण करने का अधिकारी कहा है।

हर्षचरित में बाण ने ग्रामवासियों द्वारा सम्राट हर्ष को, दधि (दही), गुड़, खांड, फूलों से सजी-भरी टोकरियां लाकर प्रदान किये जाने का वर्णन किया है (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७७–७८)।

कर—वह राजस्व (कर) जो धान्य के अतिरिक्त दिया जाता था, कर कहलाता था।[1]

हिरण्य—कुछ फसलों पर जो नकद कर लिया जाता था।[2]

प्रत्याय—मालगुजारी (revenue)।[3]

भूमिच्छिद्र—बांसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्रों में जो ग्राम हर्ष ने दान दिए थे उन्हें 'भूमिच्छिद्र न्यायेन' (न्याय से) दिया गया कहा गया है।

भूमिच्छिद्र का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। भूमिच्छिद्र का अर्थ है—कृषियोग्य भूमि।[4] अतः न्यायपूर्वक वही ग्राम दान में दिए गए जिनकी भूमि कृषि योग्य थी। अर्थात् उर्वर—बंजर जमीन वाली नहीं।

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।
मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च॥१३२॥(मनुस्मृति, अध्याय सप्तम)।

१ Select Inscriptions p 372 fn 7

२ Ibid मनुस्मृति में सोने पर जो पचासवां भाग कर रूप में लिया जाता था उसे भी हिरण्य कहा गया है—(सप्तम अध्याय, श्लोक १३०)।'

३ Select Inscriptions, p 372, fn 7

४ डा० बुलर ने यादवप्रकाश के वैजयन्ति के वैश्याध्याय के १८वें श्लोक के अनुसार भूमिच्छिद्र का अर्थ कृषियोग्य भूमि इंगित किया है—C I I Vol III p 138 fn 2

सम्राट हर्ष के अभिलेखों के भूमिच्छिद्रन्याय का पूरा अर्थ और भाव कौटिल्य अर्थशास्त्र में उल्लेखित 'भूमिच्छिद्रविधान प्रकरण' में दिये भूमि निर्वचन से समझा जा सकता है।

भूमिच्छिद्रविधान से तात्पर्य बंजर भूमि को काश्त कर कृषियोग्य बनाना है। इस विधान के अनुसार कौटिल्य का निर्देश है कि जो कृषि के अयोग्य भूमि हो उसे राजा को पशुओं के गोचारण क्षेत्र (चरने का स्थान, चारागाह) के लिए, ऐसी ही अकृष्य (कृषि के अनुपयुक्त) भूमि ब्राह्मणों

उपरोक्त करों के अतिरिक्त पौरा (पुरवासियों), राज्य के कर्मचारियों, मन्त्रियों तथा सामन्त राजाओं और विजित राज्यों से प्राप्त होने वाले भेंट-उपहार व कर आदि भी राज्य की आय के प्रमुख साधनों में से थे।

हर्षचरित में उल्लेख है कि महाराज पुष्पभूति को पौरजन, पादोपजीवि (कर्मचारी), सचिव गण, और स्वभुजबल से पराजित करदीकृत (कर देने वाले) महासामन्त, भगवान-शिव की पूजार्थ समुचित उपहार भेंट किया करते थे (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १३१)।

देवभूप ने तुषार-शैलभू प्रदेश को विजित कर, कर ग्रहण किया था (वही, पृ० १५४)।

राज्यवर्धन द्वारा मालवराज के पराजित होने पर उनके राजकोष और राजकीय कोष व आभरण आदि पर अधिकार कर लिया गया था। और वह

के वेदाध्ययनार्थ ब्रह्मारण्य के लिये (सोम उगाने के लिये सोमारण्य), और तपस्वियों को तपस्यार्थ तपोवन के लिये देना चाहिये। इन अरण्यों (वनों) के वृक्ष और पशुओं को अभय दिया जाना चाहिए (अर्थात् वृक्ष काटे न जावें, पशु मारे न जाय) और इन अरण्यों का नाम वहां निवास करने वाले ब्राह्मणों के गोत्र के नाम पर रखा जाना चाहिये। अपने विहार (शिकार) के लिए राजा मृगवन भी अकृष्य भूमि में बनावे, जिसका विस्तार एक गोरुत अर्थात् चार कोस का होना चाहिये। मृगवन में प्रवेश के लिये एक ही द्वार होना चाहिये। चारों ओर से मृगवन खाई से सुरक्षित अथवा घिरा होना चाहिए। उनमें स्वादिष्ट फलों के वृक्ष, सुन्दर झाड़ियाँ और पुष्पों के गुल्म लगे होने चाहियें। कण्टक द्रुमों अथवा कटीले वृक्षों से मृगवन मुक्त रहना चाहिए। उन में जलाशय होना चाहिए। उसमें रहने वाले पशु अहिंस्र होने चाहियें। हिंस्र पशुओं के नख और दांत भग्न कर दिए जाने चाहियें और हस्ति व हस्तिनी तथा उनके बच्चे विहार के लिए वहाँ विद्यमान रहने चाहियें। अधिकरण २ अध्याय २—Kautilya Arthashastra, Shamsbastri Bk II chap II)

इस 'विधान' को ध्यान में रखते हुये सम्राट हर्ष के दानपत्र में भूमि के 'भूमिच्छिद्रन्याय' से यही प्रतीत होता है कि कृषि योग्य भूमि के अतिरिक्त दान प्राप्त करता ब्राह्मणों को, गोचर, ब्राह्मारण्य आदि बनाने के लिए ग्राम की सीमान्तर्गत कुछ अकृष्य भूमि भी प्रदान कर दी जाती थी।

समस्त धनवैभव भण्डि ने अभियान से लौटने पर हर्ष को अर्पित किया था (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०५-०६)।

इसीलिए प्रभाकरवर्धन के सन्दर्भ मे बाण ने लिखा है कि शत्रु (राजा) का दर्शन वह निधि का दर्शन मानता था, तथा शस्त्र-प्रहार से शत्रु के गिरने अथवा मारे जाने पर वह धन की वृष्टि का आनन्द अनुभव करता था (अभिप्राय मारे गये शत्रु राजा के धन एव वैभव पर अधिकार करने के आनन्द से है)—

शत्रु निधिदर्शनम्, दिष्टवृद्धि शस्त्रप्रहारपतन—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०४-०५)।

मित्र सामत राजाओ से उपहार भी आय का बडा स्त्रोत था। सम्राट हर्ष से मैत्री के इच्छुक कामरूप के राजा भास्करवर्मन कुमार ने अपने राजदूत हसवेग द्वारा अनेकानेक प्रकार के बहुमूल्य और उपयोगी वस्तुयें उपहार में भेजी थी (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८६-३८८)।[1]

राजाओ से कर और उपहार के रूप में हाथी भी राज्य को प्राप्त होते थे। बाण ने लिखा है कि राजद्वार बडे-बडे हाथियो से श्यामायमान था। ये गिरियो (पर्वतो) के जैसे हाथी ऐसे मालूम पडते थे जैसे सागर को सेतुबन्ध करने के लिए जुटाये गए हो। ये हाथि कुछ कर में और कुछ उपहार मे प्राप्त हुए थे, और कुछ बलपूर्वक (शत्रु राज्यो से) छीन कर लाए गए थे (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ९९)। सेना का मुख्य अग होने से हस्तियो का सग्रह निश्चय ही आवश्यक था।

पिण्डकर, षड्भाग, कर, उत्सग, औपायनिक (उपहार में प्राप्त धन) आदि को 'अर्थशास्त्र' मे राष्ट्र (राष्ट्रम्) कहा गया है।

---

१ अर्थशास्त्र में अक्षपटल के अध्यक्ष को निर्देश दिया गया है कि वह मित्र और शत्रु राजाओ से सधि व युद्ध से प्राप्त होने वाले धन आदि को अक्षपटल (अधिकरण) की निबन्ध-पुस्तक में अकित करा दे (अधिकरण २ अध्याय ७)।

मनु के अनुसार विजेता राजा को शत्रु राजा से युद्ध व सधि करने पर युद्धयात्रा के फल के रूप में शत्रु राजा की मैत्री तथा उससे हिरण्य और भूमि (विजित राज्य का कुछ भाग) प्राप्त करना चाहिए—

सह वाऽपि व्रजेद्युक्त सधि कृत्वा प्रयत्नत ।
मित्र हिरण्य भूमि वा सपश्यस्त्रिविध फलम् ॥ २०६॥
(मनुस्मृति, सप्तम अध्याय)।

राष्ट्र के अंतर्गत कौटिल्य ने सेनाभक्त (सेना के पोषण-भरण के लिए) कर रूप में ली जाने वाली सामग्री), बलि (धर्म कार्यों के लिए) और सेतुबंध (राज्य की ओर से बनाए गए तड़ाग व झील आदि के पास की भूमि से लिया जाने वाला कर) आदि करों को भी गिनाया है।[1] अतः यह अनुमान करना असंगत न होगा कि राष्ट्र के अंतर्गत ये कर श्रीहर्ष के समय भी राज्य की समृद्धि और कोष की वृद्धि के हितार्थ लिए जाते रहे होंगे।

हर्षचरित में विवरण मिलता है कि महाराज प्रभाकरवर्धन द्वारा राज्यभर में पर्वतों, गर्तों, विटपों, तृणों, मिट्टी के टेरों, वाल्मीकों (दीमकों द्वारा बनाये मिट्टी के ढूहों), गिरि व गह्वरों को समतल कर, सेना के लिए बनाए गए अभियान-पथों से पृथिवी का विभाजित कर भृत्यों के उपयोग-योग्य बना दिया था।[2] निश्चय ही ये सब काम प्रजा से सेनाभक्त आदि करों को ले कर ही सम्पन्न किया गया होगा—और राज्य से सम्पादित इन कार्यों के फलस्वरूप से जनता खुशहाल और राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त हुआ होगा, यह प्रत्यक्षतः अनुमान किया जा सकता है।

पुष्यभूति सम्राटों के इन प्रयत्नों से राष्ट्र समृद्ध और जनता खुशहाल हो गयी थी, यह हर्षचरित और ह्वेनसाग द्वारा प्रस्तुत पुष्यभूतियों के जनपद निवासियों और राजनगरियों की स्थिति के विवरण से पुष्ट हो जाता है।

श्रीकण्ठ जनपद का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि वह पुण्यशाली लोगों के निवास का स्थान, वसुधा पर अवतरित स्वर्ग के समान था। वहां वर्णाश्रम मर्यादित था। वहाँ कृतयुग की जैसी व्यवस्था थी।

---

१ Kautilya Arthashastra, Shamshastri Bk II chap XV

२ यस्य च सर्वासु दिक्षु समीकृतवटावटविटपाटवीतरुगुल्मवल्मीकगिरिगह्वरैर्दण्डयात्रापथैः पृथुभिर्भृत्योपयोगाय व्यभज्यतेव वसुधा बहुधा—चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०८)।

"Levelling on every side hills and hollows, clumps and forests, trees and grass, thickets and anthills, mountains and caves, the broad paths of his armies seemed to portion out the earth for the support of his dependants"—(Hc C & T, p 101)

इस जनपद में चारो ओर पुण्ड्र (पौंडा गन्ना) के खेत फैले हुए थे। वहाँ सर्वत्र खलधानधामियों (खलपाल-खलिहान के रक्षक) द्वारा पर्वतों के समान धान की ढेरियों से सारा सीवान भरा हुआ रहता था। चारो ओर अरहट (Persian wheel) से सिंची जीरा की फसल से भूमि हरी भरी थी।

उर्वर शालिक्षेत्र (धान के खेत) लहलहाते थे। ऊपरी भूमि पर सब ओर गेहूँ के खेत फैले हुए थे और साथ में राजमाष और मूँग के खेत थे जो कोशिकाओ (फलियो) के पकने से पीले हो रहे थे।

जगल गायो से धवलित (सफेद) हो गया था, और भैंस पर बैठे ग्वाले उनकी रक्षा किया करते थे। जगल प्रदेश सहस्त्रो चिनित कृष्णसार मृगो से चित्रित था। तथा (श्रीकण्ठ) जनपद चन्द्ररश्मियों के जैसे अवदात चरित वाले गुणी पुरुषो से मुक्ता की तरह प्रसाधित[१] था—

> 'शशिकरावदातवृत्तैर्मुक्ताफलैरिव गुणिभि प्रसाधित'—(तृतीय उच्छ्वास पृ० १५९–१६२)।

राजनगरी स्थाण्वीश्वर—आगे राजनगरी स्थाण्वीश्वर का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि राजनगर उपवनो में खिलनेवाले अनेक प्रकार के मनोरम फूलो और उनकी सुगधि से सुभग (मनोहर) था। राजनगर धम का अन्त पुर जैसा था, तथा यज्ञो की सहस्त्र अग्नि-शिखाओ से समस्त दिशाओ को प्रदीप्त करता हुआ वह कृतयुग का सैन्यनिवेश (शिविर-सनिवेश) सदृश था—

> अन्त पुरनिवेश इव धमस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्त्रदीप्यमानदशदिगन्त शिविर सनिवेश इव कृतयुगस्य (वही, पृ० १६४)।

---

१ "Throughout it is adorned with rice crops extending beyond their fields, where the ground bristles with cumin beds watered by the pots of the Persian wheel Upon its lordly uplands are wheat crops varegated with Rajamasa patches ripe to bursting and yellow with the split bean pods Attended by singing herdsmen mounted on buffalos, roaming herds of cows make white its forests thousnads of spotted antelopes dot the districts

Good men, in conduct spotless as the moon's rays, adorn it like pearls—(Hc C & T pp 79–80 81)

नगर सुधारस (चूने) से सिक्त (पुते) धवल भवनों से ऐसा पूर्ण था मानो वह (पृथ्वी पर) चन्द्रलोक का प्रतिनिधि था—(सुधारससिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुर प्रतिबिम्बित चन्द्रलोकस्य)। वहां की मधु (मदिरा) से मत्तकामिनियों (मतवाली स्त्रियों) के भूषणों का रव भुवन को गुञ्जा देता था—जैसे कि वह (अर्थात् स्थाण्वीश्वर) कुबेर की नगरी (अलका) का ही बदला हुआ रूप हो[1]—

मधुमदमत्तकामिनीभूषणरवमुखरितभुवनो नामान्तरमिव कुबेर नगरस्य।

स्थाण्वीश्वर सब प्रकार के लोगों और धर्मों, शस्त्रों, शास्त्रों, महोत्सवों और वसुधारा (धन के प्रवाह) का नगर था।

वहां की स्त्रियां मातङ्गगामिनी (हस्ति की चाल वाली), शीलवती, गौर-वर्णी और विभव (वैभव) में अनुराग रखने वाली थीं। कोई श्यामा भी थीं और लाल मणियों के आभूषण धारण करती थीं। धवल दन्तों से उज्ज्वल वे अपने पवित्र मुख से मदिरा की श्वास लेती थीं। उनका वदन चन्द्रकान्त (चन्द्रमा के समान) था। वे लावण्यवती और मधुर भाषिणी, प्रमादशून्य, प्रसन्न और उज्ज्वल मनोहर कान्ति वाली थीं[2]—

लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ता प्रसन्नोज्ज्वलमुखरागाश्च—(वही, पृ० १६४–६७)।

---

१ ' Sthanvisvara, blessed, with sweet fragrance of lovely flowers in diverse pleasances, bedecked, like the road to Dharma's gynaeceum like the encampent of the Krita age, with thousands of flaming sacrificial fires, bright like a replica of the moon world, with rows of white houses plastered with stucco, like a claiment to the name of Kuvera's city, oppressing the world with clanking ornaments of wine-flushed beauties (Ibid pp 81–82)

२ 'There (स्थाण्वीश्वर) are women like elephant in gait, yet noble mindel, vrigins, yet attached to wordly pomp, dark, yet possessed of rubies, their faces are brilliant with white teeth, their bodies are like crystal, lovely horneyed in speech,—have a bright and captivating beauty (Ibid, pp 82–83)

राजनगरी कान्यकुब्ज (कन्याकुब्ज)—श्री हर्ष के समय में पुष्यभूतियों की राजनगरी स्थाण्वीश्वर से कान्यकुब्ज (कन्नौज) में चली आयी थी। इस नयी राजधानी और वहा के पौर जनों का वर्णन करते हुए ह्वेनसाग ने भी बाण की *तरह ही नगर और जनों का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।*

चीनी यात्री के विवरणानुसार—कान्यकुब्ज[१] (कन्नौज) जनपद की परिधि

---

१ —'This (Kanyakubja) he describes as being above 4000 li in circuit The capital which had the Ganges on its west side, was above twenty li in length by four or five li in breadth, it was very strongly defended and had lofty structures everywhere, there were beautiful gardens and tanks of clear water, and in it rarities from strange lands were Collected The inhabitants are well off and there were families with great wealth, fruits and flowers were abundant, The people had a refined appearance and dressed in glossy silk attire, they were given to learning and the arts, and were Clear and suggestive in discourse, There were above 100 Buddhist monastries with more than 10,000 Brethern There were more than 200 Deva-Temples and the non-Buddhists were several thousands in number—(Watters Vol I p 340)

ह्वेनसाग ने गगा नदी को कन्नौज के पश्चिम में बताया है। लेकिन गगा नदी कन्नौज के पूरब में है। अन्य प्राचीन लेखकों ने गगा को पूरब तरफ ही बतलाया है। कन्नौज के पश्चिम तरफ गगा की सहायक काली नदी बहती है, शायद भूल से ह्वेनसाग उसे (काली नदी) ही गगा समझ बैठा था।

' Yuanchuang represents the Ganges as being on its (Kanyakubja) west side other old authorities place the Ganges on east side of Kanauj, where it still is The city is also described as being on the Kali-nadi an affluent of the Ganges on its west side '—(Ibid p 342)

चार हजार ली से भी अधिक थी। गंगा के पश्चिम तट पर स्थित इसकी राजधानी विस्तार में बीस ली और चौड़ाई में चार या पाँच ली थी।

इस की किलेबन्दी सुदृढ़ थी। सर्वत्र उत्तुंग भवन बने थे। उपवन मनोहर और स्वच्छ तड़ागों से पूर्ण थे, जहाँ विचित्र देशों से दुर्लभ वस्तुएँ (पेड़-पौधे) आदि एकत्र किये गए थे।

पौरवासी सुसहाल थे और वहाँ अति धनवान कुटुम्ब भी विद्यमान थे।

फलों-फूलों की बहुलता थी। जनों की आकृति सुसंस्कृत थी, और वे चमकीले रेशमी परिधान धारण करते थे। विद्याओं और कलाओं के वे प्रणयी थे और तर्क में सुस्पष्ट और प्रेरक थे। नगर में सौ से ऊपर बौद्ध-विहार थे, जिनमें दस हजार भिक्षु रहते थे। देवमन्दिरों की संख्या दो सौ से ऊपर और बौद्ध-इतर जन सहस्त्रों की संख्या में थे।

संक्षेप में बाण और ह्वेनसांग के विवरणों से प्रकट है कि पुष्यभूति राजवंश और उसके अंतिम वंशधर महाराजाधिराज परमेश्वर हर्षदेव का शासनकाल प्राचीन महान् क्षत्रिय राजकुलों की शृंखला में अंतिम समृद्धि और सुयश का गौरव काल था।

यह महान् सम्राट् विविक्त् जैसा कि पूर्व उल्लेख किया जा चुका है शायद ६१२ ई० सन् में सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था और चीनी स्रोतों के आधारानुसार लगभग ई० सन् ६४७ के अन्त अथवा ६४८ के प्रारम्भ में उसकी मृत्यु के साथ उसका यशस्वी शासन तथा साम्राज्य दोनों ही समाप्त हो गये (Watters Vol I p 347)।[1]

सम्भवतया हर्षदेव कोई पुत्र उत्तराधिकारी नहीं छोड़ गया था। फलतः उसके निधन के साथ आर्यावर्त्त की राजनैतिक एकता, और राष्ट्र के योग-

---

१ Ibid pp 346-347

विं० स्मिथ श्री हर्ष की मृत्यु की तिथि ई० सन् ६४६ के अंत अथवा ६४७ ई० सन् के प्रारम्भ में रखते हैं—(Early History of India, IIIrd ed p 20)

श्री पनिक्कर भी श्री हर्ष की मृत्यु की तिथि ई० सन् ६४७ में रखते हैं।

'लाइफ' के विवरणानुसार हर्ष की मृत्यु लगभग ई० सन् ६५५ में हुई थी (Life Beal, p 186)

क्षेम का भी अवसान हो गया और उत्तरीभारत पुन राजशक्ति के लिए सघर्ष का क्रीडा-स्थल बन गया।

ह्वेनसाग की जीवनी में दिये विवरणानुसार देव हर्ष की मृत्यु के साथ भारत दुर्भिक्ष और दुर्व्यवस्था में जा फँसा था।[1]

१ Siladitya raja died and India was Subjected to famine and desolation, as had been predicted (Life, p 156)

अध्याय ७

हर्ष का विद्यानुराग



चक्रवर्ती महाराजाधिराज परमेश्वर हर्षदेव, राजधर्म के ज्ञाता, लोकपालक गोप्ता (शासक) और दिग्विजयी योद्धा होने के साथ-साथ विद्याओं, विद्वानों, कलाओं और कलामर्मज्ञों के आश्रयस्थल थे। बाण और ह्वेनसांग दोनों के विवरण इस बात में एकमत हैं कि सम्राट हर्ष विमल चरित्र के साधु पुरुषों और गुणी पण्डितों, आचार्यों और राजधर्मज्ञों अथवा राजनीतिज्ञों का सुहृद, बन्धु तथा मित्र था।

हर्षचरित में हर्ष के इन महान गुणों को प्रकाशित करते हुए कहा गया है कि सम्राट (हर्ष) विमल बुद्धि के साधु पुरुषों को रत्न समझता था, पत्थर के टुकड़ों (पद्म मणि आदि) को नहीं—विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धि, न शिलाशकलेषु,

मुक्ता के समान धवल अथवा शुभ्र गुणों को प्रसाधन का अलंकार समझता था, आभरणों अथवा भूषणों के भार को नहीं—मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधी, नाभरणभारेषु

बढ़ते हुए यश पर वह सर्वाधिक प्रीति रखता था—सूखे तृणों के समान प्राणों में नहीं—'सर्वविसरे यशसि महाप्रीति, न जीवितजरत्तृणे,

गुण (डोरी) से युक्त धनुष को वह अपना सहायक बन्धु (सुहृद) समझता था, वेतनभोगी राजकर्मचारियों को नहीं—गुणवती धनुषि सहाय बुद्धि, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने,

वह प्रकृतित अपने को मित्रो के उपकार का उपकरण मानता था—मित्रोपकरणमात्मा,

अपने प्रभुत्व को वह भृत्यो का उपकार-उपकरण अथवा उपकार का साधन मानता था—भृत्योपकरण प्रभुत्वम्,

विद्वता (वैदग्धता) का अर्थ वह पडितो का उपकरण अथवा सहायता करना मानता था—पडितोपकरण वैदग्धम्,

धन-वैभव को बन्धु-बान्धवो का उपकरण मानता था—बाधवोपकरण लक्ष्मी

ऐश्वर्य (धन) को दीन जना के उपकार का उपकरण (साधन) मानता था—कृपणोपकरणमैश्वर्यम्,

हृदय को सुकृतो के स्मरण करने का उपकरण मानता था—सुकृतसरमरणोपकरण हृदयम्,

और आयु को धर्म का उपकरण मानता था (अर्थात् धर्म की सवृद्धि में ही जीवन की सार्थकता मानता था)—धर्मोपकरणमायु ।[1]

चीनी यात्री ह्वेनसाग ने भी कहा है (जैसा पहले अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है) कि साधुचरित के सामन्तों और राज्यधर्मविदो, जो उच्चादर्शों के

---

१ हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ९३–९४ ।

'Thus his idea of jewels attaches to men of pure virtues, not to bits of rock, his taste delights in pearl-like qualities, not in heaps of ornaments, his highest love is for pre-eminent glory, not for the withering stubble of this life, his notion of bosom friendship belongs to his well-strung bow, not to the courtiers who live on the crumbs of his board His natural instinct is to help his friends, sovereignty means to him helping his dependants, learning at once suggests helping the learned and success helping his kinsfolk, power means helping the unfortunate his hearts main occupation is to remember benefits and his life's sole employment is to assist virtue (Hc C & T, pp 42-43)

अर्जन की वृत्ति रखते थे, उनको सम्राट हर्ष अपना सुमित्र (good friend) मानता था और उन्हें अपने समीप स्थान देता था। नालन्दा के भिक्षुओं को वह राजदरबार में आसन देता और उन से धर्म पर चर्चा सुनता था तथा वह विभिन्न शास्त्रों एवं विद्याओं का अन्वेषक था (Watters Vol I, pp 344–348–351)।

हर्षचरित से भी यह प्रकट है कि वीरों की गोष्ठियों एवं काव्यगोष्ठियों दोनों में ही सम्राट हर्ष की समानरूप से परम अभिरुचि थी।

काव्यगोष्ठियों में वह (हर्ष) स्वयं से उद्भूत काव्य की (कविता की) अमृत वर्षा करता था—

'काव्यकथास्वपीतममृतमुद्वमन्तम्।

वीरों की गोष्ठियों में लगता था रणश्री (युद्ध देवी) के अनुराग संदेश को सुनकर उनके कपोल पुलक से भर उठते थे और पुराने सुभटों (योद्धाओं) के परस्पर कलह (संघर्ष) की गाथा सुनते समय वे स्नेह की वृष्टि सी करते हुए अपने कृपाण को निहारा करते थे—

वीरगोष्ठीषु पुलकितेन कपोलस्थलेनानुरागसंदेशमिवोपांशु रणश्रियः शृण्वन्तम् (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२१)।[1]

सम्राट हर्ष जिस तरह कृपाणप्रिय था, उसी तरह वीणा भी उन्हें परमप्रिय थी। हर्षचरित में वर्णन है कि सम्राट हर्ष के चरणों के स्पर्श से भावातिरेक में चरणग्राहिणी (पाँव दबाने वाली) के पसीजते कांपते हाथों से चरणकमलों के गिरने पर सम्राट हर्ष ने विहँस कर वीणा के कोण (भाष्यकार के अनुसार 'कोणो वीणादिवादनभाण्डम्' = वीणादण्ड) से लीलावश धीरे से उसके शिर का ताडन किया—

स्पर्शस्विन्नवेपमानकरकिसलयगलितचरणारविन्दां चरणग्राहिणीं विहस्य कोणेन लीलया शिरसि ताडयन्तम्—।

---

1. 'in poetical contests he poured out a nectar of his own which he had not received from any foreign source, in the parleys of heroes he seemed listening to the whispered kindly counsels of the Goddess of battles with his cheek horripilated in joy (Ibid p. 58)

सम्राट निरन्तर अपने हाथ में कोण (दण्ड) लिए रहते रहते थे, और उस से अपनी परम प्रिया वीणा और श्री (लक्ष्मी अथवा साम्राज्यश्री) को शिक्षित किया करते थे (अर्थात् वीणादण्ड से वीणा को और दण्ड से साम्राज्य को वश में रखते थे)—

अनवरतकरकलितकोणतया चात्मन प्रिया वीणामिव श्रियमपि शिक्षयन्तम्—[1] (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२९)।

विद्याओ और कलाओ मे सम्राट हर्षदेव की पारगतता और अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्नता को समासत बाण ने दो वाक्यो में अभिव्यक्त करते हुये कहा है कि देवहर्ष सरस्वती के लिये समस्त विद्याओ का सभाभवन अथवा गोष्ठीस्थान था—

सर्वविद्यासगीतगृहमिव सरस्वत्या,' तथा समस्त कलाओ के लिये (निवास का) अत पुर था—कन्यान्त पुरमिव कलानाम्।[2]

बाण के इस विववरण से प्रकट है कि देव हर्ष धर्म के आवर्तन में मौर्य-सम्राट अशोक के जैसे थे और भुजबल विक्रम तथा काव्य की पारगतता और शास्त्रो के तत्वार्थ के ज्ञाता के रूप में गुप्तवश के यशस्वी दिग्विजेता पराक्रमाक समुद्रगुप्त से सादृश्य रखते थे। देव हर्ष की इस चौमुखी प्रतिभा को लक्ष्य कर उसकी उपलब्धियो का अकन करते हुये थॉमस वाटर्स ने कहा है कि सम्राट शीलादित्य श्री हर्षदेव, भारतीय इतिहास के हिन्दूयुग का अकबर था। वह एक महान् सफल योद्धा, प्रज्ञावान् और प्रजावत्सल शासक ही नही था, वह धर्म

१ " he languidly struck on the head with the bow of a lute the shampooing attendant, as his lotus feet dropped from her spray-like hands which were trembling in her perspiring emotion, while he taught the Goddess of Empire as well as the lute (both equally dear) while each had its kona (the bow of the lute and also 'an intermediate direction of the compass' for the empire) firmly grasped in his hand (Ibid pp 62-63 fn 1)

२ हर्षचरित, द्वितीय उछ्वास, पृ० १३०-१३१

" the assembly-room for all sciences to sarasvati, the seraglio of the fine arts all together (Hc C & T pp 63 64)

और साहित्य का भी एक दिन और अनुरक्त संरक्षक था तथा वह स्वयं ग्रन्थों का प्रणेता (ग्रन्थकार) था।[1]

बाण और ह्वेनसांग के अतिरिक्त हमें अन्य स्रोतों से भी प्रेम हर्ष के काव्य एवं कलाप्रियता तथा ग्रन्थप्रणेता होने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

मधुबन और बाँसखेड़ा दान-ताम्रपत्र लेखों पर देव हर्ष के चित्रलिपि में स्वहस्त लिखित हस्ताक्षर उनकी कलाप्रियता ही चित्राङ्कित करती है। प्रकटतः दानलेखों पर सम्राट के स्वहस्त लिखित हस्ताक्षरों की प्रतिकृति ही लिपिकारों द्वारा ताम्रपत्रों पर अंकित की गयी थी—इसीलिये लेखों के हस्ताक्षरों को महाराजाधिराज श्री हर्ष ने 'स्वहस्तो मम' कहा है।

नाटकों के प्रणेता महाकवि श्रीहर्ष—बाण ने, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, देव हर्ष को *कविगोष्ठियों में काव्य की अमृतरस-धारा की वृष्टि करने* वाला कहा है। ये काव्यरचनायें श्री हर्ष की स्वयं उद्भूत होती थीं अर्थात् उनकी निजी कृतियाँ होती थीं। संस्कृत के पद्य संग्रहों में हर्ष की पद्य रचना भी उल्लेखित मिलती है। वल्लभदेव की सुभाषितावली में हर्ष का भी एक श्लोक संग्रहीत है—

> अजडमतीन्सजिह्वा त्यागिनमनुरागिणी विशेषज्ञम्।
> यदि नाश्रयति नर श्रीः श्रीरेव हि वञ्चिता तत्र॥

ग्रन्थप्रणेता के रूप में देवहर्ष की प्रमुख काव्य कृतियाँ तीन नाटिकायें हैं—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द।

इनके अलावा 'अष्ट महाश्री चैत्यस्तोत्र' (इस में पाँच श्लोकों में आठ महान् चैत्यों की स्तुति की गयी है), और 'सुप्रभातस्तोत्र' (इस में चौबीस श्लोकों में भगवान बुद्ध की स्तुति की गयी है) भी इस विद्वान सम्राट की काव्य रचनायें मानी जाती हैं।

---

१ "This king, Siladitya or Shri-Harshadeva or Harsha," the Akbar of the 'Hindu period' of Indian history," was not only a great and successful warrior and wise and benevolent ruler he was also an intelligent devoted patron of religion and literature, and he was apparently an author himself" (Watters Vol I, p 351)

देवहर्ष एक व्याकरण ग्रन्थ के रचयिता भी कहे गये हैं। लेकिन उनका वह ग्रथ उपलब्ध नही हो सका है।

सम्राट हर्ष के ग्रन्थकार होने में कतिपय विद्वानो ने शका प्रकट की है। रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाटको में उन के रचयिता श्री हर्षदेव (महा राज हर्ष) कहे गये हैं। नाटको के रचयिता श्रीहर्षदेव कन्नौज के पुष्यभूति सम्राट हर्ष शीलादित्य ही हैं, यह ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध हो जाता है।

भारत के प्राचीन इतिहास में हर्ष नाम के तीन और राजा हो गए हैं—(१) कश्मीर का निरकुश राजा हर्ष (१०८९–११०१ ई०सन्), (२) धार का हर्ष, महाराज भोज का पितामह (९४७-९७२ई०सन्) और (३) उज्जैन का हर्ष विक्रमादित्य जिसे मालवा के यशोधर्मन से मिलाया जाता है। इन तीन में पहले दो तो दामोदरगुप्त के आधार पर तिथिक्रम के भेद के कारण स्वीकार नही किए जा सकते।

दामोदरगुप्त कश्मीर के राजा जयापीड (७७९ ई०–८१० ई० सन्) का एक मन्त्री था। उसने अपने एक ग्रन्थ "कुट्टिनीमत" में रत्नावली नाटक की कथावस्तु का उल्लेख किया है और कहा है कि इस नाटक के रचयिता एक राजा थे। डा० कीथ (Dr Keith) के अनुसार महाकवि माघ (लगभग ७०० ई० सन्) नागानन्द नाटक से परिचित थे।[१] अत स्पष्ट है कि रत्नावली और नागानन्द नाटको का रचयिता १०वी और ११वी शताब्दी मे हुए हर्ष नही हो सकते। ग्रन्थकार राजा हर्ष की तिथि निश्चय ही दामोदरगुप्त से पूर्व याने ८वी शती मे पूर्व होनी चाहिए।

तीसरे हर्ष विक्रमादित्य के सम्बन्ध में राजतरगिणी के रचयिता कल्हण का कहना है कि इस राजा का *'हर्ष नाम' गौण था* और उसकी मुख्य उपाधि विक्रमादित्य थी। किन्तु सदर्भित तीनो नाटकों में ग्रन्थकार का नाम केवल (महाराज) हर्ष मिलता है। अत डा० त्रिपाठी और पानिक्कर का यह कथन सर्वथा मान्य प्रतीत होता है कि यदि हर्ष-विक्रमादित्य उक्त नाटको का ग्रन्थकार होता तो यह सम्भव नही था कि प्रस्तावना में वह अपनी यश पूर्ण उपाधि का प्रयोग करना भूल जाता। फलत उक्त तीनो हर्ष नामधारी राजा रत्नावली आदि नाटिकाओ के रचयिता नही माने जा सकते। निष्कर्षत आठवी शती से पूर्व जिस राजा हर्ष ने उन नाटको की रचना की थी वे कन्नौज के पुष्यभूति सम्राट हर्ष अथवा हर्षदेव ही हो सकते हैं, और थे।[२]

---

१ Classical Sanskrit Literature pp 54–55

२ पानिक्कर हर्ष विक्रमादित्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं—"The author

श्रीहर्ष के ग्रन्थकर्त्ता होने पर वस्तुतः सम्भवतः कुछ टीकाकारों ने शंकायें उत्पन्न की, और उनके नाटकों को उनके एक राजकवि धावक द्वारा रचा हुआ बतलाया। ग्यारहवीं सदी के कश्मीर के पण्डित मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' नामक ग्रंथ में काव्यकला से होने वाले लाभों का वर्णन करते हुए कहा है कि कविता से यश और धन प्राप्त होता है (काव्यं यशसेऽर्थकृते) और इसके प्रमाण में उदाहरण देते हुए उन्होंने इंगित किया कि कालिदास को यश प्राप्त हुआ और धावक को श्री हर्षदेव से धन मिला—

'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्।'

आचार्य मम्मट के इस कथन का सत्रहवीं शताब्दी के टीकाकार नागोजी (नागेश) ने यह अर्थ लगाया कि धावक नाम के एक कवि ने श्री हर्ष के नाम से रत्नावली नाटक लिखकर बहुत धन प्राप्त किया था—

'धावकः कविः। स हि श्रीहर्षनाम्ना रत्नावलीं कृत्वा बहुधनं लब्धवानिति प्रसिद्धम्'।

इसी तरह दूसरे टीकाकार परमानन्द ने भी ऐसा ही अर्थ लगाते हुये लिखा कि धावक नाम के कवि ने अपनी रचना (कृति) रत्नावली नाटिका विक्रय करके श्री हर्ष नाम के राजा से बहुत धन लाभ किया—

'धावकनामा कविः स्वकृतिं रत्नावलीनामनाटिकां विक्रीय श्रीहर्षनाम्नो राज्ञः सकाशाद्बहुधनमवापेति पुरा वृत्तम्।'

---

of the plays is uniformely spoken of as Harsha and it is certainly unlikely that a highly prized title like that of Vikarmditya would have been consistently left out if the author possessed that name also"

डा० त्रिपाठी का कथन है—"Regarding the claims of the third Harsa We may say that according to Kalhana, Harsaa was only his secondary name, and Vikarmaditya was his title It appears, therefore, improbable that if this Harsa had been the author of these plays, he would have omitted to mention the prized title of Vikarmaditya in the prastavana" (History of Kanauj pp 180–181)

इन टीकाकारो के कथन नि सदेह उनके अपने मस्तिष्क की भ्रमित कल्पना मात्र है। मम्मठ के काव्यप्रकाश मे 'धावक' द्वारा हर्ष के नाम पर नाटक लिखने व विक्रय करने का कोई उल्लेख नही है। मम्मठ का केवल इतना ही कहना है कि काव्य से यश और अर्थ दोनो प्राप्त होते है, और धावक को (उसके काव्य के कारण) हर्ष से धन प्राप्त हुआ। अत देवहर्ष के प्राय हजार वर्ष बाद के टीकाकारो का भ्रमपूर्ण कथन जिसका आधार केवल जनश्रुति रही है, ऐतिहासिक सत्य और तथ्य के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता।[1]

---

१ काव्यप्रकाश की उक्ति पर नागोजी के भाष्य की आलोचना करते हुए पानिक्कर कहते है—'There is nothing either in the passage or in the commentary that justified the elaborate stricture of Nagoji Bhatta Nagoji, a very late commentator leaving both the original and earlier commentaries behind, explained the passage (Kavyam yasase arthakrite, as—Kalidasadinamiva Yasah Shri Harsader Dhavakadinamiva dhanam) by saying that it is possible to earn money as Dhavaka did by selling the authorship of his works to Harsha

This statement has certainly no value in as far as it was written nearly 1000 years afterwards and based entirely on hearsay'—(Shri Harsha p 68)

देव हर्ष के कवि व ग्रन्थकार होने पर सदेह व्यक्त करने वाले उत्तर-मध्यकालीन टीकाकारो के कथन को सारहीन बतलाते हुये प्रोफेसर डा० त्रिपाठी कहते है—"Almost all the later doubting authors belong to the 16th or 17th century A D, and this distance in time from Harsa considerably lessens the weight of their authority"

आगे आचार्य मम्मठ के कथन पर प्रकाश डालते हुये डा० त्रिपाठी कहते है—" It is not clear from Mammata—probably the original source of the later authors—whether the money received by the poets of Harsa's court was an act of pure

धावक नाम का संस्कृत साहित्य में कोई कवि नहीं मिलता। बुलर[१] (Buhler) ने इंगित किया है कि काव्यप्रकाश की कुछ हस्तलिपियों में धावक की जगह बाण का नाम मिलता है—

'श्रीहर्षादेर्बाणादीनामिव धनम्'।

इससे प्रतीत होता है कि धावक का नाम पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि तैयार करने वाले लिपिकार की भूल से बाण के नाम की जगह चला आया है।

हर्षचरित से निर्विवादतः हमें विदित है कि देव हर्ष साधु चरित के पुरुषों को रत्न मानने वाला, गुणों को अलंकार समझने वाला, श्रद्धा के साथ दान जैसा कर्म करने वाला (दानवन्धु कर्मसु साधनश्रद्धा) और ब्राह्मणों (पण्डितों) को सर्वस्व देने वाला था (द्वितीय उच्छ्वास—पृ० ९३-९४)। तथा जैसा कि ताम्रपत्र लेखों में घोषित है देव हर्ष धन (लक्ष्मी) का वास्तविक फल अथवा उपयोग दान देने और दूसरों के यश का परिपालन करने में आश्रित मानते थे —

दान फलं परयशः परिपालनञ्च।

अतः देव हर्ष का गुणज्ञ आदि विदग्ध पण्डितों को धन दान देना या उन्हें पुरस्कृत करना, उन का स्वभावगत गुण और जीवनादर्श रहा था। बाण ने स्वयं कहा है कि सम्राट हर्ष के प्रसाद से उनका मान-सम्मान, प्रीति-विश्वास, धन-वैभव परमकोटि को पहुँच गया था (हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १४०)। किन्तु यह बाण की विदग्धता अथवा पांडित्य के कारण ही उसे प्राप्त हुआ था, न कि सम्राट के नाम पर ग्रन्थ लिखने के लिये उत्कोच के रूप में। देव हर्ष जैसे सर्वस्व दानी के प्रति ऐसा समझना और कल्पित करना निर्दोष पर दोष लगाने के तुल्य है। वास्तव में समुद्रगुप्त की भाँति ही हर्ष लक्ष्मी और

---

royal patronage, or was of the nature of a price for selling their authorship ,

The truth of the whole matter is that although we can not be oversanguine about Harsa's authorship , there is nothing improbable in such a view" (History of Kanauj, p 187)

१ Detailed Report of a Tour in search of sanskrit Manuscripts in Kashmir, 1877 Buhler; p 69

सरस्वती के पारस्परिक वैर भाव को मिटाकर, सरस्वती के आराधक विद्वानो एव मेधियो को मुक्तहस्त से वैभव प्रदान कर श्री से सयुक्त करने के सहजत आदि थे। उनकी इस गुणग्राहकता के फल से विद्वानो की तब जो सवृद्धि हुयी उसी को शायद लक्ष्य कर बाण ने कहा है कि देव हर्ष विद्वानो की सृष्टि के बीज थे —

बीजमिव विबुधसर्गस्य—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३०)।

निष्कर्षत देवहर्ष पर, धन देकर अपने नाम से ग्रन्थ लिखाने का आक्षेप अभद्र, अप्रासगिक, कल्पित एव अनर्गल है।[१] बाण की भाषा और शैली तथा श्रीहर्ष की भाषा एव शैली में कोई सादृश्य और एकात्मता नही है। सस्कृत साहित्य के

---

१ दशवी शताब्दी के राजशेखर के 'कविविमर्श' मे उल्लेखित इस कथन—

आदौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका।
निरीर्ष्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना॥
तस्य रत्नावली नून रत्नमालेव राजते।
दशरूपककामिन्या वक्षस्यत्यन्तशोभना॥
नागानन्द समालोक्य यस्य श्रीहर्षविक्रम।
अमन्दानन्दभरित स्वसभ्यमकरोत्कविम्॥

के आधार पर भी यह कल्पना की गयी है कि प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द नाटक भास की कृतियाँ थी, जिन्हे उस ने अपने सरक्षक हर्ष को बेच दिया था। इस भास को धावक से भी एकीकृत किया जाता है। धावक नाम, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, भूल से बाण के नाम की जगह प्रयुक्त हुआ है, और धावक नाम से सस्कृत साहित्य मे कोई 'कवि' नही मिलता। अत भास को धावक कहना असगत है।

और भास तिथिक्रम की दृष्टि से हर्ष का समकालीन कवि भी नही था। भास श्रीहर्ष के बहुत पूर्व का है। भास का कालिदास ने उल्लेख किया है, और कालिदास सामान्यत श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती गुप्तयुग के महाकवि माने जाते है, जो सम्भवतया कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त के समकालीन रहे। साहित्यिक दृष्टि से भी भास के नाटको और श्रीहर्ष के नाटको मे कोई सादृश्य नही है। अत राजशेखर के आधार पर यह कहना कि प्रियदर्शिका आदि नाटको को रचकर भास ने उन्हे सुवर्ण के बदले सम्राट हर्ष को विक्रय कर दिया था, सहसा नि सार और असगत है।

इस सन्दर्भ में देखिए—Shri Harsha, Pannikar p 67.

इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् डा० कीथ ने यथार्थतः यह इंगित किया है कि बाण की शैली और भाषा को रखते हुए रत्नावली और अन्य दो नाटकों का उनकी कृति समझना भूल है। हर्षचरित और कादम्बरी की संरचना पाण्डित्यपूर्ण और शैली अत्यन्त जटिल एवं क्लिष्ट है। लेकिन रत्नावली आदि नाटकों की शैली सरल सुगम और अलंकारिक चमत्कारों से विरत है, तथा साहित्यिक दृष्टि से उन का स्तर बाण की काव्य-कृतियों से कोई साम्य नहीं रखता।[1]

दूसरी ओर श्रीहर्ष के नाटकों के रचयिता और कवि होने के सम्बन्ध में उपलब्ध साक्षियाँ पूर्णतया प्रामाणिक हैं। तीनों नाटकों की प्रस्तावना में श्रीहर्ष को 'निपुण कवि' घोषित किया गया है। बाण ने हर्षचरित और कादम्बरी में हर्ष की काव्य निपुणता, वैदग्धता और विद्वानों के प्रति उनके अनुराग का बहुलता से उल्लेख किया है।

सम्राट हर्ष की शास्त्रज्ञता और काव्य-प्रतिभा को बाण ने असाधारण घोषित करते हुए कहा है कि उन की प्रज्ञा के लिए शास्त्र के विषय और कवित्व के लिए वाणी पर्याप्त न थी—

प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः।[2]

हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास के अठारहवें-उन्नीसवें श्लोक में बाण ने कहा है कि आढ्यराज्य (समृद्ध नृपति) के उत्साह अथवा महान् कृत्यों को हृदय में रख स्मरण करके मेरी जीभ मानो मुँह के भीतर ही खिंची जा रही है और कवित्व के लिये प्रवृत्त नहीं हो पा रही है। तथापि सम्राट के प्रति अपनी भक्ति से प्रेरित होकर आकुल और भीत होने हुए भी मैं आख्यायिका रूपी उदधि को जिह्वा अथवा वाणी के चप्पू द्वारा तैरने की चपलता कर रहा हूँ—

आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते॥ १८॥
तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्॥ १९॥

---

१ The sanskrita Drama by Dr Keith, p 171

२ हर्षचरित द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३३

"His knowledge (can not find range enough) in doctrines to be learned, his poetical skill finds words fail" (Hc C & T, p 65)

श्लोक में उल्लेखित आढ्यराज (समृद्ध नृपति) से बाण का अभिप्राय देव हर्ष से प्रतीत होता है जिनके उत्साहवर्द्धक कृत्या तथा कवित्व प्रतिभा से उसे आख्यायिका लिखने का साहस केवल नृपति (श्री हर्ष) के प्रति अनुराग रहने से ही सभव हो सका।[1]

सातवी शती के उत्तरार्द्ध (६७१-६९५ ई० सन्) मे इतिसग नाम का चीनी यात्री भारत की यात्रा पर आया था। उस ने भी सम्राट शीलादित्य हर्ष की साहित्यिक प्रतिभा का उल्लेख करते हुये कहा है कि शीलादित्य ने बोधिसत्व-जीमूतवाहन की कथा के आधार पर एक काव्य-कथा की रचना की थी (अभिप्राय नागानद नाटिका से है) और वाद्य के सग मच पर उसको अभिनीत भी कराया था, जिस कारण वह बहुत लोकप्रिय हुआ।[2]

पूर्व और उत्तर-मध्ययुग में भी श्री हर्ष ग्रथकार और कवि के रूप में सुप्रसिद्ध थे। ११ वी शती के एक कवि सोड्ढल (कोणकण) ने अपनी उदय-सुन्दरी-कथा मे श्री हर्ष का, विक्रमादित्य, मुज और भोजादि नृपो के समान कवीन्द्र कहा है और उस वाणी अथवा काव्य में रस लेने वाला 'गीहर्ष' घोषित किया है जिसने बाण को एक सौ करोड स्वर्ण से सम्पूजित अर्थात् 'पुरस्कृत' किया था।[3]

---

१ देखिये—Columbia University Indo-Iranian Series Vol X p XI note 18

प्रोफेसर मुखर्जी—'Bana in the metrical introduction to his Harsa-carita refers to Harsa as Adhyaraja (lit rich king) and to his achievements, literary and Political (utsahair)' Harsha, p 157

२ 'According to this author (I Ching) also Siladtya put together the incidents of the cloud riding (Jimuta-vahana) Bodhisattva giving himself up for a naga, into a poem to be sung, that is, he composed the "Nagananda" An accompaniment of music was added, and the king had the whole performed in public, and so it became popular —I Tsing Taka Kusu pp 163-64 Watters Vol I p 351

३ वाणभट्टाघ्यामितमधिष्ठित च कालिदासादि महाकविभि
कवीन्द्रैश्च विक्रमादित्य श्री हर्ष मुञ्ज भोजदेवादि भूपालै ॥

आठवीं-नवीं शती के कश्मीर के राजकवि दामोदरगुप्त ने रत्नावली नाटक को एक राजा की कृति बतलाया है। उक्त राजा, जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं श्री हर्ष शीलादित्य ही हो सकता है।

१६वीं शताब्दी के कवि जयदेव ने भी श्री हर्ष को भास और कालिदास, बाण, व मयूर आदि के साथ कवियों की अग्र पंक्ति में स्थान दिया है।[1]

१७वीं शती के दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती ने अपनी टीका भावबोधिनी में बाण और मयूर के प्रश्रयदाता सम्राट हर्ष को कवि और रत्नावली आदि का रचयिता कहा है, यद्यपि उसने भूल से देव हर्ष को मालवा का राजा बतलाया है जिसकी राजधानी उज्जैन थी।[2]

सुभाषित रत्नभाण्डागार में एक स्थल पर श्री हर्ष का नाम भास, मयूर, कालिदास, भवभूति, बाण और दण्डी आदि के साथ कवियों में गिनाया गया है।[3]

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु
नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
'गीहर्ष' एष निजसंसदि येन राज्ञा
सम्पूजित कनककोटिशतेन बाण। —Gaekwad's oriental Series No 11 Baroda 1920, p 2

१ —Prasanna Raghava—Jayadeva by Pranjpe and Panse, Act I p 10 stanza 22—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकर कर्णपूरो मयूर।
भासो हास कविकुल गुरु कालिदासोविलास
हर्षो हर्ष हृदयवसति
पञ्च बाणश्च बाण।
केषा नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥

२ Indian Antiquary II pp 127–128

३ मासश्चोरो मयूरो मुररिपुमुरो भारवि सारविद्य
श्री हर्ष कालिदास कविरथ भवभूत्याह्वयोभोजराज।
श्री दण्डी डिण्डिमाख्य
श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लटो भट्ट बाण ख्यातश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह,
कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ॥३१॥

इन उद्धरणो के अलावा बाँसखेडा और मधुवन के अभिलेखो से भी हर्ष के कवि होने का अनुमान होता है। कतिपय विद्वानो की धारणा है कि उक्त अभिलेखो मे जो पद्य अत्यन्त मार्मिक भावो के साथ शत्रुओ द्वारा 'राज्य' की हत्या का वर्णन करते है, उनकी रचना सम्भवतया श्री हर्ष ने स्वय की थी।[1]

डा० कीथ के अनुसार देव हर्ष के रचे तीना नाटको की शैली, भाव और विचार एक जैसे है, जो इस बात के साक्षी है कि इन तीना के रचयिता एक ही कवि थे और वह स्वय श्री हर्ष थे।[2]

नि सदेह श्रीहर्ष शीलादित्य के उदात्त, त्याग तथा शील मे पूर्ण जीवन और चरित्र को देखते हुए यह कथन और कल्पना नितान्त अनुदार और असगत है कि कविया मे अपना नाम लिखाने के लिए देव हर्ष ने सुवर्ण देकर अपने नाम पर काव्यों की रचना करवायी थी।[3] निष्कर्षत, उपलब्ध प्रमाणो के

---

१ *Coulambia University Indo-Iranian Series, Vol 10* p Xliv

इस सन्दर्भ मे प्रोफेसर मुखर्जी की तो मान्यता है कि बाँसखेडा और मधुबन ताम्रपत्र लेख श्रीहर्ष की ही निजी रचनायें है—'The inscriptions on both the Banskhera and Madhuban plates, of which the former is attested by Harsa's own signature, are evidently his own composition They contain metrical stanzas which represent some fine poetry (Harsha, p 158)

'राज्य' (राज्यवर्धन) की हत्या का उल्लेख करने वाला अश इस प्रकार है—

> राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदत्तगुप्तादय
> कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखा सर्वे सम सयता ।
> उत्खाय द्विपतो विजित्य वसुधा कृत्वा प्रजाना प्रिय
> प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन य ॥

२ The Sanskrit Drama, by Dr Keith pp 170–171
Harshavardhana, by EttingahauSen p 102

३ श्री पानिक्कर ने देव हर्ष पर दूसरे कविया की रचना क्रय करने के आक्षेप पर आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा है—"That Harsha Siladitya would

आधार पर श्री हर्ष को कवि और प्रियदर्शिका आदि तीन नाटकों का रचयिता स्वीकार करने में हमें कोई कठिनाई नहीं है। प्राचीन और मध्ययुग के अनेक राजा (समुद्रगुप्त, मुञ्ज, भोज आदि) कवि और ग्रन्थकर्त्ता हो चुके हैं, इसलिए राजा होते हुए देवहर्ष कवि कैसे हो सकते थे, ऐसा सोच कर सन्देह करना संगत कैसे माना जा सकता है ?

श्रीहर्ष के नाटकों की मध्ययुगीन आलोचकों ने बहुत प्रशंसा की है। जयदेव ने हर्ष को भास, कालिदास मयूर और बाण आदि के समकक्ष स्थान दिया है। किन्तु वर्तमान आलोचकों का कहना है कि नाट्यकला की दृष्टि से हर्ष कालिदास के समान में नहीं बैठते और न काव्यकला की दृष्टि से वे बाण अथवा भवभूति की जैसी प्रगल्भता और सौंदर्य सरसता को पहुँचते हैं। रत्नावली और प्रियदर्शिका कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक के अनुरूप हैं। इन दोनों नाटकों में कौशाम्बी के राजा उदयन और उसकी प्रेमकथा को वर्णित किया गया है। नाटकों के पात्र-पात्रियों और परिस्थितियों आदि के चित्रण में भी श्री हर्ष ने कालिदास से प्रेरणा ली है। तीसरा नाटक नागानन्द उक्त दोनों नाटकों से भिन्न है। इसमें बौद्ध नायक जीमूतवाहन के चरित्र द्वारा बौद्धधर्म के त्याग और बलिदान का महान् आदर्श उपस्थित किया गया है। करुणा और दया से प्रेरित होकर जीमूतवाहन एक नाग को गरुड का आहार बनने से बचाने के लिए अपूर्व साहस और धैर्य के साथ अपना शरीर गरुड को अर्पण कर देता है। जीमूतवाहन निःस्वार्थ त्याग, सेवा तथा दया का प्रतीक है। इस नाटक की रचना से प्रकट होता है कि देव हर्ष यद्यपि काव्य रचना की दृष्टि से बहुत ऊँचे नहीं उठ सके हैं लेकिन भावों की अभिव्यक्ति और चरित्र-चित्रण में उनका शिल्प-कौशल भव्य और सुन्दर है।[1]

---

have bought the works of other authors is contrary to known facts with regard to his character We can, therefore, be reasonably certain that Harsa wrote these plays inspite of what critics may say"—(Harsha, pp 68–69)

१ देव हर्ष के नाटकों पर विभिन्न विद्वानों की सम्मतियाँ

(I) श्री पानिक्कर—"From the purely artistic point of view it cannot be said that either Ratnavali or Priyadarsika have anything distinctive in them to entitle its

विद्याओ और कलाओं का आराधक और अनुरागी सम्राट हर्ष विद्वानो और पण्डितो का परम आश्रय-स्थल था। ह्वेनसाग के, जैसा कि पूर्व उल्लेख किया गया है, अनुसार सम्राट हर्ष ने राजकीय भूमि की आय व्यय के लिये चार भागो में बाट रखी थी, जिसमें से एक भाग प्रज्ञावान पण्डितो और विद्वानो को पुरस्कार देने के निमित्त था। प्रकट है कि देव हर्ष के समय में राज्य की ओर से बौद्धिक क्षेत्र में काम करने वाला को यथेष्ठ श्रद्धा और सम्मान प्राप्त था।

---

royal author to a considerable place in Indian literature The lyrical quality of the verses in them are of a very high order and this alone perhaps constitutes their merit to be classed among minor classics of India (Shri Harsha, pp 69–76)

Harsha in his treatment of the story of Jimutvahana in Naganand displays a singular power of disscription and narration The scenes are vivid and in some places they reach the very height of tragedy (Ibid p 72)

(II) डा० त्रिपाठी—" The language of the plays is simple and unfettered by any artificiality and ornamentation The plays are in no sense productions of a high order " (History of Kanauj, p 186)

(III) गौरीशकर चटर्जी "हर्ष अपने पात्रो का चरित्र चित्रण बडी कुशलता के साथ करते है और साथ ही यह भी प्रकट करते है कि प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति मे वे सिद्धहस्त थे। साथ ही मानव हृदय के अन्य गम्भीर उदार भावो के चित्रण करने में भी वे कम सफल नही रहे।

हर्ष के पास वर्णनात्मक शक्ति की भी कमी नही है। कला, प्राकृतिक पदार्थों तथा मानव भावनाओ के जो वर्णन उन्होने किए हैं वे सराहनीय हैं। भाषा का प्रभाव उन्मुक्त है, उसमें कही कृत्रिमता नही आने पाई है। अलकारो का प्रयोग वे बडी कुशलता के साथ और प्रभोत्पादक रूप में करते है। उनके नाटको की सस्कृत सरल और सुन्दर है। सब बातों पर दृष्टि रखते हुए हम कह सकते है कि प्राचीन सस्कृत कवियो में हर्ष को एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है" (हर्षवर्धन, पृ० १५८–१५९)।

सम्राट् हर्ष को सुरम्य काव्यों के संग्रह कराने का भी शौक था। इत्सिंग के अनुसार, श्री हर्ष ने एक बार श्रेष्ठ सुन्दर कविताओं का संग्रह संकलित करवाया था, जिसमें ५०० श्लोक जातकमाला से थे। यह संग्रह[1] देव हर्ष की काव्य-रसिकता और विद्यानुराग का ही प्रमाण उपस्थित करता है।

निःसंदेह श्री हर्ष गुणी तथा गुण-पारखी दोनों थे और उनके सम्मान में विद्या तथा विद्वानों दोनों को समुन्नत होने का वाछित प्रोत्साहन, उत्साह और बढ़ावा प्राप्त हुआ। हर्ष देव के राजदरबार की शोभा बढ़ाने वाले तीन उच्चकोटि के कवि और साहित्यिकों का ही नाम हमें ज्ञात हैं, यद्यपि अनुमान किया जा सकता है कि राजाश्रय प्राप्त करने वाले अनेक छोटे-बड़े अन्य कवि और विद्वान् भी अवश्य रहे होंगे। सम्राट् हर्ष के प्रश्रय में रहने वाले तीन कवियों के नाम सुभाषित-रत्नभाण्डागार[2] के नीचे उद्धृत श्लोक में उल्लेखित हैं—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥

अर्थात् सरस्वती का ऐसा प्रभाव है कि नीच जाति का दिवाकर भी बाण और मयूर के समान श्री हर्ष की सभा का सदस्य बना।

बाण, देव हर्ष के दरबार का प्रमुख कवि था, यह निर्विवाद है। हर्षचरित और कादम्बरी, बाण के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं। हर्षचरित में हर्ष का जीवनचरित दिया गया है। लेकिन बाण ने अपने संरक्षक के चरित्र का सम्पूर्ण विवरण देने से

---

१ Watters Vol I p 351—"As to his literary tastes we learn from I-ching that the king (Harsha) once called for a collection of the best poems written of the compositions sent in to him 500 were found to be strings of Jatakas (Jatakamala)"

सम्भवतया देव हर्ष की काव्यसंग्रह में अभिरुचि के कारण ही प्राग्ज्योतिषेश्वर के राजा कुमार ने हंसवेग द्वारा नाना उपहारों के साथ सुभाषितों से पूर्ण पुस्तकें भी, जिनके पन्ने अगरु के वल्कलों (छाल) से तैयार की गयी थी, भेंट में भेजी थीं—'अगरुवल्कलकल्पितसञ्चयानि च सुभाषितभाञ्जि पुस्तकानि'—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८७)।

२ Subhasitaratnabhandagra Parab, 5th ed Bombay 1911 p 37, stanza 37

पूर्व ही इसे समाप्त कर दिया है, जिससे यह ग्रन्थ अधूरा रह गया है। हर्षचरित की विशेषता उसका कल्हण की राजतरगिणी के समान एक ऐतिहासिक ग्रन्थ होने मे है जिससे हमे श्रीहर्ष और उनके पूर्वजो के बारे में यथेष्ट प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है।

कादम्बरी एक औपन्यासिक काव्य कृति है। कहते है बाण इस ग्रन्थ को अधूरा छोड स्वर्ग सिधार गये थे। अत कादम्बरी के अवशिष्ट भाग को बाण के सुयोग्य पुत्र भूषणभट्ट ने पूरा किया। सराहनीय तो यह है कि भूषणभट्ट ने जितना अश कादम्बरी में जोडा है, वह शैली और काव्य-रचना-कौशल में बाण की शैली और काव्यात्मकता से इतर नही। बाण के दोनो ग्रन्थ गद्य मे है, लेकिन उनकी लेखन-शैली काव्य के प्रकार की है—भेद इतना ही है कि भाषा को छद बद्ध नही किया गया है। बाण की भाषा, भाव और कल्पना की उडान सभी अद्वितीय है। लेकिन उसके वाक्यो की रचना अत्यन्त विस्तृत और जटिल है और भाषा बहुत ही क्लिष्ट है, जिस कारण उसे प्रसाद गुण वाले महाकवि कालिदास के समान ऊँचा स्थान प्राप्त नही हो सका।[1]

---

१ बाण पर श्री पानिक्कर की सम्मति—

"He (Bana) is acknowledged to be the greatest romancer in Sanskrit His Harsa-carita together with Harisena's life of Samudra Gupta and Kalhana's Rajatarangani form the best known trio of historic compositions in Sanskrit That he was a writer of extraordinary ingenuity with an unrivalled command of words and a marvellous imagery, no one will doubt But his method of description is so ornate and his sentences so involved that his preeminence acknowledged by all Pundits will not so easily be granted these days

With all his faults it must, however, be admitted that Bana is among the immortals of Sanskrita literature Kadambari inspite of its over-decoration is a well-told romance which will always be read and appreciated by Sanskrit Scholars The ubiquitous use of slesa, which

हर्षचरित और कादम्बरी के अलावा बाण की एक अन्य रचना चंडीशतक भी कही जाती है।[१]

मयूर श्रीहर्ष के दरबार का दूसरा प्रमुख कवि था। कहा जाता है कि मयूर बाण का श्वसुर था। 'नवसाहसांकचरित' के अनुसार बाण और मयूर काव्य-रचना में एक दूसरे से प्रतिद्वन्दिता रखते थे। कहते हैं मयूर ने अपनी रूपवती कन्या के सौन्दर्य का विस्तार से वर्णन किया, जिस कारण उसे कुष्ठ रोग हो गया था। मयूर ने तब एक सौ श्लोकों में सूर्य-शतक रचकर सूर्य की आराधना की और तब वह कुष्ठरोग से मुक्ति पा गया। यह भी कहा जाता है कि मयूर के सूर्य-शतक से प्रेरित हो कर ही बाण ने चण्डी-शतक की रचना की थी। मयूर की दो रचनायें और बतलायी जाती हैं—मयूर-शतक और आर्यमुक्तमाल। किन्तु कुछ विद्वानों के मत में सूर्य-शतक और मयूर-शतक दो भिन्न रचनायें नहीं हैं। वस्तुतः दोनों एक ही रचना के भिन्न नाम हैं।[२]

तीसरे कवि मातंग दिवाकर (यह जाति का चाण्डाल था) के सम्बन्ध में हमें कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता, सिवाय इसके कि वह बाण और मयूर के समान लब्धप्रतिष्ठित कवि था, जिस कारण देव हर्ष की विद्वमण्डली में उसे भी सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ। डा० कीथ के अनुसार इस कवि के कुछ एक ही श्लोक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं।[3]

एक अभिलेखानुसार[४] हरिदत्त नाम के एक अन्य यशस्वी कवि को भी श्रीहर्ष

---

makes any translation into english impossible, is not a mere exhibition of pedantry which it seems to be to foreigner, but a highly interesting and enjoyable form of poetic expression to which there is no equal in European languages" (Shri Harsha pp 73-74)

१ Classical Sanskrit Literature Dr Keith, p 120

२ The Sanskrita Poems of Maura, by Quackenbos (Coulumbia clasical Sanskrit Literature, Krishnamachari, pp 316-317

३ Classical Literature Dr Keith, pp 120-121

४ Epigraphia Indica Vol I, p. 180
Harsha Mukherji, p 150

का सम्मान प्राप्त था और 'लाइफ' (पृ० १५०) के अनुसार सम्राट हर्ष ने अपने युग के महान् पण्डित और विश्रुत विद्वान जयसेन की उड़ीसा के अनेक गाँव दान में देने की इच्छा की थी ।

देव हर्ष के युग के एक महान् कवि भर्तृहरि भी माने जाते हैं, लेकिन वे उपरोक्त तीन कवियों की तरह राजप्रश्रय में नहीं थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद लोकप्रियता में दूसरा स्थान भर्तृहरि को ही प्राप्त है।[1]

इस युग में संस्कृत के साथ-साथ साहित्यिक भाषा के रूप में प्राकृत का भी प्रचलन था और उसका उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था।[2]

शिक्षा की उन्नति

विद्यानुरागी देव हर्ष के शासन में पंडितों एवं विद्वानों को जो प्रतिष्ठा और प्रश्रय प्राप्त हुआ उससे शिक्षा की उन्नति और प्रसार में भी बहुत बढ़ावा मिला। ह्वेनसाग ने लिखा है कि "चूँकि विद्या और प्रतिभा का राज्य बहुत आदर करता था, अतः जनसाधारण में भी विद्वानों का बहुत मान और आदर था। अधिकारी वर्ग भी पंडितों का सम्मान करते थे। विद्या की इस प्रतिष्ठा के कारण लोगों में विद्यार्जन करने की प्रवृत्ति तब बहुत बढ़ गयी थी। फलतः शास्त्र और विज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति, थकान और श्रम की चिन्ता न कर विद्या की खोज में प्रवृत्त होकर सैंकड़ों मील की यात्रा करके शिक्षाकेन्द्रों में पहुँचा करते थे। ये जिज्ञासु गरीब होने पर भी विद्या के अर्जन में त्रुटि नहीं आने देते थे और भीख माँग कर भी अपना काम चला लेते थे। निर्धन होने की उनको कोई चिन्ता न थी—वे तो केवल सच्चे ज्ञान की उपलब्धि को ही सब कुछ समझते थे। समाज में ऐसे ही लोगों का आदर-मान था, और जो लोग धनी और समृद्ध होकर केवल विलास का आलस्यमय जीवन व्यतीत करते थे उनका समाज में कोई आदर और सम्मान नहीं होता था और उन्हें अच्छा नहीं समझा जाता था।[3] इसमें सन्देह

---

१ Shri Harsha, Panikkar, p 75

२ Ibid

३ Now as the state holds men of learning and genius in esteem, and the people respect those who have high intelligence, the honours and praises of such men are conspicously abundant, and the attentions private and

नहीं कि जनता और राजा के इस रूप से ही हर्ष के युग में शिक्षा का यथेष्टप्रचार एवं प्रसार हुआ और शिक्षा का स्तर भी अपनी ऊँचाइयों को छू गया था।

शिक्षा का प्रकार

देव हर्ष के युग की शिक्षा-प्रणाली के प्रकार पर भी ह्वेनसांग ने प्रकाश डाला है। चीनी यात्री के अनुसार बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा सात वर्ष का हो जाने पर 'सिद्धम-चंग' पुस्तक से प्रारम्भ की जाती थी। यह पुस्तक बच्चों को वर्णपरिचित कराती थी। इस पुस्तक के प्रारम्भ में सिद्धम् लिखा होता था जिसका अर्थ था कि पढ़ने वाले का 'सिद्धि' अथवा सफलता मिले। यह भी विचार किया जाता है कि सिद्धम के साथ 'नमो सर्वज्ञ (बुद्ध)' भी जुड़ा होता था। बौद्धधर्मियों की प्रारम्भिक पुस्तकें सिद्धम् कहलाती थी और ब्राह्मणों की प्रारम्भिक पुस्तक (प्राइमीयर) 'सिद्धिरस्तु' कहलाती थी।

इत्सिंग के अनुसार ६ वर्ष का होने पर बच्चे को सिद्धम पुस्तक प्रारम्भ कराई जाती थी और इसके अध्ययन में ६ महीने लगते थे।[१]

---

official paid to them are very considerable Hence men can force themselves to a thorough acquisition of knowledge Forgetting fatigue they "expatiate in the arts and sciences", seeking for wisdom while "relying on perfect virtue", they "count not 1000 li a long journey" Though their family be in affluent circumstances, such men make up their minds to be like the Vagrants, and get their food by begging as they go about with them there is honour in knowing truth (in having wisdom), and there is no disgrace in being destitute As to those who lead dissipated idle lives, luxurious in food and extravagant in dress, as such men have no moral excellences and are without accomplishments, shame and disgrace come on them and their ill repte is spread abroad"—(Watters Vol I p 161)

१ Ibid, pp 154–155 and ff

सिद्धम् के बाद भारतीय बच्चो को पच-विद्याओ अथवा शास्त्रो के ज्ञान से विज्ञ कराया जाता था। ये पाच विद्यायें इस प्रकार थी—

१ व्याकरण या शब्दविद्या (बौद्ध, व्याकरण को शब्द-विद्या कहते थे)
२ शिल्पस्थानविद्या (शिल्प और अन्यान्य प्रकार की कलायें व उद्योग-धधे),
३ चिकित्सा विद्या (आयुर्वेद शास्त्र),
४ हेतुविद्या (तर्क अथवा न्यायशास्त्र)
५ आध्यात्म विद्या (बौद्ध दर्शनशास्त्र जिसमें सम्भवतया त्रिपिटक भी शामिल थे)।

प्रत्येक बौद्धधर्म के आचार्य अथवा पडित का इन पाचो विद्याओ में निपुण होना आवश्यक था।[१] बौद्ध युवको को इतर धर्मीय युवको की भाँति धर्म-शास्त्रो के साथ-साथ शिल्पादि की शिक्षा भी ग्रहण करनी होती थी।

ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ह्वेनसाग ने लिखा है कि वे चार वेदो का अध्ययन-अध्यापन करते थे। वेदो के पढाने वाले आचार्य को सम्पूर्ण वेदो के ज्ञान मे पार-गत होना आवश्यक था। ब्राह्मण आचार्यों की प्रशसा में ह्वेनसाग ने लिखा है कि वे विद्यार्थियो को विद्या की ओर प्रवृत्त करते है, और उन्हें ज्ञान अर्जन की प्रेरणा देते हैं। वे प्रमादी (आलसी) को उत्थित करते हैं, और मन्दबुद्धि वाले को कुशाग्र बना देते हैं। वे बडे परिश्रम और धीरज से काम लेते है और जब तक विद्यार्थी पूर्णता नही प्राप्त कर लेता तब तक पढाते ही रहते हैं। तीस वर्ष का होने पर विद्यार्थी की शिक्षा समाप्त हो जाती है और वे अपने कार्यो में लग जाते हैं। जीवन में प्रवेश करने पर उनका पहला काम अपने गुरुओ को गुरु-दक्षिणा देकर आभार प्रकट करना होता है।[२]

ह्वेनसाग ने कुछ ऐसे पडितो व आचार्यों का भी उल्लेख किया है जो ससार के कोलाहल से दूर एकात में तापस का जीवन व्यतीत करते थे। सामा-रिक सुख-लाभ तथा मान-अपमान का उन्हें विचार नही रहता था, और उनकी ख्याति लोक-व्यापी होती थी।

आचार्य गृह व गुरुकुल

हर्षचरित से विदित होता है कि आचार्यों के गृह विद्या अर्जन के भी केन्द्र थे। बाल्यावस्था में बाण ने अपने आचार्य के घर पर ही विद्याध्ययन किया

१ Ibid
२ Ibid, pp 159–60

और चौदह वर्ष की आयु में उपनयन आदि कार्यकलाप तथा समावर्तन संस्कार पूरा कर, स्नातक होकर वह अपने घर लौट आता था।[1]

इसके बाद पिता की मृत्यु हो जाने पर (माता तो उसकी पहले ही मर चुकी थी) बाण शोक से अभिभूत हो घर छोड़कर कुछ दिन अपने बालमित्रों के साथ इधर-उधर भटकता फिरा। अंत में उसने पुनः होश सम्भाला और अनिन्द्य (विशुद्ध) विद्याओं के विमल (उज्ज्वल) द्युति वाले गुरुकुलों में विद्या का सेवन किया, और फिर अपने कुल के योग्य विद्वान बन गया[2] —

> 'निरवद्यविद्याविद्योतितानि गुरुकुलानि च सेवमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत्'—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ७६)।

हर्षचरित से यह भी ज्ञात होता है कि राज्य के स्थाण्वीश्वर जैसे बड़े नगर विद्या के केन्द्र 'गुरुकुलों' तथा कला व शिल्प आदि के केन्द्रों के लिये सुविख्यात थे।

स्थाण्वीश्वर का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है कि—लासकों अथवा नर्तकों के लिये वह नगर संगीतशाला था, विद्या के अर्थियों के लिये 'गुरुकुल' था, गायकों के लिये गन्धर्वनगर था और वैज्ञानिकों (शिल्प के शास्त्रियों) के लिये 'विश्वकर्मा' का मन्दिर था—[3]

> संगीतशालेति लासकैः, गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः, गन्धर्वनगरमिति गायनैः, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः—(तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६५)

---

१ 'When, being now about fourteen years of age, he had passed through initiation and the associated rites, and had returned from his teacher's house (as a Snataka)',
Hc C & T, p 32 fn 3

२ 'But gradually thereafter by paying his respects to the schools of the wise brilliant with blameless knowledge, he regained the sage attitude of mind customary among his race' (Ibid, pp 33-34)

३ 'actors a concert hall, aspirants to knowledge the preceptor's home, singers the Gandharvas' city, scientists the Great Artificer's temple'—(Hc, p 82)

ह्वेनसाग ने भी नगरो को शिक्षा व शिल्प के केन्द्र इगित किया है। कान्यकुब्ज का वर्णन् करते हुये उस ने कहा है कि नगर के जन विद्या और शिल्पो के अर्जन में प्रवृत्त रहते थे।[१]

इसी तरह वाराणसी को भी विद्या का केन्द्र इगित करते हुये चीनी-यात्री ने लिखा है कि वहाँ के पौर-जन विद्याध्ययन में बहुत रुचि रखते थे।[२] प्रकट है कि स्थाण्वीश्वर, कन्नौज, और वाराणसी आदि साम्राज्य के बड़े नगर शिक्षा तथा शास्त्रो (विद्याओ) और शिल्पो के केन्द्र-स्थल थे।

अग्रहार-ग्राम, जो वेदज्ञ ब्राह्मणो को दान में दिये जाते थे, निश्चय ही ब्राह्मणधर्म के अध्ययन-अध्यापन के केन्द्र रहे होगे।

एकान्त में अध्ययन में निमज्ज पण्डितो एव विद्वानो का भी ह्वेनसाग ने उल्लेख किया है, जो नगर के कोलाहल से दूर और मान-अपमान की भावनाओ से विरत रहकर जीवन बिताते थे। राजागण उनकी प्रतिष्ठा करते थे, और उन्हें दरबार मे बुलाने की धृष्टता नही किया करते थे।[३]

---

१ 'The people were given to learning and the arts'— (Watters, Vol I, p 340)

२ The disponsition of the people is soft and humane, and they are earnestly given to study' S Beal, vol II p 44 Watters, Vol II, p 47

३ Ibid pp 160-161—"There are men who, far seen in antique lore and fond of the refinements of learning, "are content in seclusion", leading lives of continence These come and go (lit Sink and float) outside of the world, and promenade through life away from human affairs Though they are not moved by honour or reproach, their fame is far spread The rulers treating them with ceremony and respect cannot make them come to court"

इस तरह के महान् आचार्यों और तपस्वियो के लिये भारत हमेशा से प्रसिद्ध रहा है। चौथी शताब्दी ई० पू० में सिकन्दर और उसके साथी यूनानियो को भी तक्षशिला के उपान्तो में रहने वाले एकात सेवी—आचार्यों का वृतात मालूम था। ढूढने पर आज भी सम्गर की आखो से दूर ओट में

बौद्ध मठ व विहार

हर्ष के युग में बौद्ध मठ व विहार भी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र स्थान थे। ह्वेनसाग ने अनेक ऐसे विहारों का उल्लेख किया है जहाँ पर बौद्धधर्म और दर्शन की उच्चशिक्षा दी जाती थी। उसने स्वयं कई एक मठों अथवा विहारों में ठहर कर सुप्रसिद्ध आचार्यों से शिक्षा ग्रहण की थी।

कश्मीर की राजधानी में जयेन्द्र-विहार के वृद्ध आचार्य से ह्वेनसाग ने बौद्धशास्त्र, न्यायशास्त्र और हेतुविद्याशास्त्र का अध्ययन किया था। कश्मीर में धर्मप्रेमी अनेक बौद्ध पण्डितों से मिला था, जो अपने-अपने विषयों में पारंगत थे। उसने लिखा है कि कश्मीर बहुत प्राचीन काल से विद्या का प्रमुख केन्द्र रहा है।[1]

पंजाब और जालन्धर के विहारों में भी ह्वेनसाग ने अनेक शास्त्रों, (सूत्रों, पंचस्कन्ध-शास्त्र, अभिधर्मशास्त्र, अभिधर्मप्रकरण, शासनशास्त्र आदि) का अध्ययन किया था। जालन्धर के नगरधन-मठ के आचार्य चन्द्रवर्मा से ह्वेनसाग ने त्रिपिटक का अध्ययन किया था।

स्रुघ्न में भी चीनी जिज्ञासु ने वहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध-आचार्य जयगुप्त से त्रिपिटक आदि का अध्ययन किया था।

मतिपुर के एक बौद्ध मठ में वहाँ के वृद्ध आचार्य मित्रसेन से भी ह्वेनसाग ने त्रिपिटक तथा अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया था। कन्नौज के भद्र-

---

रहने वाले महान् आचार्य और तपस्वी भारत में मिल सकते हैं। वर्त्तमान् युग में श्री अरविन्द ऐसे ही तपस्वी थे। श्री हर्ष के समय में एकांत में ध्यान और मनन करने वाले महान् तपस्वियों और ऋषियों की परम्परा में हमें हर्षचरित और लाइफ से कुछ नाम प्राप्त होते हैं। हर्षचरित के विन्ध्य-अटवी में रहने वाले दिवाकरमित्र और लाइफ में उल्लेखित पंजाब के वनों में रहने वाले वंदन और शास्त्रज्ञ एक ब्राह्मण तपस्वी, और महान् पण्डित ज्ञानी क्षत्रिय जयसेन, जिसने मगध के राजा पूर्णवर्मा और उसके बाद श्रीहर्ष शीलादित्य द्वारा अर्पित अनेक नगरों का राजस्व उपहार में लेना स्वीकार नहीं किया था, सांसारिक माया-मोह, लाभ-अलाभ और मान-अपमान की भावनाओं से दूर रहने वाले आचार्य और तपस्वी थे (Life Beal p 74 and pp 153-154)।

१. Life Beal PP 69-70

विहार में ह्वेनसाग ने तीन महीने ठहर कर वहाँ के त्रिपिटकाचार्य वीर्यसेन से विभाषा आदि ग्रन्थो का अध्ययन-मनन किया था।[१]

पूर्वीय जनदपो के अनेक प्रसिद्ध मठो का भी ह्वेनसाग ने उल्लेख किया है, जैसे वैशाली में श्वेतपुर का[२] मठ, गया का महाबोधि मठ[३], और कर्णसुवर्ण का रक्तावित मठ[४] आदि। मुँगेर का बौद्ध विहार भी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था जहाँ रहकर ह्वेनसाग ने आचार्य तथागतगुप्त और क्षान्तिसिंह से शास्त्रो का अध्ययन किया था।[५]

इस प्रकार उत्तर मे कश्मीर से लेकर मध्यप्रदेश मे, पूरब में बिहार तथा बगाल में, पश्चिम भारत मे बल्लभी और दक्षिण में काची आदि अनेक स्थानो मे सर्वत्र ही श्री हर्ष के समय अनेक बौद्ध मठ व विहार विद्यमान थे, जहाँ पर जिज्ञासु व विद्यार्थी महान् आचार्यों से शिक्षा ग्रहण कर अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त किया करते थे।

नालन्दा विहार

हर्षयुगीन बौद्धमठो और विहारो में नालन्दा विहार शिक्षा और विद्या का सबसे बडा और प्रमुख केन्द्र था। लाइफ के अनुसार भारत में सघाराम सैकडो की सख्या में थे, लेकिन सबसे भव्य और विशाल नालन्दा का विहार था।[६] ह्वेनसाग के अनुसार आचार्यों और शिक्षार्थी-भिक्षुओ को मिला कर लगभग १०,००० व्यक्ति नालन्दा विहार में रहा करते थे। जिज्ञासु भिक्षुओ में वे भी शामिल थे जो सुदूर देशो से धर्म और दर्शन के सम्बन्ध मे अपनी शकाओ का समाधान पाने के लिए वहाँ आकर रह रहे थे। आचार्यों की सख्या कुल मिल कर १,५१० थी। प्रमुख आचार्य शीलभद्र थे। विहार के भीतर प्रति दिन एक सौ व्याख्यानो के दिए जाने का प्रबन्ध रहता था, और प्रत्येक विद्यार्थी को, चाहे थोडा ही समय के लिए सही, उनमें अवश्य शामिल होना पडता था।

---

१ Ibid, pp 77-74
२ Watters, II, p 79
३ Ibid, p 136, Life, p 158
४ Watters, II, pp 191–192
५ Ibid, pp 179–180
६ Life, pp 110–113 and Watters, II, pp 164–165

नालन्दा विहार को श्रीहर्ष का पूर्ण सरक्षण प्राप्त था। लाइफ के अनुसार राजा (हर्ष से अभिप्राय है) पण्डितों अथवा आचार्यों की प्रतिष्ठा करता था और विहार के भरण-पोषण के लिए उसने एक सौ गाव की मालगुजारी जागीर में दे रखी थी। इन गावो के दो सौ गृहस्थ प्रतिदिन इतना चावल, दूध, दही और मक्खन आदि विहार को पहुँचाया करते थे कि विहार के भिक्षुओं आदि को अपनी आवश्यकताओं के लिए किसी से कुछ इच्छा करने की अपेक्षा नहीं रहती थी। यहाँ पर जिज्ञासु विद्याओं और शास्त्रों में 'पूर्णता' लाभ करते थे।

नालन्दा विहार में महायान बौद्धधर्म के साथ बौद्धधर्म के अन्य अट्ठारह सम्प्रदायों के दर्शनों का भी अध्ययन किया जाता था। इनके अलावा ब्राह्मण धर्म के प्रमुख ग्रन्थ-वेदों का भी अध्ययन-अध्यापन किया जाता था। अध्ययन के अन्य विषयों में हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, तान्त्रिकविद्या और सांख्यदर्शन आदि शामिल थे।

नालन्दा के जिज्ञासु भिक्षु विहार के नियमों का पूर्णरूप से पालन किया करते थे। सयमित और नियमित जीवन में वे भारत भर में आदर्शरूप माने जाते थे। भिक्षुओं का सम्पूर्ण दिन अध्ययन-मनन और मीमांसा (तर्क) करने में व्यतीत होता था। वे दिन भर इतना व्यस्त रहते थे कि दिन उन्हें पूरा नहीं पड़ता था। सभी भिक्षु एक दूसरे को कर्त्तव्यों के प्रति उत्साहित एव प्रेरित किया करते थे, और बड़े व छोटे सभी 'पूर्णता' लाभ करने में एक दूसरे के सहायक-साध्य थे। लाइफ के अनुसार विहार के आचार्यों का ऐसा प्रभाव था कि उसकी स्थापना के सात सौ वर्षों के भीतर किसी ने कभी विहार के नियमों का उल्लघन अथवा अतिक्रमण नहीं किया था।[१]

नालन्दा विहार के प्रधान आचार्य शीलभद्र के अलावा ह्वेनसाग ने वहा के अन्य प्रसिद्ध आचार्यों के भी कुछ नाम दिए हैं जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुयी थी। चीनी यात्री ने लिखा है कि धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, जिनमित्र और जिनचन्द्र आदि नालन्दा के आचार्य बहुत ही प्रभावान् और विद्वान्

---

१ Life Beal, pp 112–113 Records II., p 170 —

"Their (भिक्षु) conduct is pure and unblamable They follow in sincerity the precepts of the moral law The rules of this convent are severe, and all the priests are bound to observe them"

पुरुष थे। इन आचार्यो ने अनेक सुप्रसिद्ध ग्रन्थो की रचना भी की थी। उनके ग्रन्थ लोकप्रिय और विद्वानो द्वारा समादरित थे।[1]

नालन्दा विहार मे प्रवेश के इच्छुको की प्रवेशार्थ कडी परीक्षा ली जाती थी। ह्वेनसाग कहता है कि जो नालन्दा विहार में प्रवेश प्राप्त करता और वहाँ की विचारगोष्ठियों व भाषणो में भाग लेना चाहता था, उससे प्रथम प्रवेशद्वार का सरक्षक अनेक कठिन प्रश्न पूछता था, जो उत्तर नही दे पाता था उसे भर्त्ती नही किया जाता था। भर्त्ती केवल वही किए जाते थे जो प्राचीन और नवीन दोनो शास्त्रो मे विज्ञ प्रमाणित होते थे।

प्रवेश द्वार के सरक्षक से अभिप्राय विहार के प्रमुख आचार्य से प्रतीत होता है। प्रवेश के लिए आये हुए दस व्यक्तियो मे से कठिनाई से दो तीन ही प्रवेश प्राप्त कर पाते थे। ह्वेनसाग के इस कथन से यह भी प्रकट है कि नालन्दा विहार ऊँची शिक्षा का केन्द्र था इसीलिए ज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होने वाले शिक्षार्थी ही उसमें लिए जाते थे। नालन्दा का विद्यार्थी अथवा स्नातक होना गौरव की बात समझी जाती थी, और उनका देश भर में मान था। अत कतिपय व्यक्ति चोरी से अपने को नालन्दा का स्नातक कहकर जहाँ जाते आदर-मान पाते थे।[2]

नालन्दा विहार में बहुत से मठ शामिल थे। ह्वेनसाग के अनुसार नालन्दा विहार का पहला मठ बुद्ध के निर्वाण के कुछ समय बाद शक्रादित्य नाम के एक राजा ने बनवाया था। उसके बाद उसके बेटे बुद्धगुप्त ने पहले मठ के दक्षिण में दूसरा मठ बनवाया। दूसरे मठ के पूरब मे तथागतगुप्त ने तीसरा मठ बनवाया। इस मठ के उत्तर पूरब मे सम्राट बालादित्य ने चौथा मठ बनवाया। यह बाला-

---

१ ह्वेनसाग के समय में शीलभद्र नालन्दा विहार का प्रमुख आचार्य था। गुणमति, स्थिरमति और धर्मपाल, शीलभद्र के पूर्ववर्ती आचार्य थे। स्थिरमति की तिथि ई० सन् ४०० के आसपास मानी जाती है। और गुणमति उसका समकालीन था। चन्द्रपाल, भी ह्वेनसाग के पूर्व के आचार्यों में था। प्रभामित्र, जिनचन्द्र और ज्ञानचन्द्र ह्वेनसाग के समय में ही नालन्दा के आचार्य थे। इन आचार्यो में चन्द्रपाल, ज्ञानचन्द्र और प्रभामित्र के रचे ग्रन्थ बौद्ध-साहित्य म उपलब्ध नही है—(Watters II, pp 165–169 और Recods II, Beal, p 171)।

२ Watters II p 165 and Records II pp 170–171–172

दित्य, चीनी यात्री कहता है कुछ समय बाद बौद्धधर्म ग्रहण कर स्वयं अपने बनवाये मठ में रहने लगा था। बालादित्य ने नालन्दा में बुद्ध का ३०० फीट ऊँचा एक उत्तुंग मन्दिर का निर्माण भी करवाया था। चौथे मठ के पश्चिम में बालादित्य के बेटे वज्र ने पाँचवा मठ बनवाया। इस मठ के उत्तर तरफ मध्यभारत के एक राजा ने एक और विशाल मठ बनवाया। इन सब मठों को घेरती हुई ईंटों की एक ऊँची दीवार (प्राकार) बनी थी और उसमें भीतर आने-जाने के लिए केवल एक तोरण अथवा फाटक बना था। नालन्दा विहार अपने भव्य प्रासादों, सुसज्जित अट्टालिकाओं और पर्वत के समान परी देश के से विशाल गुम्बजों की शोभा से सज्जित जगमगाया करता था।[१]

---

१ Watters II, pp 164-165 and 170 Life, pp 111-112 Records Beal, II pp 170-171

ह्वेनसांग ने शक्रादित्य को नालन्दा विहार का संस्थापक कहा है। सामान्यतः इतिहासज्ञ शक्रादित्य को गुप्तसम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (=शक्रादित्य) से मिलाते हैं जिसका राज्यकाल लगभग ४१५-४५५ ई० सन् तक रहा—(Journal of the Bihar Orissa Research Society, 1928, p 1 ff— Political History of Ancient India H RayChoudhary, 501)।

लामा के अनुसार नालन्दा की स्थापना ह्वेनसांग के समय से ७०० वर्ष पूर्व हुई थी। इस कथन के अनुसार नालन्दा की स्थापना करने वाला शक्रादित्य ई० पू० पहली शताब्दी में होना चाहिए (Life, Beal, p 112 and Note 2) किन्तु प्रचलित मतानुसार कुमारगुप्त प्रथम ही नालन्दा के संस्थापक माने जाते हैं।

बुद्धगुप्त को गुप्तसम्राट बुद्धगुप्त से मिलाया जाता है, जिसका राज्यकाल लगभग ४७७-४९६ ई० सन् के भीतर रहा। कहा जाता जाता है कि वह महेन्द्रादित्य कुमारगुप्त प्रथम (ह्वेनसांग का शक्रादित्य) का शायद सबसे कनिष्ठ पुत्र था (Political History of Ancient India. p 501)। ह्वेनसांग का तथागतगुप्त इसी बुद्धगुप्त का पुत्र माना जाता है और बालादित्य को अन्तिम यशस्वी गुप्तसम्राट भानुगुप्त (अन्तिम तिथि ५१०-११ ई० सन्) समझा जाता है, जिसका उत्तराधिकारी और पुत्र वज्र हुआ। महान् गुप्तों के वंश में वज्र शायद अन्तिम सम्राट हुआ जिसे सम्भवतया मन्दसौर अभिलेख (५३३ ई०) के यशोधर्मन ने हरा कर मार डाला था (Ibid, pp 503-505)।

लाइफ के अनुसार शीलादित्य ने भी नालन्दा में एक सौ फीट ऊँचा एक विहार बनवाया था जो पीतल की चादर से मण्डित था।[१]

ह्वेनसाग ने नालन्दा विहार का जो वर्णन दिया है उससे प्रकट है कि यह विहार अत्यन्त प्राचीन था और सातवी शताब्दी में वह एशिया का एकमात्र प्रमुख विश्वविद्यालय का स्थान ग्रहण कर चुका था, जिसमें भारत के सभी भागो के अलावा, बाहरी देशो चीन और मंगोलिया आदि से भी विद्यार्थी व जिज्ञासु हजारो मील की यात्रा सम्पन्न कर प्रवेश पाने के लिए पहुँचा करते थे। इस विश्वविद्यालय को श्रीहर्ष का पूरा सरक्षण प्राप्त रहा जिस कारण उसे (नालन्दा

नालन्दा विहार पर श्री पानिक्कर की सम्मति—"Though Nalanda was a Buddhist institution, the teaching there was not carried on in a sectarian spirit All the different sects of Buddhism were represented and even Brahminical studies were not neglected There can be no doubt that Nalanda was one of the greatest educational institutions that ever existed In the seventh century it was unique in the world as being the only international educational centre The enthusiasm of the chinese scholar for his Alma Mater may have been coloured but the conscientious and upright monk and the careful and pains'aking student whose whole life was one long record of perseverance in the cause of learning is certainly not the one to give anything but a strictly honest description of what he saw" (Shri Harsh pp 49-50)

श्री मुखर्जी—" Nalanda stood for the ideal of freedom in learning, and welcomed knowledge from all quarters, from all sects and creeds It was a genuine university in the universal range of its studies and not a mere sectarian, denominational school" (Harsha, p 132)

१ Life, pp 158-159

विहार) अपने उच्चादर्शों और उद्देश्यों के अनुरूप कार्य संचालन में कोई कठिनाई न रह गयी थी।

दुर्भाग्य से हूणों और प्रमुखतया १३वीं शताब्दी में तुर्कों ने विद्या और ज्ञान के इस महान् अधिष्ठान को भ्रष्ट ही नहीं नष्ट भी कर दिया।



अध्याय ८

धर्म-पराक्रमी देवानांप्रिय हर्ष



देव हर्ष के पूर्वज ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी थे। हर्षचरित और अभिलेखों के विवरणानुसार पुष्यभूति वंशीय राजा मुख्यतया शिव और सूर्य के परम-भक्त रहे।

हर्षचरित में पुष्यभूति वंश का आदि पुरुष अथवा संस्थापक महाराज पुष्यभूति को 'सर्ववर्णों' की रक्षार्थ धनुषधारण करने वाला कहा गया है (सर्व-वर्णधर धनुर्दधान)। वह सहज रूप से शैशवकाल से ही भगवान शिव का अनन्य भक्त था—

सहजैव शैशवादारभ्यानन्यदेवता भगवति,

और स्वप्न में भी वह वृषभध्वज (शिव) की पूजा किये बिना कोई आहार नहीं करता था—

'अकृतवृषभध्वजपूजाविधिर्न स्वप्नेऽप्याहारमकरोत्'—

उसकी मान्यता थी कि 'अचलदुहितृपतिम्' (हिमालय की पुत्री पार्वती के पति) पशुपति (शिव) के अलावा त्रिलोक में अन्य कोई देवता नहीं है—

'पशुपतिं प्रपन्नोऽन्यदेवताशून्यममन्यत त्रैलोक्यम्'।

पुष्यभूति की शिव भक्ति के फल से स्थाण्वीश्वर के घर-घर में खण्डपरशु शिव की ही पूजा होती थी—'तथा हि गृहे-गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशु' और

सम्पूर्ण विषय (प्रदेश) में होम में पड़ने वाले गुग्गुल की गन्ध से मिले और बेल-पत्रों की माला को डुलाती हुयी वायु बहा करती थी—

'बहुलस्य होमाग्निज्वालाविलीयमानबहलगुग्गुलु गन्धगर्भा बिल्वपल्लव-दामदोलाद्राहिन पुन्न विषयेषु वायव ।'[1]

पुष्यभूति के वंशजों में प्रभाकरवर्धन भी ब्राह्मणधर्म के महान् पोषक हुये। हर्षचरित में उल्लेख है कि उसके शासनकाल में निरन्तर यज्ञ-यूपों के कारण कृतयुग (सतयुग) अंकुरित हो चला था—

'यस्मिश्च राजनि निरन्तरैर्यूपनिकरैरङ्कुरितमिव कृतयुगेन'—और दिशाओं में यज्ञ के धुएँ (धूम) के फैल जाने से 'कलि' पलायित हो गया था—

'दिङ्मुखविसर्पिभिरध्वरधूमैः पलायितमिव कलिना'।

नगर चूने से पुते धवल देवमन्दिरों से ऐसा लगता था, मानों स्वर्ग ही वहाँ उतर आया था—'सुधाधवलैर्देवगृहैरिव स्वर्गेण'—तथा

देवमन्दिरों के शिखर पर फहराती हुई धवल पताकाओं से लगता था मानो धर्म पल्लवित हो चला है—

सुरालयशिखरोद्भूतैर्धवलध्वजैः पल्लवितमिव धर्मेण—

नगर के बाहर, सभा भवनों दान गृहों (सत्र) पानशाला (प्रपा), प्रावसथों (=पर्णशाला, कुटिया जहाँ यज्ञकर्ता की पत्नी व परिवार वाले बैठते थे), और मण्डपों आदि से लगता था मानो गाँव पर गाँव वहाँ बन गये थे—

बहिःपरचितविकटसभासत्रप्रपाप्रावसथमण्डपैः प्रसूतमिव ग्रामैः—[2]

प्रभाकरवर्धन, बाण लिखता है निसर्गतः (स्वभावतः) आदित्य (भगवान सूर्य) का भक्त था। वह प्रति दिन सूर्योदय के समय स्नान करके, श्वेतदुकूल धारण कर और सिर को सुफेद वस्त्र से प्रावृत (ढक) कर, पूर्व की ओर मुँह

---

१ हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६८-१७०-१७१

२ चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०५

थॉमस और कॉवेल ने 'प्रपा' का अर्थ सराय किया है। भाष्यकार ने प्रपा का अर्थ 'यत्र तोयदानम्' अर्थात्—पानशाला कहा है। प्रावसथ का अर्थ थॉमस-कॉवेल ने भी भाष्यकार के अनुरूप 'पर्णशाला' ही किया है—
Hc C & T p 102 fn 5

करके सूर्य के प्रति—अनुरक्त हो, रक्तकमलों से कुङ्कुम-पंक से बनाये गये सूर्य-मण्डल में अर्घ देता था—

कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्घं ददौ'[1]

देव हर्ष के ताम्रपत्र-अभिलेखों और सोनपत मुद्रा-लेख[2] में भी उसके पिता प्रभाकरवर्धन, पितामह आदित्यवर्धन और परपितामह राज्यवर्धन (प्रथम) को परमादित्यभक्त कहा गया है।

पुष्यभूति वंश में देव हर्ष के ज्येष्ठ भ्राता परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्धन (द्वितीय) प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने बौद्धधर्म अंगीकृत किया था। इसीलिये श्री हर्ष के अभिलेखों में उन्हें परमसौगत (मन्थर गति से चलने वाले बुद्ध = सुगत, के अनुयायी) कहा गया है।

देव हर्ष की छोटी बहिन राज्यश्री, पुष्यभूति राजकुल में बौद्धधर्म ग्रहण करने वाली दूसरी व्यक्ति थी। हर्षचरित में शोक से विह्वल राज्यश्री, भगवान बुद्ध का आह्वान करती हुयी कहती है—हे भगवान् सुगत, क्या संतप्त भक्तजन के लिये तुम भी सो गये हो—

'भगवन्, भक्तजने सज्वरिणि सुगत सुप्तोऽसि[3]—

हर्षचरित और अभिलेखों से प्रकट है—कि देव हर्ष स्वयं अपने जीवन के पूर्वार्द्ध से भी अधिक समय तक ब्राह्मणधर्म के अनुयायी और महेश्वर शिव के भक्त थे।

हर्षचरित के विवरणानुसार गौडाधिप के विरुद्ध अभियान की तैयारी के उपलक्ष्य में देव हर्ष ने चाँदी और सोने के कुम्भों (घडों) में भरे जल से स्नान किया, और तब परमभक्ति के साथ नीललोहित (रुद्र = शिव) की पूजा की, प्रज्वलित अग्नि में, जिस की शिखायें (लपटें) दक्षिण की ओर आवर्त थी, होम किया, रत्न, तथा चाँदी और सुवर्ण से भरे सहस्त्रों तिलपात्र, और सोने के

---

१ हर्षचरित चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०८ Hc C & T p 104 fn 2

२ C I I Vol III p 232

३ अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४०

'O holy Sugata, thou art asleep to thy distracted worshippers'—Hc C & T, p 246

पत्रों से मढ़े सींग और खुर वाली करोड़ों गाय ब्राह्मणों को दान में प्रदान कीं—[1]

> 'कलधौतैः शातकौम्भैश्च कुम्भैः स्नात्वा विरचय्य परमया भक्त्या भगवतो नीललोहितस्यार्चामुदर्चिषं हुत्वा प्रदक्षिणावर्तशिखाकलापमाशु-शुक्षणिं, दत्त्वा द्विजेभ्यो रत्नवन्ति राजतानि जातरूपमयानि च सहस्र-सम्मितपात्राणि कनकपत्रलतालङ्कृताग्रशृङ्गखुरशिखराणां गवां चार्बुदानि—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३५९-३६०)।

देव हर्ष के सरस्वती के तीर पर बने राजमंदिर में, ब्राह्मधर्म की विधि-अनुसार वेदी पर पल्लव सहित सुन्दर हेम कलश रखे गये थे—वन पुष्पों की मालायें (वन्दनवार) बाँध दी गयी और श्वेत पताकायें फहरा दी गयी थी, तथा ब्राह्मण मंगलपाठ करने में लगे थे—[2]

> वेदीविनिहितपल्लवकलशहेमकलशे, बद्धवनमालादाम्नि, धवलध्वज-मालिनि पठद्द्विजन्मनि'—वही, पृ० ३६१)।

यहीं पर ग्राम के अक्षपटलिक ने आकर सम्राट हर्ष से भेंट की थी और वृषभ चिह्न से अंकित नव-निर्मित सुवर्ण की मुद्रा सम्राट के हाथों में अर्पित की थी—

> वृषाङ्कामभिनवघटितां हाटकमयीं मुद्रां समुपानिन्ये—(वही, पृ० ३६१)।

हर्षचरित में सम्राट हर्ष को ब्राह्मणों का भक्त—'वर्णेश्वर इति विप्रैः'

---

१ 'The king had bathed in golden and silver vessels, had with deep devotion offered worship to the adorable NILALOHITA fed the up-flaming fire, whose masses of blaze formed a rightward whorl, bestowed upon Brahmans sesamum vessels of *precious stones*, *silver*, and gold in thousands, myriads also of cows having hoofs and horn tips adorned with creepers of gold-work'—

Hc C & T, p 197

२ 'It (temple—राजमंदिर) displayed , an altar supporting a golden cup adorned with sprays, affixed chaplets of wild flowers, wreaths of white banners, and muttering Brahmans—(Ibid, p 198)

'धर्म का प्रवर्तक (आवर्तनमिव धर्मस्य)' और मनु की तरह वर्ण और आश्रम की व्यवस्था का संरक्षक (मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थाना) कहा गया है।[१]

श्री हर्ष की सोनपत-मुद्रा का शीर्ष शिव के वाहन 'वृषभ' के चिह्न से अंकित है, और नालंदा में प्राप्त मुद्राओं पर परममहेश्वर, महेश्वराइव सर्व (भौम) परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री हर्ष' अंकित है।[२]

देव हर्ष का जो सिक्का मिला है, उसके सामने की तरफ एक अश्वारोही का चित्र और लेख 'हर्षदेव' अंकित है, और पृष्ठ भाग में सिंहासनासीन देवी का चित्र अंकित है।

श्री हर्ष के नाटक—रत्नावली और प्रियदर्शिका के मंगल श्लोकों में शंभु (शिव-हर), गिरिजा (गौरी-पार्वती) तथा गंगा, ब्रह्मा, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती तथा कुमार और दक्ष आदि ब्राह्मण देवी देवताओं का उल्लेख है।

नागानंद नाटिका में भी, जो भगवान बुद्ध की स्तुति से आरम्भ होता है, *गौरी, गरुड़ आदि ब्राह्मण देवी-देवताओं का नामोल्लेख है।*

हर्षचरित में यह भी उल्लेख है कि देवहर्ष ने प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार को, जिस ने शैशव में ही संकल्प किया था कि वह शिव के अलावा किसी को नमन नहीं करेगा, मैत्री स्थापना के साथ यह आश्वासन दिया था कि 'मित्र के रूप में जब मैं साथ हूँ तो कुमार, जो स्वयं वीर्यशाली है, शिव के अलावा किसी दूसरे के सामने क्यों झुकेंगे—

स्वयं बाहुशाली मयि च समालम्बितशरासने

सुहृदि हरादृते कमन्यं नमस्यति'—(सप्तम उच्छ्वास पृ० ३९२–३९४)।

निर्विवादतः सम्राट हर्ष सहजतः ब्राह्मणधर्म के मानने वाले थे और अपने आदि पूर्वज पुष्यभूति की भाँति महेश्वर शिव के अनन्य भक्त एवं अनुरक्त थे।

श्री हर्ष को 'परममाहेश्वर', अंकित करने वाला बासखेड़ा ताम्रपत्र पर तिथि संवत् या संवत्सर २२ है और मधुबन ताम्रपत्र पर तिथि संवत् २५ दी गयी है।

---

१ द्वितीय उच्छ्वास, १२९, १३१, १३६

२ Archaeological survey Report, Eastern circle, 1917-18, p 44

यह निश्चित नहीं है कि श्री हर्ष ने अपने नाम पर स्वयं संवत् का प्रचलन किया था। सम्भवतया उन के ताम्रपत्र पर अंकित संवत् उन के राज्यकाल के समय से शासन के वर्षों की गणना को इंगित और अंकित करता है। कौटिल्य ने शीत, उष्ण और वर्षा के भेद से काल को तीन प्रकार का कहा है और इस काल के मुख्य भाग, रात्रि, दिन, पक्ष (कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष), मास, ऋतु, अयन (६ मास का उत्तरायण और ६ मास का दक्षिणायन), संवत्सर (एक वर्ष का समय) एवं युग बताये हैं—

> काल शीतोष्णवर्षात्मा। तस्य रात्रिरह पक्षो मास
> ऋतुरयन संवत्सरो युगमिति विशेषा (अर्थशास्त्र, ९ अधिकरण १ अध्याय)।

अत संवत् को एक वर्ष का समय मानकर, मधुबन ताम्रपत्र श्री हर्ष के शासनारूढ होने के २५वें वर्ष प्रेषित हुआ था। इस गणनानुसार सम्राट हर्ष जो लगभग ६०६–०७ ई० सन् में सिंहासनारूढ हुए थे, अपने शासन के २५ संवत्सर पूरा होने तक (अर्थात् ई० सन् ६३२) ब्राह्मणधर्म के ही अनुयायी रहे, और बौद्धधर्म में वस्तुत ह्वेनसांग से भेंट होने के समय से प्रविष्ट हुए थे।

देव हर्ष ने बौद्धधर्म यद्यपि जीवन के बहुत उत्तरार्द्ध में अपनाया था, किन्तु हर्षचरित में बाण के कतिपय उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि बुद्ध और बौद्ध-धर्म के प्रति, उन का अनुराग प्रारम्भ से ही विद्यमान था। शायद परम सौगत ज्येष्ठ भाई राज्यवर्धन, बहनोई ग्रहवर्मा और बहिन राज्यश्री की बौद्धधर्म में जो अनुरक्ति थी, उसी ने सम्राट हर्ष के हृदय को भी भगवान् बुद्ध के प्रति अनुरक्त कर दिया था, यद्यपि भाई के शत्रुओं से निपटने और दिग्विजय का कार्य पूरा होने तक वे बौद्धधर्म में शायद दीक्षित होने से रुके रहे।

हर्षचरित में बाण ने कहा है कि ज्येष्ठ भाई राज्यवर्धन के वल्कल धारण कर तपोभूमि में जाने का सकल्प सुनकर श्री हर्ष ने भी भाई का अनुसरण करने का मन ही मन सकल्प कर लिया था (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३१७–३२०)।

विन्ध्याटवी में भदन्त दिवाकरमित्र का दर्शन करने पर देव हर्ष बहुत प्रभावित हुए थे, और उन्हें लगा था कि 'गुणों के अनुरागी आदरणीय ग्रहवर्मा ने सच ही इन (भदन्त दिवाकरमित्र) के बहुत से गुणों का दर्शन किया था—

> स्थाने खलु तत्रभवान् गुणानुरागी ग्रहवर्मा बहुशो वर्णितवानस्य गुणान्'—
> (अष्ट उच्छ्वास, पृ० ४२६)।

अत भदन्त दिवाकरमित्र से राज्यश्री की भेंट कराते समय श्री हर्ष ने

कहा था कि ये 'आचार्य तुम्हारे पति ग्रहवर्मा के दूसरे हृदय और हमारे गुरु हैं' (वही, पृ० ४४६)।

आचाय दिवाकरमित्र भी स्वय श्री हर्षदेव की सौजन्यता से अत्यन्त प्रभावित हुये थे और सम्राट के दर्शनों से अभिभूत होकर आचार्य ने कहा था 'इस तपस्या के क्लेश ने उन्हें इस जन्म मे ही देवानाप्रिय के असुलभदर्शनों के दर्शन के रूप में फल दे दिया—

> इहापि जन्मनि दत्तमेवास्माकममुना तप क्लेशेन फलमसुलभदर्शनं दर्शयता देवानाप्रियम्'—(वही, पृ० ४२८)।

श्री हर्ष के लिए आचार्य द्वारा 'देवानाम' प्रिय विशेषण का प्रयुक्त किया जाना, इगित करता है कि आचार्य ने उन्हें बुद्ध की भाति ही सुगत समझा और बौद्धधम के सन्दर्भ में उन्हें अशोक के सदृश्य धर्म-पराक्रमी 'देवानाप्रिय' अनुमानित कर लिया था।

आचार्य का यह अनुमान यथार्थ था, यह श्री हर्ष द्वारा आचार्य को दिये गये बचनो से सिद्ध है। सम्राट हर्ष ने आचाय दिवाकरमित्र को सम्बोधित करते हुये कहा था—'आर्य। ऐसे रत्न प्राय मनुष्यो को नही मिलते। यह तो आर्य की तपस्या सिद्धि से या देवता के प्रसाद से ही सम्भव हुआ। जब से हम ने आप को देखा तभी से हमारा मन आप के प्रभूत गुणो से आप के वश मे हो गया है। मैं जीवन भर के लिए अपना शरीर आर्य के उपयोग के लिए सकल्पित करता हूँ—

> आर्य। रत्नानामीदृशानामनर्हा प्रायेण पुरुषा । तप सिद्धिरियमार्यस्य देवताप्रमादो वा। दर्शनात्प्रभृति प्रभूतगुरगुणगणहृतेन हृदयेन परवन्तो वयम्। सकल्पितमिदमामरणादार्योपयोगाय शरीरम्'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४५२)।

राज्यश्री के कापाय-ग्रहण करने की अनुमति मागे जाने की बात सुनकर सम्राट हर्ष चुप रहे थे (वही पृ० ४७३), और फिर सम्राट ने आचार्य दिवाकर-मित्र से कहा था कि 'वे भाई के वध का बदला लेने और शत्रुकुल के नाश करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं और शत्रुओ ने उनका जो अपमान किया है, उसे सहन न कर सकने के कारण वे अभी कोप (क्रोध) के वश में हैं—

> 'पूर्वावमाननाभिभवममहमानैरपित आत्मा कोपस्य'—(वही, पृ० ४५८)।

अत सम्राट ने आगे निवेदन किया था कि 'आचार्य मुझ अतिथि को अपना शरीर दान दें—दीयतामतिथये शरीरमिदम्,' और तब आचार्य से साथ चलने का

आग्रह करते हुये कहा था कि 'भदन्त धार्मिक कथाओं और शील के उपदेश से मेरी बहिन का क्लेश हरें', और जब वे अपना कार्य (शत्रुओं पर विजय) पूरा कर लें तब बहिन के साथ-साथ वे भी काषाय ग्रहण करेंगे—

इयं तु ग्रहीष्यति मयैव सम समाप्तकृत्येन काषायाणि —(वही, पृ० ४५९)।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि—आचार्य दिवाकर के साथ भेंट होने के समय से ही देव हर्ष भगवान बुद्ध के धर्म के—प्रति झुक गये थे, लेकिन शत्रुओं से बदला लेने के हेतु दिग्विजय सम्पूर्ण करने तक क्रोध में भरे होने के कारण, उन्होंने तब भगवान बुद्ध के अहिंसा आधारित धर्म को ग्रहण करना उपयुक्त नहीं समझा था। इस के लिये उन्होंने स्वयं ही शत्रुओं पर जय का कार्य पूरा करने के बाद का समय उपयुक्त घोषित किया था।

देव हर्ष में प्रारम्भ से बुद्ध के प्रति अनुरक्ति और भक्ति थी, शायद यह इंगित करने के लिये ही बाण ने सम्राट (हर्ष) के लिये, बुद्ध के जैसा शान्त मनवाला—

'सुगत इव शान्तमनसि'—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १३६), तथा

बुद्ध के जैसा सुन्दर अंगों वाला—

'सुगतमन्थरोग्ना'—(वही, पृ० १२२), और अवलोकितेश्वर (बोधिसत्त्व-बुद्ध का एक अवतार) के जैसा प्रसन्न चाँद सा मुखवाला—

'प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन' (वही), आदि—विशेषण प्रयुक्त किये हैं।

किन्तु बुद्ध के प्रति अनुराग एवं रुझान और अन्त में बौद्धधर्म में दीक्षित हो जाने पर भी देव हर्ष ने अपने पूर्वजों द्वारा सम्पूजित एवं समादरित कुल देवताओं का परित्याग नहीं किया और भगवान बुद्ध के साथ-साथ परमेश्वर शिव और आदित्य-नारायण की भी वे निरन्तर पूजा अर्चना करते रहे।

ह्वेनसांग से भेंट

राज्यश्री सम्मितीय बौद्ध सम्प्रदाय को मानने वाली थी। अतः ह्वेनसांग से भेंट होने से पूर्व श्री हर्ष का झुकाव भी शायद इसी बौद्ध-सम्प्रदाय के प्रति रहा होगा। किन्तु ६४३ ई० सन् में कोंगोद (गंजाम) के आक्रमण के बाद लौटते समय जब देव हर्ष प्रथमतः बंगाल के कजुघिर (कजुंघिर) में ह्वेनसांग से मिले तो उसके प्रभाव में आकर वे (हर्ष) और उनकी बहिन राज्यश्री दोनों महायान बौद्धधर्म के अनुयायी बन गये थे। वाटर्स के विवरणानुसार ह्वेनसांग ने महायान-धर्म पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना भी की थी जिसे देख कर और जिसकी ह्वेनसांग

से ही व्याख्या सुनकर श्री हर्ष और उनकी बहिन राज्यश्री को अपार हर्ष हुआ था, और उनकी महायान धर्म पर आस्था घनीभूत हो गयी थी।

श्रीहर्ष ने महायान बौद्धधर्म में दीक्षित होने के बाद उसका जनता में भी प्रचार करने का निश्चय किया और तदनुसार कन्नौज में महायानधर्म की एक महासभा आयोजित करने की योजना बना ली गयी। इस योजना की सफलता के लिए शीघ्र ही राज्यभर में यह सूचना भी दौड़ा दी गयी थी कि सभी धर्म व सम्प्रदाय वाले कन्नौज में एकत्रित हों और ह्वेनसांग द्वारा की गयी धर्म की व्याख्या पर विचार करें। इस तरह धर्म-महासभा की योजना का निश्चय कर श्री हर्ष तब ह्वेनसांग और भास्करवर्मन को अपने साथ लेकर कजुघिर (राजमहल) से वापसी यात्रा पर रवाना हुये और ९० दिन की यात्रा तय करके कन्नौज पहुँचे।[1]

कन्नौज की धर्म महासभा

देव हर्ष के निर्देशानुसार आयोजित सभा के लिए कन्नौज में पूरी तैयारियाँ कर ली गयी थी। श्रीहर्ष के पहुँचने से पूर्व सभाभवन के पास घासफूस से छाये दो बडे-बडे भवन भी तैयार कर लिए गए थे, जिनमें हजार-हजार व्यक्ति बैठ सकते थे। सभाभवन में भगवान बुद्ध की मूर्ति को आसीन करने के लिए एक बहुमूल्य सिंहासन रख दिया गया था।[2]

रेकड्‌र्स (सि-यू-की) के अनुसार श्रीहर्ष के निर्देशानुसार सभा के लिये गंगा नदी के पश्चिम ओर एक विशाल संघाराम बनवाया गया था और उसके पूरब में १०० फीट ऊँचा एक भव्य मीनार खड़ी की गयी थी जिसके मध्य में देव हर्ष ने अपने आकार के बराबर बुद्ध की एक स्वर्ण प्रतिमा निर्मित करवा कर स्थापित कर दी थी। मीनार के दक्षिण ओर बुद्ध की मूर्ति को स्नान कराने के लिये एक बहुमूल्य वेदिका भी बनवा दी गयी थी।[3]

बसन्त ऋतु के दूसरे महीने, (फरवरी-मार्च) श्रीहर्ष के कन्नौज पहुँचने पर वहाँ की धर्म-महासभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। राजधानी पहुँचने पर सम्राट स्वयं सभा-भवन के निकट पश्चिम तरफ वाले घास-फूस से बने एक अस्थायी प्रासाद (राजमन्दिर) में ठहरे। इस प्रासाद में धर्म-यात्रा (जलूस) के अवसर के लिये

---

१ Life Beal, pp 175-176 Records I, p 218

२ Ibid, p 177

३ Record I p 218

बुद्ध की एक तीन फीट ऊँची सोने की प्रतिमा बना कर रख दी गयी थी। यहां पर बसन्त के द्वितीय मास के प्रथम दिन से इक्कीस दिन तक स्वयं हर्ष ने श्रमणों और ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोज दिया। अस्थायी राजनिवास से लेकर सङ्घाराम तक गायकों और वादकों के लिए भी अनेक सुन्दर और भव्य मण्डप आदि बनवा दिये गये थे।[1]

कनौज की महासभा में भाग लेने के लिये श्रीहर्ष के निर्देशानुसार देशभर से अट्ठारह-बीस राज्यों के राजा अपने यहाँ के प्रमुख श्रमणों व ब्राह्मण आदि सहित वहां आ जुटे थे। लेख के अनुसार महायान और हीनयान दोनों सम्प्रदायों के 3000 विद्वान आचार्य, 3000 ब्राह्मण और निर्ग्रन्थ, और नालन्दा के लगभग १००० आचार्य अपने शिष्यों और अनुचर सहित सभा में भाग लेने को एकत्र हो गये थे। आमन्त्रित सभी व्यक्तियों को घास-फूस के बने भवनों में ठहराया गया था।[2]

कनौज की धर्मसभा का कार्य बुद्धकी भव्य शोभायात्रा के साथ आरम्भ हुआ। सम्राट् के अस्थायी महल से बुद्ध की तीन फीट ऊँची मूर्ति को लाकर एक विशाल, सजे-धजे हाथी पर आसीन किया गया था। श्रीहर्ष शीलादित्य इन्द्र (शक्र) के रूप में श्वेत चँवर लिये भगवान् के हाथी के दाईं ओर और कामरूप के भास्करवर्मन ब्रह्म-राज (ब्रह्मा) के रूप में बाईं तरफ स्थित होकर जुलूस के साथ चल रहे थे। दोनों राजा देवताओं की तरह सिर पर पुष्पों की माला और रत्नाभरणों की लड़ियों से मण्डित प्रभामण्डल धारण किये हुये थे। उनके साथ भगवान बुद्ध की मूर्ति के पीछे दो हाथी और थे जो जवाहरातों, मोतियों और सोने-चांदी के फूलों से लदे थे। जैसे-जैसे वे आगे कदम रखते थे वे इन फूलों और मोतियों आदि को बिखेरते जाते थे। दोनों के साथ पास-पास सौ सुसज्जित बुद्ध के हाथी भी थे। बुद्ध के हाथियों के आगे और पीछे सौ विशाल हाथियों पर गायकवृन्द भी बाजों को बजाते और संगीत लहराते हुये साथ चल रहे थे।

शीलादित्य के पीछे उनके निर्देशानुसार, ह्वेनसांग और राजा के प्रमुख परिचारकगण विशाल हाथियों पर आरूढ़ थे। अन्य राजाओं, प्रमुख मन्त्रियों, और विभिन्न देशों के प्रमुख पुरोहितों व पण्डितों के लिए ३०० हाथियों का पृथक प्रबन्ध था। वे लोग दो कतारों में बैठ कर जुलूस के साथ चल रहे थे,

१ Life p 177, Records I. p 218

२ Ibid

और चलते हुए बुद्ध की स्तुति का गान भी करते जाते थे। शोभा-यात्रा (जुलूस) प्रात काल सम्राट के अस्थायी निवास से प्रारम्भ हुयी थी, और जब जुलूस सभाभवन के बाहरी प्रागण के द्वार के समीप पहुँचा तो हाथियो पर आरूढ सभी नीचे उतर गए और बुद्ध की मूर्ति को सभाभवन में पहुँचा दिया गया। मूर्ति को वहाँ बहुमूल्य सिंहासन पर आसीन किया गया और तब सम्राट तथा ह्वेनसाग ने भगवान बुद्ध को उपहार अर्पित किये।

रेकर्ड्स के अनुसार सम्राट शीलादित्य मूर्ति को स्वय कन्धे पर रख कर भीतर ले गये थे। इस अवसर पर बीस प्रमुख श्रमण और विभिन्न देशो के राजा, सम्राट के पीछे जुलूस बना कर साथ में थे। बुद्ध को सिंहासन पर आसीन करने के पश्चात् सम्राट ने सैकडो-हजारो जवाहरातो से कढी रेशमी पोशाकें मूर्ति को अर्पित की थी।

इसके बाद श्री हर्ष की अनुज्ञा पाकर १८ देशो के राजाओ ने मूर्ति के भवन में प्रवेश किया। उनके बाद समस्त देश के मूर्धन्य एक हजार पण्डितो (पुरोहितो), पाच सौ के लगभग ब्राह्मणो और बौद्धो, तथा विभिन्न राज्यो से आमत्रित दो सौ प्रमुख मत्रियो आदि ने सभाभवन में प्रवेश किया। किन्तु बौद्धधम में आस्था न रखने वाले जिन व्यक्तियो को सभाभवन में प्रवेश नही मिल सकता था, उन्हें सम्राट के निर्देशानुसार भवन के प्रवेशद्वार के बाहर बैठने की अनुमति दी गयी।

सम्राट हर्ष ने फिर सभी आमत्रित व्यक्तियो को भोज दिया। भोज के उपरात सम्राट ने एक सोने की तश्तरी, एक सुवर्ण प्याला, सात सुवर्ण कमण्डल, एक सुवर्ण दण्ड, तीन हजार सुवर्ण के सिक्के और तीन हजार बहुमूल्य सूती वस्त्र भगवानबुद्ध को उपहार मे चढाये। ह्वेनसाग और अन्य आचार्यों व पुरोहितो ने भी सामर्थ्यानुसार भगवान को उपहार अर्पित किये।

धर्म-सभा

भोज और उपहार अर्पण के उत्सव के पश्चात् धर्म-सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की गयी। सभा के अध्यक्ष और प्रमुख वक्ता के रूप में ह्वेनसाग के लिए सम्राट के निर्देशानुसार एक भव्य बहुमूल्य मण्डप तैयार करा दिया गया था। रेकड्स के विवरणानुसार इस सभा में धर्म-चर्चा पर विभिन्न धर्मों के विदग्ध पण्डितो ने गम्भीर विषयो पर पाण्डित्यपूर्ण तर्क और भाषण किये थे। लेकिन प्रमुख वक्ता ह्वेनसाग थे, जिन्होने महायानधर्म के सिद्धातो की व्याख्या

करके उनकी महानता पर प्रकाश डाला था। इसके बाद ह्वेनसांग ने नालन्दा के एक श्रमण द्वारा सबको यह ज्ञापित किया कि जो चाहे वह महायानधर्म के सन्दर्भ में उनसे तर्क-वितर्क कर सकता है। यह सूचना एक तख्ती पर लिखवा कर सभाभवन के बाहर भी टंगवा दी गयी थी जिस पर ह्वेनसांग ने यह भी लिखवा दिया था कि यदि कोई उनके तर्कों को अपने विचारों से असंगत प्रमाणित कर देगा या वाद-विवाद में उन्हें परास्त कर देगा तो वह विरोधी (विजेता) के अनुरोध पर अपना सिर कटवा दे सकता है।

ह्वेनसांग की इस चुनौती के प्रति किसी का एक शब्द भी कहने का साहस न हो सका था। फलतः सन्ध्या होने पर सम्राट के निर्देशन पर सभा की कार्यवाही समाप्त करदी गयी थी।

सभा समाप्त होने पर सम्राट हर्ष राजकीय गौरव के साथ विश्राम के लिए अपने अस्थायी प्रासाद को लौट गए। अन्य राजागण, कुमार राजा और ह्वेनसांग भी अपने-अपने शिविरों में वापस चले गये।

दूसरे दिन प्रातः फिर पहले दिन के अनुरूप ही धूमधाम के साथ बुद्ध की मूर्ति का जुलूस निकाला गया। पाँच दिन तक सभा होने के बाद हीनयान सम्प्रदाय वालों को जब यह प्रतीत हुआ कि ह्वेनसांग ने उनके मत का खण्डन कर दिया है तो वे कुपित हो रोष में भर कर उनकी हत्या के षडयंत्र में लग गये। यह बात जब श्री हर्ष को विदित हुयी, तो सम्राट ने एक घोषणा प्रसारित करवायी जिसमें कहा गया था कि "सत्य को ढकने वाले तर्कों को स्थिर रखने का कार्य सदा से होता आया है। जो लोग मिथ्यावादी हैं, वे सत्य को छिपाकर लोगों को धोखा देते हैं। संसार में यदि विशिष्ठ प्रकार के ऋषि न उत्पन्न हों तो उनकी असत्यता का पता ही न चले। चीन के धर्माचार्य जिनका आध्यात्मिक ज्ञान विशाल है, जिनकी प्रवचन-शक्ति गूढ़-गम्भीर है, लोगों को सही बातें बतलाने (भूलें सुधारने) और महान् बौद्धधर्म के सत्स्वरूप का दर्शन कराने तथा अज्ञानियों एवं सत्य-मार्ग से भटके-भूले लोगों को उबारने यहाँ आए हुए हैं। किन्तु वचना और मिथ्याचरण का अनुगमन करने वाले, बजाय असत्य का परित्याग और भूलों का प्रायश्चित्त करने के उस (ह्वेनसांग) के विरुद्ध घातक षडयंत्र रचने में प्रयत्नशील हैं। ऐसे लोगों की दुष्-कामना के प्रति प्रत्येक (सत्यवादी) व्यक्ति में अवश्य ही रोष पैदा होना चाहिए। जब यदि कोई धर्माचार्य को क्षति पहुँचायेगा, तो उसका तत्काल सिर उड़ा दिया जाएगा। साथ ही जो कोई भी उनके विरुद्ध कुछ बोलेगा उसकी जीभ काट ली जाएगी। किन्तु वे सब जो उनके उपदेशों से

लाभान्वित होना चाहते हैं, उन्हे मुझ मे विश्वास रखकर, इस घोषणापत्र से भय खाने की आवश्यकता नही ।"

इस घोषणा का नैसर्गिक परिणाम यह हुआ कि असत्यवादियो (हीनयान पथ वालो से अभिप्राय है) का दल खिसक कर गायब हो गया था। फलत सभा के चलते अठ्ठारह दिन बीत गए लेकिन किसी ने भी फिर वाद-विवाद में भाग नही लिया।[1]

श्रीहर्ष की उक्त घोषणा को कतिपय विद्वानो ने पक्षपातपूर्ण बतलाया है और कहा है कि कन्नौज की सभा में जो वाद-विवाद हुआ वह एकागीय या एकपक्षीय था, अर्थात् राजा के सरक्षण मे अकेला ह्वेनसाग अपने मतानुसार प्रवचन करता रहा और किसी को उसका विरोध करने की स्वतन्त्रता अथवा अवसर नही दिया गया।

लाइफ के विवरणानुसार जिस कारण और जिस परिस्थिति मे सम्राट हर्ष ने घोषणापत्र प्रेषित किया था उससे यह प्रतीत होता है कि सम्राट को उन्माद से भरे साम्प्रदायिक व्यक्तियो से ह्वेनसाग का अनहित होने की आशका हो चली थी, जिस कारण सुरक्षा और शाति के निमित्त तथा प्रतिष्ठित विदेशी विद्वान् और धर्माचार्य की हत्या के प्रयास से भारत के नाम पर उग्र असहिष्णुता का कलक न लगने देने के लिए ही देव हर्ष को सदर्भित घोषणापत्र अथवा 'शासन' प्रेषित करना पडा था।

रहा एकतरफा अथवा एकपक्षीय तक वाद-विवाद का प्रश्न तो वह भी 'रेकर्ड्स' के विवरण को देखते हुए सम्पूर्ण रूप मे सही नही माना जा सकता। रेकर्ड्स के अनुसार सभा के प्रथम दिन विभिन्न धर्म-शास्त्रो के पण्डितो ने अत्यन्त दुरुह विषयो पर गम्भीरता के साथ तर्क वितर्क किया था।[2] लाइफ के अनुसार पाच दिन सभा होने के पश्चात् ह्वेनसाग द्वारा अपने मत का खण्डन किये जाने से हीनयानी रुष्ट हो चले थे।[3] इस कथन से भी यह लक्षित होता है कि प्रारम्भ

---

१ Life pp 177-180

२ "After the feast they assembled the different men of learning, who discussed in elegant language on the most abstruse subjects' —Records , I, p 219

३ Life , p 179—"After five days had passed unbelievers of

से चार-पाच दिनों तक सभा में बौद्धधर्म के अन्य पक्षों और विशेषतया हीनयानी पण्डितों ने पूरी तरह से भाग लिया था लेकिन ह्वेनसांग ने जब उनके प्रारम्भ पाण्डित्य से उनके सिद्धान्तों की असत्यता प्रमाणित करदी तो स्पष्ट है कि सभा में बैठ कर तर्क-वितर्क करना उनके लिये स्वतः ही कठिन हो गया था। अतः यह कहना कि घोषणा से भयभीत होने से किसी ने तर्क में भाग नहीं लिया, पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता।

अट्ठारहवें दिन शाम को सभा भंग होने के पूर्व ह्वेनसांग ने पुनः महायान-धर्म की प्रशंसा की और बुद्ध की भक्ति से प्राप्त होने वाले पुण्यकर्मों पर प्रकाश डाला था। उनके प्रवचन से प्रभावित होकर बहुत से महायानधर्म में दीक्षित हो गये थे। चीनी आचार्य की इस विजय से श्रीहर्ष शीलादित्य बहुत हर्षित हुए और उन्होंने १०००० सुवर्ण और ३०००० रजत मुद्रायें तथा १०० बहुमूल्य सूतीवस्त्र ह्वेनसांग को उपहार में प्रदान किए थे। इसी तरह अट्ठारह राज्यों के राजाओं ने भी बेशकीमती जवाहरात उपहार में दिये, किन्तु आचार्य ह्वेनसांग ने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया था।

अन्त में देव हर्ष ने भारतीय पद्धति के अनुसार धर्म के विजेता ह्वेनसांग का, विशाल हाथी पर नगर में एक शानदार जुलूस निकलवाया और सर्वत्र यह घोषणा की गयी कि चीनी धर्माचार्य ने सत्यधर्म की विजय स्थापित कर विरोधियों के मिथ्या सिद्धान्तों को भग्न कर दिया है। अन्त में महायानधर्म की महासभा ने ह्वेनसांग को 'महायान-देव' की उपाधि से अलंकृत किया और हीनयानियों ने उसे 'मोक्षदेव' स्वीकार किया। ह्वेनसांग की इस विजय और पूजा-सम्मान से उसकी सुकीर्ति बाहर के देशों में भी व्याप्त हो चली थी।

१९वें दिन सभा की समाप्ति पर श्रीहर्ष ने बुद्ध की सुवर्णमूर्ति और सम्पूर्ण वस्त्रालंकार और सुवर्ण आदि सघाराम को भेंट किये और उनकी देखरेख का गुरुतर भार पुरोहितों को सौंप दिया।[१]

'रिवर्स्' के अनुसार सभा की समाप्ति के अन्तिम दिन अकस्मात् मीनार और सघाराम के तोरण के ऊपरी मण्डप पर सहसा आग लग गयी थी। इस घटना से सम्राट हर्ष को बहुत आघात पहुँचा और उन्होंने दुःखित होकर बुद्ध के

---

the Little vehicle seeing he had overturned their school, filled with spleen, plotted to take his life"

१ Life pp 180-183

सामने यह स्तुति की कि 'उनके अब तक के पुण्य इस अग्नि को शान्त कर दें, नहीं तो वे प्राण त्याग देंगे ।' इस प्रार्थना के बाद सम्राट तत्काल तोरण की ओर अग्रसर हुये, किन्तु तभी सहसा आश्चर्यजनक ढग से आग बुझकर स्वत शान्त हो गयी । इस घटना से सभी उपस्थित राजाओ आदि को बडी प्रसन्नता हुयी और उनकी बद्धौधर्म पर श्रद्धा बढ गयी । श्री हर्ष तथा अन्य जन जब आग की घटना से दु खी हो रहे थे, तो रेकर्ड्स के अनुसार दूसरी ओर बुद्ध के धम के विरोधी हर्षित होकर एक-दूसरे को बधाई दे रहे थे ।

अग्निकाण्ड का निरीक्षण करने के लिये सम्राट हर्ष अन्य राजाओ के साथ आगे बढकर मीनार अथवा स्तूप के शिखर पर चढ गये । वहाँ से उन्होने जहाँ आग लगी थी उस स्थान का निरीक्षण किया और फिर आरोहिणी (सीढियो) से नीचे उतरने लगे । इसी समय सहसा एक विधर्मी हाथ में चाकू लिये सम्राट पर घातक आक्रमण करने के लिए झपटा । सम्राट हर्ष इस आकस्मिक आक्रमण से बचने के लिए पीछे हट कर कुछ सीढियाँ ऊपर चढ गये और फिर सहसा झपट कर उन्होने हत्यारे को स्वय धर पकडा । सभी उपस्थित राजाओ ने सम्राट से हत्यारे को तुरन्त मार डालने का अनुरोध किया, लेकिन उन्होने ऐसा न कर के हत्यारे से प्रश्न किया कि वह किस कारण ऐसा कृत्य करने जा रहा था ? इसके उत्तर में हत्यारे ने अपनी मूर्खता की भर्त्सना की और सम्राट का गुणगान करते हुए प्रकट किया कि उसे विधर्मियो ने भरमा कर हत्या करने को उकसाया था । हत्यारे से जब यह पूछा गया कि विधर्मियो ने उक्त षडयन्त्र को क्यो रचा था, तो उसने उत्तर दिया कि 'सम्राट ने श्रमणो के प्रति जो आदर-सम्मान प्रकट किया और मुक्तहस्त हो कर जिस तरह उन्हे दान दिया, तथा बुद्ध की जो सुवर्ण प्रतिमा स्थापित की, उस सबसे विधर्मी रोष से भर गये थे और उन्होने यह अनुभव किया कि उनका कोई आदर-सत्कार नहीं किया गया है । फलत वे कुपित हो उठे और तब उन्होंने इस दुष्टकर्म की योजना बना कर उसे अपने इष्ट-सिद्धि का साधन बनाया ।

हत्यारे की साक्षी पर षडयन्त्रकारी बहुत से ब्राह्मण पकड लिये गये । षडयन्त्र के प्रमुख नेताओ को दण्ड दिया गया और अन्य अपराधियो को क्षमा कर दिया गया । लगभग ५०० ब्राह्मणो को निर्वासन का दण्ड मिला और उन्हें साम्राज्य की सीमा से बाहर कर दिया गया । इसके बाद देव हर्ष अपनी राजधानी को लौट गये ।[१] रेकर्ड्स के इस वृत्तान्त से लक्षित होता है कि इस अवसर पर

१ Records I, pp 219-221

ब्राह्मणों और बौद्धों में धार्मिक मनमुटाव और वैमनस्य बहुत बढ़ गया था। अतः सम्राट का बौद्धों के प्रति अनुराग और अपने धर्म के प्रति उदासीन भाव देख कर ब्राह्मण इतने असन्तुष्ट हो चले थे कि उन्होंने सम्राट की हत्या तक करने का षड्-यन्त्र रच डाला था जो कि सौभाग्य से सफल न हो सका।

प्रयाग का दान-महोत्सव

कनौज की सभा समाप्त होने पर ह्वेनसांग स्वदेश लौटने की तैयारी करने लगा, किन्तु सम्राट हर्ष ने उन्हें प्रयाग दान-महोत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देकर कुछ समय के लिए और रोक लिया। 'रिकार्ड्स' में उल्लिखित श्रीहर्ष के स्व-कथानुसार वह प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग की पुण्यभूमि गंगा-यमुना के संगम पर धर्म-महोत्सव मनाया करता था, और इस अवसर पर ७५ दिनों तक अपने कोष का समस्त धन और रत्न-सुवर्ण आदि बहुमूल्य वस्तुएँ समस्त देश से आमन्त्रित श्रमणों, ब्राह्मणों तथा दीन-अनाथों को दान में दे दिया करता था। दान का यह महोत्सव 'मोक्ष' कहलाता था। कनौज की सभा के बाद ६४३ ई० सन् में यह उत्सव छठी बार मनाया जा रहा था। अतः यह दान-उत्सव देव हर्ष ने पहली बार ६१२ ई० सन् में मनाया था, जब वे प्रमुखतया शिव और सूर्य के उपासक ब्राह्मणधर्मी थे।

इस विवरण तथा 'रेकर्ड्स'[1] के इस कथन से, कि शीलादित्य राजा अपने पूर्वजों की तरह प्रयाग में संगम के दान-क्षेत्र में सर्वस्व दान में दे दिया करता था, प्रत्यक्ष है कि प्रयाग का धर्म और दान-महोत्सव मूलतः ब्राह्मण-धर्म प्रेरित उत्सव था, 'बौद्धधर्म उत्सव' नहीं, तथा यह उत्सव देव हर्ष के पूर्वजों के समय अपितु उनके पूर्व से ही चला आ रहा था। इससे यह भी प्रकट है कि बौद्धधर्म में परिवर्तित होने से पूर्व इस उत्सव में शिव और सूर्य का स्थान ही प्रमुख रहा होगा और दान के प्रमुख पात्र तब ब्राह्मण ही रहे होंगे। किन्तु बौद्ध होने पर, जब ह्वेनसांग को भी इसमें आमंत्रित किया गया था, यह उत्सव बौद्धधर्म प्रधान हो गया था। फलतः इस उत्सव में तब प्रथम स्थान बुद्ध का दिया गया था और शिव तथा सूर्य उनके बाद रखे गये। इसी तरह दान-पात्रियों में अब प्रमुख स्थान श्रमणों को मिला और ब्राह्मण उनके बाद रखे गये।

---

१ " Siladitya—raja, after the example of his ancestors, distributes here in one day the accumulated wealth of five years " (Records I p 233)

प्रयाग का दान-महोत्सव उस समय के बौद्ध तथा ब्राह्मणधर्म के आचार पर भी प्रकाश डालता है। यह उत्सव इस बात का भी साक्षी है कि दया, दान और परोपकार की वृत्ति का दोनों धर्मों में बहुत महत्त्व और मान्यता थी। भारत के राजाओं और देश के धनी-मानी लोगों द्वारा गगा-यमुना के सगम की भूमि पर प्राचीन काल से ही दान देने की प्रथा चली आती थी, जिस कारण उक्त स्थान पूर्वकाल से ही महादान-भूमि नाम से सुप्रख्यात हो चला था। प्रयाग के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि जो पुण्य इस भूमि में एक पैसा दान देने से उपलब्ध होता है, वह अन्य स्थानों में हजारों रुपया दान करने से भी नहीं प्राप्त होता। इसी कारण यह भूमि पुरातन काल से महिमामयी पुण्यक्षेत्र के रूप में विश्रुत रही है।

सम्राट हर्ष के पूर्व-निर्देशानुसार दान-महोत्सव के लिए प्रयाग में सगम पर बाँस के डण्डो से घिरवा कर एक वर्गाकार अहाता तैयार किया गया, जो १००० फीट लम्बा और १००० फीट चौड़ा था। इस अहाते के भीतर घास-फूस के बहुत से भवन निर्मित किये गए और उनमें दान के लिए लाया गया सम्पूर्ण कोष भर दिया गया था। कोष की वस्तुओं में सोना, चाँदी, बहुमूल्य लाल, मणि, इन्द्रनील मोती, महानील मोती आदि सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त कुछ लम्बे आकार के भाडारगृह भी बनाये गए थे, जिनमें रेशमी और सूतीवस्त्र तथा सोना-चाँदी के सिक्के आदि भरे थे।

बास के अहाते के बाहरी तरफ भोजन करने के स्थान बने थे। विभिन्न भाडागारों के सामने एक सौ से भी अधिक लम्बे भवन बने थे जिनमें हजारों व्यक्ति विश्राम पा सकते थे।

महोत्सव की इस तैयारी से कुछ पूर्व ही सम्राट ने समस्त देश के श्रमणो, ब्राह्मणों, निग्रन्थों, दीन-अनाथ और असहाय आदि सभी जनो को दान-उत्सव में भाग लेने के लिए राजकीय घोषणा ज्ञापित करके प्रयाग आने का आमत्रण दे दिया था। अत जब सम्राट, ह्वेनसाग और राजागण आदि प्रयाग पहुँचे उस समय वहाँ देश भर के लगभग ५०,०००० व्यक्ति जमा हो चुके थे।

गगा के उत्तरी तट पर सम्राट शीलादित्य का शिविर स्थापित किया गया था। गगा-यमुना के सगम के पश्चिम ओर वल्लभी के राजा ध्रुवभट्ट का शिविर था और यमुना के दक्षिण ओर कामरूप के राजा कुमारराज का शिविर स्थापित था। दान पाने के लिए आये हुए व्यक्तियों ने महाराज ध्रुवभट्ट के शिविर के पश्चिम ओर की भूमि डेरे के लिये घेर रखी थी।

दूसरे दिन सुबह सम्राट शीलादित्य और कुमारराज अपने सैनिकों व अनुचरों सहित नौकाओं में बैठ कर और ध्रुवभट्ट तथा उनके परिचारकगण हाथियों पर सवार हो जुलूस बनाकर दान-भूमि की ओर अग्रसर हुए। अन्य अठारह देशों के राजा भी योजनानुसार जुलूस के साथ शामिल थे।

उत्सव के पहले दिन दान-भूमि के अन्दर बने घास-फूस के एक भवन में भगवान बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गयी और महाराज शीलादित्य ने भगवान को बहुमूल्य रत्नाभरण भेंट किये। बुद्ध-मूर्ति की पूजा के पश्चात समस्त राजाओं ने बहुमूल्य वस्तुएँ, वस्त्र और भोग-सामग्री वितरित की और वाद्यों के संगीत के साथ फूल बिखेरे गये। शाम होने पर सब अपने शिविरों को लौट गए।

दूसरे दिन आदित्य-देव (सूर्य) की मूर्ति स्थापित की गयी, और पहले दिन की अपेक्षा आधी वस्तुएँ दान में वितरित की गयीं।

तीसरे दिन ईश्वर (महादेव) की मूर्ति स्थापित की गयी और दूसरे दिन की तरह दान वितरित किया गया।

चौथे दिन बौद्धधर्म संघ के १०,००० बौद्धधर्म के पण्डितों और भिक्षुओं को दान दिया गया। प्रत्येक बौद्ध पण्डित को १०० स्वर्ण मुद्राएँ, एक मोती, एक सूतीवस्त्र, विभिन्न प्रकार के पेय और खाद्य सामग्री तथा गन्ध और फूल प्राप्त हुये। दान-वितरण के पश्चात् सब अपने शिविरों को लौट गए।

इसके बाद लगातार २० दिनों तक ब्राह्मणों को दान दिया गया। फिर १० दिन तक अन्य धर्मावलम्बियों को दान दिया गया, फिर १० दिन तक दूर-दूर से दान पाने के लिये आये हुए व्यक्तियों को दान दिया गया। अन्त में एक महीने तक दीन अनाथों और असहायजनों को दान दिया गया।

इस प्रकार प्रति पाँचवें वर्ष जितनी धन-सम्पत्ति राज-कोष में एकत्रित होती थी, वह सब सम्राट हर्ष दान में वितरित कर देते थे। केवल घोड़े, हाथी और अन्य सैनिक सामानों को छोड़ कर सभी कुछ दान में दे दिया जाता था। सम्राट बिना हिचक अपने शरीर के वस्त्राभूषण तक दान में वितरित कर देते थे।[1]

---

१ देव हर्ष के 'दान' की महिमा और गरिमा को अभिव्यक्त करते हुये हर्षचरित में बाण ने कहा है कि धन के प्रति वे निःस्नेह थे (अर्थात् अपने भोग के लिए वे धन के इच्छुक नहीं थे)—'निःस्नेह इति धनै' (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२९)।

सर्वस्व-दान के अंत में सम्राट ने अपने पहनने के लिए अपनी बहिन से एक साधारण पुरानी पोशाक भिक्षा में प्राप्त की और तब दसों दिशाओं के बुद्धों की अर्चना कर श्री हर्ष ने आनन्दविभोर हो कर इस प्रकार कहा—"इतना धन और कोष एकत्र कर के मुझे यह भय लगा रहता था कि वह सुरक्षा के साथ नहीं रखा गया है। किन्तु दान-पुण्य में उसे वितरित कर देने पर, अब मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उस का समुचित उपयोग कर दिया गया है। मैं शीलादित्य यही चाहता हूँ कि मैं अपने सभी अगले जन्मों में इसी प्रकार अपना एकत्रित धन मानवमात्र को धर्म-भाव से दान देने में अर्पित करता रहूँ, जिससे मैं अपने में "बुद्ध का दशबल" प्राप्त कर सकूं।"

हर्ष के दान वितरण के पश्चात् आमन्त्रित राजागण, सम्राट के अलंकारों और वस्त्राभूषणों को सुवर्ण देकर उन लोगों से क्रय कर लेते थे जिन्हें वे दान में प्राप्त हुये थे। क्रय करने के बाद उन वस्तुओं को राजा लोग सम्राट को भेंट करते थे और सम्राट उन्हें फिर दान में दे देता था।

'रेकर्ड्स' के अनुसार दान-उत्सव के समाप्त हो जाने पर विभिन्न देशों के राजा, *सम्राट हर्ष को अपनी-अपनी ओर से रत्न और वस्त्राभूषण भेंट करते* थे जिससे सम्राट का कोष पुनः परिपूर्ण हो जाता था।

अतः कोष के खाली हो जाने से राज्य का आर्थिक सन्तुलन बिगड़ने का यदि कोई भय था, तो उसे आमन्त्रित राजागण अपने उपहारों से दूर कर देते थे।

श्रीहर्ष लक्ष्मी (धन) और ऐश्वर्य को बन्धु-बान्धवों और कृपणों (दीन-दुखियों) को सहायता देने का साधन अथवा उपकरण मात्र मानता था—बान्धवोपकरण लक्ष्मी, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्, और अपना 'सर्वस्व' ब्राह्मणों के हितसाधन का उपकरण समझता था—द्विजोपकरण सर्वस्वम्' वही, पृ० ९३-९४ और उस का 'दान' (त्याग) इतना था कि उस के लिए पर्याप्त याचक न मिल पाते थे—अपि चास्य त्यागस्यार्थिन (वही, पृ० १३३)।

श्री हर्ष के इस सर्वस्वदान की महिमा को लक्षित करते हुए बाण ने सम्राट के मुक्ताहार से निःसृत होने वाली किरणों से उनके वक्ष की शोभा का वर्णन् करने के मिस कहा है कि 'हार में पिरोई मुक्ताओं की किरणें फैलकर उन के वक्ष पर ऐसी लिपट रही थी मानो सम्राट ने जो सर्वस्व महादान दिया था, उसी के दीक्षावस्त्र हों—

जीवितावधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षाचीरेणेव हारमुक्ताफलाना किरण-निकरेण प्रावृतवक्षःस्थलम् (वही, १२४)।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि प्रभूत दान के बाद रिक्त हुआ कोष दस दिन भीतर पुनः पूर्ण हो जाता था (Watters, Vol I p 164)।

फलतः श्री हर्ष के बाद पुष्यभूति साम्राज्य के सहसा ढहने का कारण हम दान से उत्पन्न कोष की रिक्तता नहीं अनुमानित कर सकते। उसका प्रधान कारण तो देव हर्ष का बिना कोई पुत्र उत्तराधिकारी छोड़े स्वर्ग सिधार जाना था। सम्राट के 'दान' का जो रूप हमें 'लाइफ' और 'रिकर्ड्स से प्राप्त होता है उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि विश्व के इतिहास में दान और दानी का ऐसा महिमापूर्ण अन्य उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है।

ह्वेनसाग की विदायी

दान महोत्सव के समाप्त होने के कुछ ही समय पश्चात् ह्वेनसाग सम्राट से विदा लेकर अपने देश के लिए रवाना हो गया। विदाई के समय श्रीहर्ष और कुमार-राज ने चीनी आचार्य को मुद्रा आदि बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट करनी चाही, लेकिन पूर्व की भाँति ह्वेनसाग ने उन्हें लेना स्वीकार नहीं किया। अन्त में ह्वेनसाग को विदा करते समय सम्राट ने जालंधर के राजा उदितराज को चीनी आचार्य को पहुँचाने और साथ में सुरक्षार्थ एक सैनिक रक्षकदल भेजने का निर्देश दिया। ह्वेनसाग के मार्ग व्यय के लिए सम्राट ने ३००० स्वर्ण और १०००० रजत मुद्राओं समेत एक हाथी भी उदितराज के रक्षक दल के साथ भेजा। कुमारराज और ध्रुवभट्ट के साथ सम्राट कुछ मंजिलों तक स्वयं भी ह्वेनसाग को पहुँचाने गये और अन्तिम विदाई लेते समय उन्होंने अपने सीमान्त के विभिन्न राजाओं को भी इस आशय के पत्र प्रेषित किए कि वे चीन के महान् आचार्य का स्वागत करेंगे तथा उन्हें मार्ग में कोई कष्ट न होने देंगे। ये पत्र ताक्वान (महाद्वार नामक पथप्रदर्शक अधिकारी) नाम के चार अधिकारियों को सौंपे गये थे और उन्हें 'रक्षकदल' के साथ रवाना कर दिया गया था।

सम्राट की धर्मसहिष्णुता

श्रीहर्ष के दानोत्सव के विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि बौद्ध होने पर दान तथा आदर-सम्मान में बौद्धों को प्रथम स्थान दिया गया था, परन्तु उनके बाद ब्राह्मणों को और दूसरे सम्प्रदाय वालों को भी दान और सम्मान से पूजित किया गया था। इसी प्रकार पूजा में यद्यपि प्रथम स्थान बुद्ध का रखा गया था, लेकिन दूसरे और तीसरे स्थान में सूर्यदेव और ईश्वरदेव (शिव) की पूजा भी यथावत् की गयी थी। इसी तरह पर्वतों के अवसर पर सम्राट के अस्थायी प्रासाद में

प्रतिदिन यदि बौद्ध पण्डितो को एक हजार की सख्या में भोज दिया जाता था, तो उनकी आधी सख्या में ब्राह्मण भी रोज भोज के लिए निमंत्रित किये जाते थे। ये सब उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि भारत एव कुल की परम्परागत धार्मिक सहिष्णुता और उदारता देवहर्ष में पूर्णता से विद्यमान थी, और बौद्ध होने पर भी वे अविच्छिन्न रूप से अन्य सम्प्रदायो तथा ब्राह्मण देवी-देवताओ का सश्रद्धा आदर-सम्मान एव पूजन करते रहे।[1]

बौद्ध होने के नाते सम्राट हर्ष सभी बौद्ध, श्रमणो व भिक्षुओ को आदर का पात्र मानते थे ऐसा नही कहा जा सकता। ह्वेनसाग (रेकर्ड्स)[2] के विवरणानुसार

---

१ महाराज पुष्यभूति की राजनगरी स्थाण्वीश्वर का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि बौद्ध भिक्षु उसे शाक्याश्रम (बौद्ध विहार) समझते थे, और ब्राह्मण उसे वसुधारा (धन का प्रवाह स्त्रोतप्रभूत दान मिलने के कारण) मानते थे—शाक्याश्रम इति शमिभि ,—वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६६)।

२ वॉटरस ने भी ह्वेनसाग के विवरण को इस प्रकार दिया है—"He (Harsha) Caused the use of animal food to cease throughout the five Indias, and he prohibited the taking of life under severe penalties He erected thousands of topes on the banks of the Ganges, established Travellers Rests through all his dominions, and erected Buddhist monastries at sacred places of the Buddhists once a year he summoned all the Buddhist monks together He brought the Brethern together for examination and discussion, giving rewards and punishments according to merit and demerit Those Brethern who kept the rules of their rder were thoroughly sound in theory and practice he "advanced to the Lion's Throne" and from these he received religious instruction, those who, though perfect in the obvervance of ceremonial code, were not learned he merely honoured those who neglected the ceremonial observances of the rder, and

सम्राट प्रतिवर्ष देश भर के श्रमणों की सभा बुलाते थे, और स्वयं उनके शास्त्रार्थों और धार्मिक विवेचनाओं अथवा व्याख्याओं को सुनते थे। अन्त में जो ज्ञानवान् और विमल-चरित्र के प्रमाणित होते, उन्हें ही पुरस्कार दिया जाता था, लेकिन जो अज्ञानी और भ्रष्ट-चरित्र के सिद्ध होते उन्हें दण्ड दिया जाता था। बौद्ध पण्डितों में जो सबसे ज्ञानवान और शुद्धचरित्र का होता था उसे सम्राट स्वयं उच्चासन पर बिठाते और उनसे धर्म की शिक्षा ग्रहण करते थे। जो चरित्र के शुद्ध होते लेकिन ज्ञान में विकसित न होते, सम्राट उनका सम्मान तो करते थे, लेकिन उन्हें विशिष्ट स्थान नहीं दिया जाता था। किन्तु जो चरित्र के भ्रष्ट होते थे उन्हें सम्राट देश से निष्कासित भी कर देते थे और उन्हें देखना तथा उनकी बातें सुनना तक पसन्द नहीं करते थे। इस तथ्य से यह भी अनुमान होता है कि अशोक की तरह श्रीहर्ष भी बौद्धसंघ के नियमों का अतिक्रमण करने वाले तथा बुद्ध की शिक्षाओं का मिथ्या अर्थ निकालने वाले भिक्षुओं को संघ से ही नहीं, देश से भी निकाल देता था। देवहर्ष के ये प्रयत्न संघ में उत्पन्न होने वाली बुराइयों को रोकने और संघ का जीवन निर्मल और प्रज्ञापूर्ण बनाने में बहुत सहायक हुये होंगे, निर्विवाद है। उनके ये प्रयत्न इस बात के भी प्रमाण हैं कि सम्राट बौद्धधर्म के निर्मल, कल्याणमयी ज्ञान की पवित्र धारा को गति और प्रवाह देने के लिए अत्यन्त सचेष्ट और सक्रिय रहे और अशोक की भांति ही अपना धर्म-कर्त्तव्य मान संघ का सचालन उन्होंने अपने हाथ में रखा था।

सम्राट हर्ष स्वयं भी धर्म के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया करते थे। अपने धर्माचरण द्वारा वे धर्मप्रचार और अशोक के शब्दों में 'धर्मविजय' में इतने सलग्न रहते थे कि उन्हें सोने-खाने की भी सुध नहीं रहती थी। अशोक के ही समान देव हर्ष ने भी देश भर में जीवहत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और जीवहत्या के अपराधियों के लिए मृत्युदण्ड घोषित कर दिया था।

बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए देव हर्ष ने गंगा नदी के तटों पर १०० फीट ऊँचे हजारों स्तूप भी बनवाये थे तथा बुद्ध से सम्बन्धित पवित्र स्थान में संघाराम स्थापित करवाये थे। समस्त देश भर में नगर और गावों के मार्गों पर सम्राट ने पुण्यशालायें अथवा धर्मशालायें स्थापित करवा दी थीं। इन धर्मशालाओं में यात्रियों के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध रहता था। इन धर्मशालाओं में चिकि-

---

whose immoral conduct was notorious, were banished from his presence and from the country (Vol. I, p 344)

त्सालयों की भी व्यवस्था रहती थी। राज्य की ओर से धर्मशालाओं में चिकित्सकों की नियुक्ति होती थी जो यात्रियों और आसपास के निर्धन जनों की निःशुल्क चिकित्सा किया करते थे। इस प्रकार अशोक की भांति श्री हर्ष ने बौद्ध धर्म के सर्वकल्याण, अक्षति, और संयम के सिद्धान्त का पालन करते हुए जीवमात्र की सेवा करने में ही धर्म के रूप को देखा और उसे जीवन में आचरित किया था। 'धर्म' की व्याख्या करते हुए सम्राट हर्ष ने कहा है कि वे—मन, वचन और कर्म से प्राणिमात्र का कल्याण करना ही धर्म-अर्जन अथवा पुण्य-अर्जन का सबसे उत्तम उपाय मानते हैं—

कर्मणा मनसा वाचा कर्त्तव्य प्राणिभिर्हितम्।
हर्षेणैतत्समाख्यात धर्मार्जनमनुत्तमम् (वासखेडा ताम्रपत्र पंक्ति १४ मधुबन-ताम्रपत्र-पंक्ति १७)।

प्रकट है कि तत्वार्थदर्शी श्रमणाचार्य दिवाकरमित्र ने सम्राट हर्ष को यथार्थ ही अपने युग का 'देवानांप्रिय' संबोधित किया था (अष्टम उच्छ्वास पृ० ४२८)।



अध्याय - ९

धार्मिक अवस्था



सम्राट हर्ष के युग में बौद्ध और ब्राह्मण ये दो 'धर्म' ही प्रमुख रूप से प्रचलित थे। ब्राह्मणधर्म की तरह ही इस समय बौद्धधर्म भी अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था। ह्वेनसांग ने हीनयान और महायान सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य अट्ठारह बौद्ध-सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। बुद्ध की शिक्षाओं का भिन्न-भिन्न अर्थ और व्याख्या करने से ही विभिन्न सम्प्रदाय उत्पन्न हुए थे जिस से बौद्धधर्म की एकता नष्ट हो चली थी।

बुद्ध की शिक्षाओं का भिन्न अर्थ करने की चेष्टायें तीसरी शताब्दी ई०पू० में ही प्रारम्भ हो चुकी थी जैसा कि अशोक के अभिलेखों से प्रकट है। इन विभिन्न सम्प्रदायों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्दिता रहा करती थी। सभी सम्प्रदाय अपने को दूसरे से सत्यवादी और ज्ञाननिष्ठ मानते थे। हीनयान और महायान के सिद्धान्तों में यथेष्ट भिन्नता थी।[1] हीनयान ज्ञानमार्गी पथ था, और महायान

---

१ Each of the eighteen schools claims to have intellectual superiority, and the tenets (or practises) of the Great and the Small systems (lit vehicles) differ widely (Watters Vol I p 162)

भक्तिमार्ग का सम्प्रदाय था, जो स्पष्टतया भागवत अथवा वैष्णव धर्म से प्रभावित और प्रेरित था। महायानधर्म में बुद्ध तथा उनके पूर्व अवतारो—बोधिसत्वो मजुश्री, अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि आदि की पूजा और भक्ति करना मोक्षदायक बतलाया गया है।

ह्वेनसाग के समय में हीनयान और महायान सम्प्रदाय ही बौद्धधर्म के दो मुख्य सम्प्रदाय थे। इन में भी अधिक प्रचारित और लोकप्रिय सम्प्रदाय महायान था। उत्तरी भारत मे महायान सम्प्रदाय के प्रसार और विकास में ह्वेनसाग का भी यथेष्ट योगदान माना जायेगा। ह्वेनसाग के प्रभाव से ही श्रीहर्ष और उसकी बहिन, जो पहले सम्मतीय सम्प्रदाय के थे (Life chp 5), महायान सम्प्रदाय मे प्रविष्ट हुए थे। महायान सम्प्रदाय के प्रचार और प्रसार के निमित्त ही श्री हर्ष ने कन्नौज में धर्म-महासभा की थी, जिसमे ह्वेनसाग ने हीनयानियो और अन्य बौद्ध सम्प्रदायो को शास्त्रार्थ मे असत्यवादी सिद्ध किया था। ह्वेनसाग की इस विजय से, नि सदेह हीनयान आदि बौद्ध सम्प्रदायो का प्रभाव क्षीण हो चला और महायान-धर्म प्रमुखता प्राप्त कर गया था। देव हर्ष ने महायान-धर्म को फैलाने और हीनयान पन्थ दबाने में सक्रिय योग दिया था। लाइफ के अनुसार श्रीहर्ष ने उडीसा के हीनयान-पथियो को शास्त्रार्थ में पराजित करने के लिए नालन्दा के आचार्य शीलभद्र को चार प्रमुख आचार्यों को उडीसा भेजने के लिए पत्र प्रेषित किया था।[१]

देव हर्ष से बौद्धधम को जो प्रश्रय प्राप्त हुआ उस का ही परिणाम था कि कन्नौज में फाह्यान को जहाँ केवल दो बौद्ध विहार देखने को मिले थे, ह्वेनसाग[२] ने वहा १०० विहारो के होने का उल्लेख किया है जिनमें लगभग १०००० भिक्षु रहा करते थे। कन्नौज नगर के पास अनेक पवित्र बौद्ध मन्दिर (भवन), तथा सूर्यदेव और महेश्वर के भव्य मन्दिर भी बने हुए थे।

श्रीहष के प्रश्रय और ह्वेनसाग के प्रभाव के बावजूद बौद्धधर्म सातवी शती में अपने प्राबल्य और प्रभाव से वचित होता जा रहा था, और ब्राह्मणधर्म वृद्धि पर था। चीनी यात्री के समय में जैसा कि उसके विवरण से पता चलता है, बौद्ध धर्म मध्यदश में अवनत स्थिति में था, और उसका विशेष प्रचार-प्रसार मथुरा, पजाब, कश्मीर और पूर्वीय देशो-बिहार, बगाल, उडीसा और पश्चिम में वल्लभी तक ही सीमित रह गया था। पाचवी शती में फाह्यान को आर्यावत में यत्र-तत्र

१ Life, p 160

२ Watters Vol I, pp 342 and 352.

समृद्धि में परिपूर्ण अनेक विहार और मठ देखने को मिले थे, लेकिन ह्वेनसाग ने यहा के अनेक स्थानो के बौद्ध-विहारो को उजाड अवस्था में पाया था।[1]

ह्वेनसाग के समय तक सातवी शती में बौद्धधर्म[2] यद्यपि भारत के बाहर अफगानिस्तान, पामीर घाटी के प्रदेश, बदख्शा, खातान, पार्थिया, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, लका, बर्मा तथा स्याम आदि प्रदेशो में जडें जमा चुका[3] था,

---

१ उदाहरणार्थ फाह्यान के समय श्रावस्ती में ९८ विहार अथवा मठ थे लेकिन ह्वेनसाग को वहाँ सैकडा विहार ध्वसावस्था में मिले थे, केवल एक जेतवन विहार कुछ अच्छी स्थिति में मिला था। दूसरी ओर देव-मन्दिरो की सख्या वहाँ १०० थी और वहाँ के निवासी विशेषतया अबौद्ध थे (Watters I, pp 377 & 380)। इसी तरह वैशाली में जहा पहले सैकडा बौद्ध विहार थे, ह्वेनसाग के समय तीन-चार-पाच को छोड कर शेष विनाश को प्राप्त हो चुके थे। यहाँ पर भिक्षु तथा बौद्धधर्मी लोगो की सख्या बहुत अल्प थी (Watters II, p 67 Records Vol II p 66)।

२ सातवी शती में बौद्धधर्म की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री कारपेन्टर लिखते हैं—"It had made its way among the multitudinous peoples from the Himalaya to Ceylon, from the mouth of the Ganges to the western Sea It has been carried into Burma and Siam, it was at home in China and Corea, it was being preached in Japan Students from Tibet were studying it at Nalanda while Yuan Chwang was in residence there, and it had been planted in the highlands of Parthia The fame of the founder had reached the lands around the Mediterranean, and the name of Buddha was known to men of learning like Clement of Alexan-daria and the latin Jerome" (Theism In Medieval India, p 109)

३ ह्वेनसाग के विवरणानुसार तुषार-प्रदेश (बदख्शा) के ता-मि (तरमेज= Terwej) नगर में दस बौद्ध विहार थे जिन में एक हजार भिक्षु रहा करते थे। चीनी यात्री ने यहा के स्तूप और बुद्धमूर्तियों को भव्य और चमत्कारी बतलाया है।

लेकिन अपने उद्भव की भूमि (भारत) में उसकी जड़ें हिल गयी थीं। इसका मुख्य कारण हूणों के आक्रमण और शशांक जैसे साम्प्रदायिक उन्मादी राजाओं के प्रहारों के अतिरिक्त ब्राह्मणधर्म और दर्शन का बढ़ता-फैलता हुआ प्रभाव था।

तुषार प्रदेश से आगे चलकर वाक्षु (oxus) नदी को पार कर ह्वेनसांग कुनडज (kundu) प्रदेश में पहुँचा था। यहाँ बौद्धधर्म की बहुत मान्यता थी। यहाँ धर्मसंघ नाम के विश्रुत बौद्धपण्डित से ह्वेनसांग ने परिचय किया था।

फो-हो (बल्ख) प्रदेश की राजधानी 'बौद्धधर्म' का केन्द्र थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि यहां की राजधानी 'कनिष्ठ राजगृह' नाम से सुप्रसिद्ध थी। राजधानी में सौ बौद्धविहार थे जिन में तीन हजार भिक्षु रहा करते थे। नगर के बाहर नव-संघाराम था। इस संघाराम की बुद्ध-मूर्ति अत्यन्त कलापूर्ण और रत्नों से युक्त थी (या रत्नों से निर्मित थी) और संघाराम के भवन अमूल्य पदार्थों (रत्नों आदि) से सज्जित थे, जिस कारण आस-पास के प्रदेशों के नायक उसे लूट लेते थे।

संघाराम के बुद्ध-भवन में बुद्ध का स्नान-पात्र, बुद्ध का एक दतावशेष (जो १ इंच लंबा और ६० इंच चौड़ा था) और काश या कुश घास का झाड़ू (जो दो फीट लम्बा, सात इंच चौड़ा था, और जिसकी मूठ मुक्ताओं से मंडित थी) रखा था, इन वस्तुओं की त्योहारों के अवसर पर प्रदर्शन और पूजा होती थी।

नव-संघाराम में वैश्रवणदेव को मूर्ति भी थी। वैश्रवणदेव संघाराम के रक्षक माने जाते थे। ह्वेनसांग कहता है कि बुद्ध का निर्वाण होने पर इन्द्र ने इस देवता (वैश्रवण) को उत्तरी प्रदेशों में बौद्धधर्म की रक्षा का दायित्व सौंपा था, और इस रूप में ही वह नवसंघाराम का रक्षक माना जाता था।

इस संघाराम के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु प्रज्ञाकर से ह्वेनसांग ने 'अभिधर्म' और विभाषा-शास्त्र का अध्ययन किया था।

बल्ख के बाद ह्वेनसांग दक्षिण की ओर चलकर कि-चिह (का-चिह) अथवा गज (gaz) पहुँचा था। यहाँ दस बौद्ध विहार थे जिन में तीन सौ हीनयानी सम्प्रदाय के भिक्षु रहते थे।

बमिआन (Bamian) के पहाड़ी नगर में दसियों बौद्ध-विहार थे जिन में सहस्रों हीनयानी भिक्षु रहते थे।

महायान बौद्धधर्म भागवत धर्म की भक्ति-भावना से स्फूरित होकर अंकुरित और पल्लवित हुआ था और परिणामत भक्ति-भाव से प्रेरित महायानियों में बुद्ध का भी अब वही स्वरूप हो गया था जो भागवती आराधक-भक्त्त में

नगर के उत्तर-पूरब में पहाड़ी पर बुद्ध की बड़ी प्रतिमा स्थित थी, जो १४० या १५० फीट ऊँची थी। उसके पूरब में एक बौद्ध-विहार था। इसके पूरब तरफ शाक्यमुनि बुद्ध की सौ फीट ऊँची प्रतिमा स्थापित थी।

कपिसा (काफिरिस्तान) बौद्धधर्म का केन्द्र था। ह्वेनसांग ने वहाँ के राजा को क्षत्रिय जाति का बतलाया है, जो एक उदार-शासक और बौद्ध धर्म का अनुयायी था। वह प्रतिवर्ष बुद्ध की अट्ठारह फीट ऊँची चाँदी की मूर्ति बनवाता था, और मोक्ष-परिषद् में जरूरतमंदो और विधवाओ व विधुरो को मुक्तहस्त दान देता था।

यहाँ पर सौ बौद्ध-विहार थे जिन में ६ हजार बौद्धभिक्षु रहते थे, जो अधिकाश में महायानी थे। यहाँ पर अनेक देवमंदिर भी थे। दिगम्बर, पाशुपत आदि सम्प्रदाय के साधु भी वहाँ रहते थे—(Watters Vol I pp 105 to 123)

भारत से वापसी यात्रा के समय ह्वेनसांग ने—मार्ग में पड़ने वाले कई स्थानों का उल्लेख किया है, जो बौद्धधर्म के केन्द्र थे।

गजनी में सैकड़ो बौद्धविहार थे, जहाँ दस हजार से भी अधिक महायानी भिक्षु रहते थे।

काबुल का तुर्क बादशाह बौद्धधर्मी था। बदख्शा का शासक भी बौद्ध था।

पामीर की घाटी में स्थित तस्कुरघन (Tashkurghan) के लोग बौद्धधर्म के सच्चे अनुयायी थे। वहाँ का राजा भी बौद्धधर्म का सरंक्षक और सस्कृति का पण्डित था।

काशगर में सैकड़ो बौद्धविहार और भिक्षु थे। ये भिक्षु त्रिपिटिक और विभाषा शास्त्र को कण्ठस्थ कर रखे थे। यहाँ की लिपि भारतीय प्रकार की थी।

खोतान (गोस्थान या कुस्तान) के लोग भी बौद्ध थे। यहाँ पर सौ से ऊपर बौद्धविहार थे जहाँ पाच हजार से भी अधिक भिक्षु रहा करते थे, जो अधिकाशत महायानी थे। यहा की लेखन शैली भारतीय प्रकार की थी। यहा का राजा भी बौद्धधर्मी था (Wattres Vol II, p 302)।

विष्णु का था। ब्राह्मणधर्म की उदार वृत्ति, उदात्त प्रवृत्ति ने बुद्ध को विष्णु का ही एक अवतार मान कर उन्हें अपने आराध्य नारायण-देव में प्रतिष्ठित और समाहित कर बुद्ध और विष्णु को एक एवं अभिन्न कर दिया था। ललितविस्तार में बुद्ध को सर्वशक्तिमान् तथा पुरुषोत्तम कहा गया है और दोनों बुद्ध एवं नारायण में 'एकआत्मभाव' (अर्थात् नारायण ही बुद्ध हैं) दर्शाया गया है। इस प्रकार माना गया कि नारायण कृष्ण की तरह महायानियों के भगवान बुद्ध अथवा तथागत भी भूतों (जीवों) के सर्वकल्याण एवं धर्म की पुर्नस्थापना के लिए धर्म की हानि होने पर युग-युग में बारम्बार अवतार लिया करते हैं।[1]

भारत से बाहर बौद्धधर्म के इस प्रचार-प्रसार का श्रेय सम्राट हर्ष को देते हुये प्रोफेसर मुखर्जी कहते हैं कि श्री हर्ष का युग भारतीय इतिहास का एक यशस्वी-युग था, जब भारत इस आदर्श सम्राट के अधीन सुव्यवस्थित था, और अपने पड़ोसियों को अपने विचारों से प्रभावित करने में सक्षम रहा, जिस कारण पड़ोसी देश उस युग में भारत को ज्ञान और संस्कृति का स्रोत (गृह) मानकर उसकी तरफ अभिमुख रहे—' India saw in the age of Harsa one of the most glorious period of her history, when internally she was efficiently organized for a free and full self-expression under a sovereign who was an unbending idealist, while, externally, she was thus enabled more effectively to impress her thought upon her neighbours who turned to her as the home of the highest wisdom and culture in those days' (Harsha, p 187)

१. " .In the Lalita vistara the Buddha is formally assimilated with Narayana, he is endowed with his might, like him he is invincible he has the very being of Narayana's himself'

Not only at Gaya did he (Buddha) attain supreme enlightenment, he had really reached it many hundred thousand myriads of kotis of ages before Then in those ages he brought myriads of beings to ripeness "Repeatedly am I born in the world of the livin_o".

ब्राह्मणधर्म, दर्शन और गाथाओं से प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की त्रिमूर्ति के रूप में बुद्ध, अवलोकितेश्वर और तारा (अथवा मञ्जुश्री) को संयुक्त कर बौद्धधर्म में भी त्रिमूर्ति की स्थापना कर ली गयी थी।[1]

इन परिवर्तनों के परिणाम से बुद्ध और विष्णु के बीच का अन्तर मिटता चला गया और भारत की सामान्य जनता राम और कृष्ण की भांति बुद्ध को

So Krishna has taught, "Though birthless and unchanging, I come into birth age after age" (Theism In Medeival India p 46 and p 81)

1 ह्वेनसांग ने नालन्दा से २० मील दूर पश्चिम की ओर एक बौद्ध विहार का उल्लेख किया है जिसमें तीन मन्दिर थे। बीच के मन्दिर में बुद्ध की ३० फीट ऊँची मूर्ति स्थापित थी। उसके बाईं ओर वाले मन्दिर में तारा बोधिसत्त्व और दाहिनी ओर के मन्दिर में अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ स्थापित थीं। तारा सामान्यतः अवलोकितेश्वर की शक्ति (पत्नी) और ज्ञा-जननी मानी जाती हैं। सम्भव है चीनी यात्री ने भूल से तारा को पुरुष देवता समझा हो या नारी शक्ति बनने से पूर्व तारा अवलोकितेश्वर की तरह बोधिसत्त्व के रूप में ही माना जाता रहा हो। देवी के रूप में तारा की पूजा विशेषतया मंगोलिया और तिब्बत में प्रचलित थी।

बौद्ध धर्म की त्रिमूर्त्ति के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए कारपेन्टर लिखते हैं—"Surrounded by the complex mythology and the different philosophical schools of Hinduism, it was inevitable that Buddhism should be exposed to constant pressure from its religious environment, and that there should be continuous action and reaction between the various systems of thought and pracitce The great sectarian deities, as they are sometimes called, Vishnu and Siva, had long been (in the Seventh century) well established, with their consorts, who came to be regarded as embodiment of their Sakti or divine energy The tendency was not without influence in Buddhism' (Theism in Medeival India p 112)

भी नारायण का ही रूप मानने लगी और लोकदृष्टि में विष्णु एवं बुद्ध में कोई भिन्नता न रह गयी, संक्षेप में बुद्ध विष्णु के अवतारों की शृंखला में अन्तिम अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।[१] इस तरह ब्राह्मणधर्म बुद्ध को अपने में समाहित कर बौद्धधर्म को पृथक सम्प्रदाय के रूप में धीरे-धीरे भारत की भूमि से हटाता चला गया। प्रयाग के दान-महोत्सव पर सम्राट हर्ष ने बुद्ध और फिर उनके साथ विष्णु (आदित्यदेव) और शिव (ईश्वरदेव) की मूर्तियाँ भी स्थापित की थी। इस त्रिमूर्ति के क्रम में स्पष्टतः ब्राह्मण त्रिमूर्ति प्रतिलम्भित होती है। अन्तर इतना ही है कि ब्रह्मा की जगह उनमें बुद्ध रखे गये थे।[२] अतः प्रत्यक्ष है कि सातवीं शती में बुद्ध, ब्रह्मा का स्थान ग्रहण कर ब्राह्मण त्रिमूर्त्ति के ही अंग बना दिए गए थे। किन्तु ८वीं-९वीं शती में कुमारिल और शंकराचार्य आदि ब्राह्मण दार्शनिकों के प्रभाव से जब बौद्धधर्म दब गया और ब्राह्मणधर्म भारत का प्रधान धर्म हो चला तो बुद्ध विष्णु में एकआत्म अथवा एकाकार हो गए और ब्रह्मा पूर्ववत् अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हो गये।

ब्राह्मणधर्म और दर्शन के प्रभाव के अतिरिक्त भारत में बौद्धधर्म के क्षीण होने का कारण उसकी अपनी आन्तरिक कमजोरियाँ भी रही है। बौद्धधर्म में धर्म के प्रचार के लिए पहले जो उत्साह था वह अब शिथिल पड गया था। श्री कारपेण्टर के शब्दों में बौद्ध-जन जब अपने विभिन्न मतों व विचारों की पुष्टि में विहारों की चाहरदीवारी में बैठ कर ग्रन्थ लिखने में जुटे हुए थे, तब ब्राह्मण-वर्ग भारत की राष्ट्रीय परम्परा पर लोकप्रिय गाथाओं (पुराणों), महाकाव्यों तथा स्मृतियों पर आधारित धर्म के सुगम और सुन्दर परिवेश में अपनी व्याख्याओं व आख्यायिकाओं के माध्यम द्वारा विष्णु (कृष्ण) और शिव तथा उनसे सम्बन्धित धर्म और दर्शन का जनता में वेग से प्रचार करते रहे। ब्राह्मणधर्म के इस प्रचार के वेग को रोकने में बौद्ध सामर्थ्यहीन सिद्ध हुए और वे राम और कृष्ण से सम्बन्धित महाकाव्यों के सादृश्य की जैसी रचनायें शाक्यमुनि गौतम के प्रचार के लिए सृजित न कर

---

१ "With the deification of the Buddha and his admission into the Vishnuite pantheon as an incarnation of Narayan-Vishnu, there was little to distinguish the Buddhist laity from their Brahmanical neighbours"—(An Advanced History of India ed Majumdar etc p 201)

२ Theism in Medeival India p. 110 and fn 5

सके, और फलतः वे बुद्ध को राम और कृष्ण की तरह लोकप्रिय बनाने में असमर्थ रहे। परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणधर्म के बढ़ते हुए वेग ने धीरे-धीरे बौद्धधर्म को उखाड़ फेंका और बुद्ध को विष्णु अथवा शिव में समाहित कर अपने आराध्य देवों में एकीकृत कर दिया।[1] विष्णु शिव और बुद्ध का एक में मिलना इस बात का भी प्रमाण है कि विष्णु और शिव से सम्बन्धित धर्म कोई वैसा और परिवर्तित न हो सकने वाला धर्म नहीं था, जो इसीलिए ब्राह्मण-धर्म नये दर्शन एवं नये विचारों को ग्रहण करने में सहज रूप से पूरी तरह समर्थ और सक्षम रहा।[2]

धार्मिक सहिष्णुता—बौद्ध और ब्राह्मण आदि सम्प्रदाय यद्यपि अपने धर्म और दर्शन की अभिवृद्धि के लिए एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी और प्रतिस्पर्धी थे, लेकिन साथ ही एक दूसरे के भाव-विचारों का वे श्रवण एवं आदर-सम्मान भी करते थे, जिस कारण उन में पारस्परिक सौहार्द एवं विचार सहिष्णुता विद्यमान रही।

पुष्यभूति वंश का प्रथम महाराज पुष्यभूति और प्रभाकरवर्धन परमशैव एवं आदित्यभक्त थे, लेकिन बुद्ध और बौद्धधर्म के धर्म के प्रति उन के हृदय में सदा सद्भाव और समादर बना रहा जिस तरह बौद्ध होने पर भी सम्राट श्रीहर्ष के हृदय में ब्राह्मण देवी-देवताओं के प्रति सम्मान, सद्भाव और श्रद्धा पूर्ववत् बनी रही।

---

१ बंगाल में पाल राजाओं के समय में शिव, बुद्धलोकेश्वर के रूप में पूजे जाने लगे थे और ११वीं शती में बुद्ध शिव में ही समाहित कर लिए गए थे—

(F K Sarkar, The Folk Elements In Hindu Culture (1917) p 169 and Theism in Medeival India p 118)

२ „The religious forces of Hinduism embodied in the two great deities Vishnu and Civa, associated with the once popular Brahma in a group of the Holy Three, had support of an immense tradition and a powerful priestly caste Founded upon the ancient hymns, the codes of sacred law, the records of primitive speculation, the cults of Vishnu and Civa were not on fixed or rigid forms They could adpet themselves to new modes of thought and take without difficulty the likeness of their rival" (Theism In Medeival India p 117)

बाण ने परम-माहेश्वर आदिराज पुष्यभूति की राजनगरी स्थाण्वीश्वर का वर्णन् करते हुये उसे समान रूप से ब्राह्मणों और बौद्धों का आश्रयस्थल बताया है। इसीलिए ब्राह्मण मुनि उसे 'तपोभूमि' समझते थे,—यस्तपोवनमिति मुनिभिः, सदाचारी (धर्मपरायण) लोग उसे 'साधु-समागम' का स्थान समझते थे—साधु-समागम इति सद्भिः, और बौद्धभिक्षु उसे शाक्यमुनि का आश्रम—शाक्याश्रम इति श्रमिभि' समझते थे (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६५-१६६)।

प्रत्यक्ष है कि पुष्यभूति महाराज सभी प्रकार के धर्मों और साधुओं आदि को अपने राज्य में आदर-सम्मान देने के आदि थे।

महाराज प्रभाकरवर्धन की बीमारी के अवसर पर उनके स्वस्थ होने के लिए यदि ब्राह्मण शांति के लिए हवन कर रहे थे, संहितामन्त्रों और शिव-मंदिर में रुद्र एकादशी का जप कर रहे थे, और पवित्र शैव भगवान शिव की पूजा में लगे थे, तो बौद्ध आचार्य भी 'महामयूरी' (विद्या) का पाठ करने में व्यस्त थे—

> क्रियमाणपढाहुतिहोमम्, प्रयतविप्रप्रस्तुतसंहिताजप जप्यमानरुद्रैकादशी-शब्दायमानशिवगृहम् पठ्यमानमहामायूरीप्रवर्त्यमान (पंचम उच्छ्वास, पृ० २६५)।

पुष्यभूति वंशीय राजाओं के सभी धर्मों के प्रति इस औदार्य और समादर का ही परिणाम था कि सभी जनों और वर्गों में तब एक दूसरे के प्रति सद्भाव और सौहार्द रहा, जैसा कि ह्वेनसाग और हर्षचरित के विवरणों से प्रकट है।

नालंदा विश्वविद्यालय यद्यपि प्रमुखतया बौद्ध-अधिष्ठान था, लेकिन जैसा कि पूर्व वर्णन् किया जा चुका है, उस में ब्राह्मण-धर्म, दर्शन तथा सब साधारण के लिए उपयोगी शिल्प-व विज्ञान की शिक्षा के अध्ययन एवं अध्यापन की भी पूर्ण व्यवस्था थी। कतिपय विहारों में ह्वेनसाग[१] के विवरणानुसार हीनयानी और महायानी सम्प्रदाय के भिक्षु साथ साथ ही रहा करते थे।

---

१ Yuan chung does not state that the adherents of the two systems (Hinayana and Mahayana) formed two *classes apart he knew that in some places they even* lived together in one monastry'—(Watters Vol I, p 164)

हर्षचरित में विन्ध्याटवी में बौद्ध-आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम का जो चित्र उपस्थित किया गया है उस से भी प्रकट है कि सभी धर्मों में परस्पर हार्दिक सद्भाव और एक दूसरे के प्रति समादर था तथा जैसा महान् अशोक ने इच्छा व्यक्त की थी कि सब धर्मों के लोग साथ रहें और अवश्यमेव एक दूसरे के धर्म की चर्चा में शामिल होकर 'बहुश्रुत' बनें, उसी आदर्श पर हम विन्ध्याटवी के आश्रम में विभिन्न धर्मों और दर्शनों के अनुयायी साधुओं को एक साथ रहते और धर्मचर्चा में संलग्न पाते हैं।

आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन करते हुये हर्षचरित में कहा गया है कि वहाँ अनेक देशों (जनपदों) के वीतराग साधु आकर रहते थे। वीतराग साधुओं में, जो आश्रम में रहकर वहाँ श्रवण, मनन, और प्रवचन करते थे। अर्हत (जैन साधु), मस्करी (पाशुपत), श्वेतपट (श्वेतवस्त्र वाले जैनसाधु), पाण्डुर भिक्षु (आजीवक साधु) भागवत (कृष्ण के अनुयायी), वर्णी (धार्मिक शिक्षा लेने वाले ब्रह्मचारी), केशलुञ्चक (जैनसाधु), कापिल (कपिल के साख्य दर्शन को मानने वाले), लोकायतिक (चार्वाक के अनुयायी), काणाद (वैशेषिक), औपनिषद (वेदान्त दर्शन के मानने वाले), ऐश्वरकारणिक (नैयायिक, ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता मानने वाले), धर्मशास्त्री (स्मृतियों के अनुयायी), पौराणिक, शाब्दिक (शब्दब्रह्म के अनुयायी), पाञ्चरात्रिक (प्राचीन वैष्णवधर्मी) आदि के नाम गिनाये गए हैं।[1]

बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम में विभिन्न धर्मों और दर्शनों के अनुयायियों का साथ मिलजुलकर रहना और धर्म-दर्शन पर भाव-विनिमय करना, विभिन्न धर्मों के बीच पारस्परिक सहिष्णुता, उदारता और सौहार्दता का पूर्ण परिचायक है।

आश्रमों का, भारतीय धर्म, संस्कृति और ज्ञान के विकीरण और समन्वय एवं एकात्मता के प्रवचन और आदान के इतिहास में सुदूर प्राचीन-काल से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बहुत सम्भव है आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम की तरह उस समय देश में अन्यत्र भी इसी प्रकार के ब्राह्मण तथा बौद्ध-आश्रम विद्यमान रहे हों जो सभी धर्मों की सार-वृद्धि और परस्पर समभाव एवं समन्वय स्थापित करने में संलग्न और यत्नशील थे। आश्रमों के इस स्वरूप को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान और संस्कृति तथा

१ हर्षचरित अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४२२-४२३। Hc C & T, p 236

विभिन्न धर्मों में मेल और सामीप्य स्थापित कराने में उन का बहुत बड़ा योग और हाथ रहा है।[1]

बौद्धधर्म की तरह ब्राह्मणधर्म मे भी अनेक मत, मार्ग और सम्प्रदाय प्रचलित थे जैसा कि बाण और ह्वेनसाग तथा उसकी 'लाइफ' के विवरणो से पता चलता है। बाण ने हम उल्लेख कर चुके हैं, ब्राह्मणधर्म के अन्तर्गत भागवत्, पाचरात्रिक (भागवत् धर्म का ही एक सम्प्रदाय), शैव, पौराणिक, कापिल, काणाद, और औपनिषदि आदि धर्मों अथवा सम्प्रदायो का उल्लेख किया है। लाइफ में भूतो, कापालिको और जुटिक अथवा चुडिक आदि सम्प्रदाय के साधुओ का उल्लेख है। विभिन्न दर्शनो के विचार धारा वालो में लाइफ में लोकायतिकों तथा साख्य और वैशेषिक दर्शन के मानने वालो का उल्लेख है।[2]

लाइफ के अनुसार दुर्गा (शिव की रौद्र शक्ति) के उपासक देवी की सन्तुष्टि और समृद्धि की प्राप्ति के लिए वर्ष में एक बार नरबलि दिया करते थे। किन्तु नरबलि देने वाले उपासक डाकू कहे गए हैं जिससे प्रतीत होता है कि दुर्गा की पूजा का यह स्वरूप जनसाधारण से सम्बन्धित न होकर केवल चोर और डाकुओ के हिंसात्मक गिरोहो तक ही सीमित रहा होगा।[3]

---

१ 'These forest instructions were far older than Buddhism itself By such means was the intellectual life of India continually upheld Brahmanical orthodoxy contrived to accommodate both atheistic (nirisvara) and theistic (sesvara) schemes of thought within its cults (Theism In Medeival India, p 112)

२ Life pp 161 162

३ "Now these pirates pay worship to Durga, a spirit of heaven, and every year during the autumn, they look out for a man of good form and comely features, whom they kill, and offer his flesh and blood in sacrifice to their divinity, to procure good fortune" (Life p 86)

डा० त्रिपाठी इस उल्लेख के आधार पर भारत में सब नरबलि प्रथा प्रचलित होने का अनुमान करते हैं, वे लिखते हैं—"This (incident)

ब्राह्मणधर्म में अनेक सम्प्रदायों के होते हुए भी सातवीं शती में शैव और वैष्णव ये दो सम्प्रदाय ही प्रमुख थे और इन दो में भी शैव सम्प्रदाय का विशेष प्रचार-प्रसार था। बौद्धधर्म में प्रतिष्ठित होने के पूर्व तक सम्राट् हर्ष शिव अथवा महेश्वर के ही उपासक थे। कामरूप का भास्करवर्मन और बौद्धों का विरोधी कर्णसुवर्ण का राजा शशांक भी शिव के उपासक थे। अतः प्रकट है कि गुप्तों के समय उत्तरी भारत में विष्णु और भागवत् धर्म को जो प्राधान्य प्राप्त था गुप्तों के बाद छठी और सातवीं शताब्दी में उसका स्थान शैवधर्म ने ले लिया था।[1] दक्षिणभारत में भी शैवधर्म का ही प्रचार अधिक था। हर्षचरित से विदित होता है कि आन्ध्र और द्रविड जनपदवासियों में तांत्रिक शैव-धर्म शायद विशेष रूप से प्रचलित था। बाण ने तांत्रिक उपासना में प्रविष्ट और आन्ध्र के दाक्षिणात्य शिव-शक्ति के उपासक तांत्रिकाचार्यों का उल्लेख किया है।[2] श्री हर्ष का आदि पूर्वज पुष्पभूति शिव

---

clearly proves that human sacrifice to propitiate the gods or goddesses were then not unknown" (History of Kanauj p 146 fn 1)

१ "In the sixth and seventh centuries A. D saivism seems to have replaced Vaishnavism as the Imperial religion of Northern India It counted among its votaries supreme rulers, foreign as well as indigenous, such as Mihirgula, Yasodharman, Sasanka and Harsha" (An Advanced History of India, p. 203)

२ राज्यवर्धन जब हूणों पर चढ़ाई करने गए थे, तो श्री हर्ष भी पीछे-पीछे कुछ मंजिलों तक गये थे और भाई के कैलाश की ओर बढ़ जाने पर वे हिमालय की तराई में आखेट में लग गए थे। इसी बीच महाराज प्रभाकरवर्धन की बीमारी का समाचार लेकर लेखहारक कुरंगक वहां पहुँचा। बीमारी के समाचार से दुःखी हो श्री हर्ष आखेट छोड़कर वापस जाने के लिए तुरन्त-प्रयाण कर दिये।

स्कन्धावार (स्थायीशिविर) वापस लौटने पर, वहाँ का जो शोकमग्न दृश्य श्री हर्ष को देखने को मिला उस का वर्णन उपस्थित करते हुए बाण ने लिखा है कि 'कहीं पाशुपत द्रविड वेताल (आमर्दकी वेताल। रौद्रवेतालोद इवान्ये = भास्कर) को प्रसन्न करने के लिए मुण्ड का उपहार देने को

सुप्रसिद्ध भैरवाचार्य को अपना गुरु मानते थे, वे दाक्षिणात्य महाशैव थे। समार में वे द्वितीय दक्ष-यज्ञ भग करने की ख्याति रखते थे (पहला दक्ष यज्ञ शिव ने भग किया था)। वे अपनी अनेक विद्याओ और सहस्त्रो गुणो के लिए जगविख्यात थे।[१]

हर्षचरित और हर्ष के प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नाटको मे अनेक हिन्दू देवी-देवताओ का भी उल्लेख है जैसे ब्रह्मा, कृष्ण, शिव (महाकाल = हर), इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर, और काम (कामदेव) तथा लक्ष्मी (विष्णु की शक्ति), पार्वती (गौरी, उमा, गिरजा, दुर्गा = शिव की शक्तियाँ,) सरस्वती, गगा, यमुना आदि।

ब्राह्मण देव-मन्दिरो में पुराणो और महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) की कथाओ का पारायण किया जाता था। यह प्रथा उन दिनो कम्बोडिया के

तैयारी में थे और कही आन्ध्र के पुजारी भुजा उठाकर देवी चण्डि की मनौती में भुजा उठाये थे—

> 'क्वचिन्मुण्डोपहारहरणोद्यतद्रविडप्रार्थ्यमानामर्दकम्,
> क्वचिदान्ध्राद्ध्रियमाणवाहुवप्रोपयाच्यमानचण्डिकम्—
> (पचम उच्छ्वास, पृ० २६३)।

'In one place a Dravidian was ready to solicit the Vampire (Vetala) with the offering of a skull In another an Andhra man was holding up his arms like a rampart to conciliate Candi'—(Hc C & T, p 135)

१ 'साक्षाद्दक्षमखमथन दाक्षिणात्य बहुविधविद्याप्रभावप्रख्यातैगुणै शिष्यैरिवानेकसहस्त्रसख्यैर्व्याप्तमर्त्यलोक भैरवाचार्यनामान महाशैवम् (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १७१)।

" a certain great saiva saint named Bhairavacarya, almost a second overthrower of Daksa's sacrifice, who belonged to Deckan, but whose powers, made famous by his excellence in multifarious sciences, were, like his many thousands of disples, spread abroad over the whole sphere of humanity Hc C & T, p 85

भारतीय उपनिवेश के हिन्दू-मन्दिरों में भी प्रचलित थी।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म-विजय का जो महान प्रयत्न तीसरी शताब्दी ई०पू० में मौर्य-सम्राट अशोक ने प्रारम्भ किया था और जिसे महान् कनिष्क और यशस्वी गुप्त-सम्राटों ने भी अविच्छिन्न रखा, वह हर्ष के युग में पहुँच कर पूर्णता प्राप्त कर गया था और फल-स्वरूप भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म ने भारत के अनेक बाहरी पड़ोसी देशों और द्वीपों में भारतीय दर्शन एवं भाव-विचारों को प्रतिष्ठित कर बृहत्तर-भारत का निर्माण विस्तृत कर दिया था।[2]

बौद्ध और ब्राह्मणधर्म के अतिरिक्त तीसरा प्रमुख सम्प्रदाय जैनधर्म (निर्ग्रन्थों) का था, यद्यपि उसका प्रचार देश के कुछ भागों तक ही सीमित रहा। लादक में मुण्डों और कापालिकों के साथ निर्ग्रन्थों का भी उल्लेख है।[3] हर्षचरित में आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम में विभिन्न सम्प्रदायों के साथ जैनों का भी उल्लेख है और कादम्बरी में श्वेताम्बर अथवा दिगम्बर साधुओं का

---

१ "In Harsha Vardhana's reign pious recitations were performed in the temples and at the same period, a distant Cambodian colony organised similar public readings of the poem which was already preserved in written form" (Theism in Medieval India p 134—also fn 4—"Copies of the Mahabharata, the Ramayana, and an unnamed Purana, were presented to the temple of Veal Kantel, and the donour made arrangements to ensure their daily recitation in perpetuity"

२ "Indeed, the age of Harsha witnessed a considerable development of a Greater India beyond the limits of India both towards the Islands of the southern seas and the Eastern countries Indian culture was spreading in all the neighbouring countries of India" (Harsha, Mukerji, p 182)

३ Life, p 161

उल्लेख है। ह्वेनसांग के विवरणानुसार वैशाली, पुण्ड्रवर्धन (रागपुर-बंगाल), समतट (फरीदपुर-बंगाल), और सुदूर-दक्षिण में चोल तथा द्रविड (कांची) प्रदेश दिगम्बर निर्ग्रन्थों के मुख्य केन्द्र थे।[1]

---

१ Watters II p 184 and p 187, and pp 224–226

अध्याय १०

श्री हर्ष युगीन-भारत



प्राचीन चीन के लोग भारत को शेन-तु (Shen-tu), ह्सिन-तौउ (Hsien-tou), त' इन-चु (T'ien-chu) आदि नामों से कहा करते थे। ह्वेनसांग के अनुसार भारत का सही नाम इन-तु (Yin-tu = संस्कृत = इन्दु-देश) है। इन्दु अर्थात् इन्दु (चन्द्रमा) का देश।

भारत का इन्दु नाम पड़ने का कारण ह्वेनसांग ने यह दिया है कि आदित्य (स्वरूप) बुद्ध के अस्त होने पर अनेक साधु और ज्ञानी पुरुष (अर्हत) हुए जिन्होंने लोगों को अपने उपदेशों और निर्देशनों से इस प्रकार प्रकाश दिया जैसे चन्द्रमा (रात्रि को) अपनी ज्योत्स्ना से प्रकाश विकीर्ण करता है—और इसीलिए भारत 'इन्दुदेश' (इन्दु-देश) कहलाया।[1]

---

१ ' probablly India was likened to the moon as (since the sun of the Buddha set) it has had a succession of holy and wise men to teach the people and exercise rule as the moon sheds its bright influences,—on this account the country has been called Yien-tu (Watters Vol I, p 138 and p 134 fn 3 and ff)

ह्वेनसाग ने भारत का दूसरा नाम ब्राह्मणदेश (ब्राह्मणो का) बताया है। चानी यात्री का कहना है कि 'भारत के सभी वर्गों और वर्णा में, ब्राह्मण सब से विशुद्ध (चरित्रवान) और सुप्रतिष्ठित वर्ग है, जिस प्रसिद्धि के कारण भारत ब्राह्मण-देश' नाम से लोकप्रिय है।'

सपूर्ण भारत (इन्दु) का घेरा ह्वेनसाग के अनुसार नव्वेहजार ली था, जिसके उत्तर मे हिमशैल थे और तीन ओर वह समुद्र से आवृत्त था। राजनैतिक रूप से वह सहत्तर राज्यो मे बँटा था।[1]

भारत के नगर

चीनी यात्री ह्वेनसाग के समय मे भारत अनेक समृद्ध नगरो से परिपूर्ण था। उस ने अपने यात्राविवरण में अनेक नगरो तथा प्राचीन विश्रुत लेकिन नष्टप्राय राजनगरियो का भी वर्णन् किया है। चीनी यात्री द्वारा उल्लेखित नगरो का सक्षेप में उस के विवरणानुसार नीचे वर्णन् अंकित किया गया है—

थानेश्वर (स्थाण्वीश्वर)—ह्वेनसाग के विवरणानुसार थानेश्वर जनपद का घेरा सात-हजार ली था। राजधानी का नाम भी थानश्वर था जिस की परिधि बीस ली थी। यह प्रदेश उर्वर और समृद्ध था। फसलें बहुत होती थी।[2] जलवायू उष्ण थी। लोग उदारवृत्ति के थे। धन-व्यय (ऐश्वर्य प्रदर्शन में) करने में यहाँ के धनिक (श्रेष्ठी) एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी थे।

नगर में मुख्यतया तीन बौद्ध-विहार थे जिन में सात सौ हीनयानी बौद्ध (भिक्षु) निवास करते थे।[3]

---

१ 'Among the Various castes and clans of the country the brahmins, he (Yuan-Chuang) says, were purest and in most esteem So from their excellent reputation the name "Brahmana—Country" had come to be a popular one for India' (Ibid, p 140)

२ स्थाण्वीश्वर (श्रीकण्ठ) जनपद का वर्णन करते हुए बाण ने भी वहाँ की भूमि को उत्कृष्ट गुणा वाली (मेदिनीसारगुणैरिव) कहा है, तथा वहाँ के पुण्ड्र (गन्ने), जीरा (जीरिक) शालि (धान) राजमाष, मूँग, गेंहू (गोधूम) आदि के लहलहाते खेता और धान से परिपूर्ण खलिहानों का वर्णन् किया है—(तृतीय उच्छ्वास, पृ० ५९१ और Hc C & T, p 79)

३ Watters Vol I, 314

हर्षचरित में भी स्थाण्वीश्वर जनपद को समृद्ध, उर्वर और सम्पत्तिशाली बताया गया है, और स्थाण्वीश्वर नगर को (समृद्ध व्यापार के कारण) व्यापारियों की 'लाभभूमि' कहा गया है—लाभभूमिरिति वैदेहकैः (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६५)।

देव हर्ष के समय में कन्नौज के राजधानी बनने से पूर्व स्थाण्वीश्वर ही पुष्यभूतियों की राजधानी रही थी।

मथुरा—मथुरा नगर का घेरा बीस ली (=४ मील) था। मथुरा-जनपद की भूमि बहुत उर्वर थी। यहाँ आम दो प्रकार के होते थे। एक आकार में छोटा और पकने पर पीला हो जाता था। दूसरा (आम) बड़ा कद का और पकने पर भी हरा ही रहता था।

सुन्दर छापे वाले सूती-वस्त्र और सुवर्ण का उत्पादन होता था। जलवायु गरम थी। लोगों के रीति-रिवाज सुन्दर थे। लोगों की 'कर्म' पर आस्था थी और वे नैतिकता और बौद्धिकता का समादर करते थे।

मथुरा-जनपद में बीस से अधिक बौद्ध-विहार थे, जहाँ हीनयान और महायान सम्प्रदाय के दो हजार भिक्षु रहा करते थे। देव मन्दिरों की संख्या पाँच थी।[1]

श्रुघन (srughna)—श्रुघन-जनपद की राजधानी श्रुघन नाम से ही प्रख्यात थी। यह नगर यमुना के पश्चिमीतट पर बसा था और उसका घेरा बीस ली था। जलवायु और प्राकृतिक उपजों में वह स्थाण्वीश्वर जनपद के जैसा ही था।

यहाँ के निवासी शुचि-चरित्र के थे। वे बौद्ध नहीं थे। वे उपयोगी विद्याओं और धर्म-शास्त्रों का समादर करने वाले थे।

श्रुघन में पाँच बौद्ध-विहार थे जिन में एक हजार बौद्ध-भिक्षु रहते थे। इन में से अधिकांश हीनयानी थे। भगवान बुद्ध ने इस नगर में आकर स्वयं धर्म-चर्चा की थी।

देवमन्दिर एक सौ थे और बौद्ध-इतर जना की संख्या बहुल थी (Watters. *Vol I, p 318*)।

मतिपुर—मतिपुर, इसी नाम के जनपद की राजधानी थी। जनपद

---

१ Ibid p 301

गंगा के पार पूरब में था। राजधानी (मातिपुर) का घेरा बीस ली था। जलवायु सुहावनी थी। धान, फल और फूल जनपद की मुख्य उपज थी।

पौर-जन व्यवहार में अच्छे थे। सु-विद्याओं का वे आदर करते थे। ऐन्द्रिक-विद्या (magical art) में वे कुशल थे। उन में बौद्ध और अन्य धर्मों के लोगों की संख्या समान थी।

मातिपुर-जनपद का राजा शूद्र वर्ण का था। बौद्ध-धर्म में वह आस्था नहीं रखता था। वह देवों का उपासक था।

वहाँ दस बौद्ध-विहार थे, जिन में आठ सौ से भी अधिक बौद्ध भिक्षु रहते थे, जो विशेषतः हीनयानी थे।

देवमन्दिरों की संख्या पचास से भी ऊपर थी (Ibid p 322)।

कनिंघम ने मतिपुर को, बिजनौर के पास पश्चिमी रुहेलखण्ड के मदावर या मन्दावर नगर से मिलाया है।[1]

मयूर गंगाद्वार—मयूर नगर मातिपुर के उत्तर-पश्चिम में गंगा के पूरब तरफ था। जनसंख्या घनी थी। यहाँ की उपज में खनिज पदार्थ और आभूषण-अलंकार मुख्य थे।

नगर के पास गंगा के समीप एक बड़ा चमत्कारी देव-महालय था। इस के प्रांगण में एक तड़ाग था, जिस के तटों पर पत्थर लगे थे और जिस में कूलों द्वारा गंगा से पानी पहुँचा करता था।

इसे गंगाद्वार कहते थे। यह पुण्य-अर्जन और पाप-विमोचन का स्थान नाम से प्रसिद्ध था।

यहाँ पर देश के कोने-कोने से लोग सहस्रों की संख्या में स्नान करने आते थे।

यहाँ के जनपद में धर्मात्मा राजाओं ने पुण्यशालाएँ निर्मित करवा रखी थी जहाँ पर दीन-अनाथों को शुल्क-मुक्त स्वादिष्ट भोजन और उपचार के लिए औषधियाँ दी जाती थी।

मयूर को कनिंघम ने गंगा नहर के सिरे पर स्थिति मायापुर से मिलाया है।[2]

---

१ Ancient Geography of India, p 348

२. Ibid p 351

गंगाद्वार सम्भवतया वर्तमान हरद्वार था।[1]

ब्रह्मपुर (पोलो कि-लो)—यह नगर कनिंघम के अनुसार गढ़वाल कुमायूँ जनपद में स्थित था।[2]

ब्रह्मपुर के उत्तर हिमालय में सुवर्णगोत्र जनपद था। यह जनपद उत्तम स्वर्ण के उत्पादन के कारण सुवर्णगोत्र नाम से प्रख्याति प्राप्त था। इस जनपद में रानी का शासन रानियाँ करती थीं, और रानी का पति यद्यपि राजा कहलाता था लेकिन वह शासन-कार्य नहीं करता था। इसलिये यह जनपद 'स्त्री-जनपद' नाम से भी विश्रुत था। इस के पूरब तरफ तिब्बत, उत्तर में खोटान, और पश्चिम में मल्सा (Malasa) था।[3]

गोविसान (Govisana) या गोविसन्न (Govisanna)—यह नगर पार्वत-दुर्ग के समान था। नगर की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। आबादी समृद्ध थी। सर्वत्र पल्लवित अरण्य और तड़ाग थे। लोग अपने व्यवहार में शुचि थे। वे विद्या-अर्जन और धर्म-कर्म में प्रीति रखते थे। अधिकांश लोग बौद्धेत्तर थे।

वहां दो बौद्ध-विहार थे जिन में सौ से अधिक भिक्षु रहते थे जो सब हीनयानी थे।

देवमन्दिर तीस से ऊपर थे।

नगर के समीप एक प्राचीन 'विहार' था। इस में उस स्थान पर अशोक का बनवाया एक स्तूप था, जहां भगवान बुद्ध ने एक मास तक धर्म-चर्चा की थी।[4]

कनिंघम के अनुसार गोविसान वर्तमान काशीपुर के पूरब तरफ एक मील की दूरी पर उज्जैन (ujain) गाँव के पुराने दुर्ग के पास स्थित था।[5]

अहिछत्र—अहिछत्र नगर इसी नाम के जनपद की राजधानी थी। नगर का घेरा सतरह या अट्ठारह ली था। जनपद की पैदावार धान्य थी, और जंगलों व झरनों की यहां बहुलता थी।

---

१ Watters Vol I, p 329

२ Ancient Geography of India p 355

३ Watters Vol I, pp 329–330

४ Ibid, p 331

५ Ancient Geography of India, p. 357

लोग व्यवहार में सच्चे थे। वे सत्यानुवेषी, विद्या-प्रणयी और प्रज्ञावान थे।

वहाँ दस बौद्ध-विहार थे जिन में एक हजार से अधिक हीनयानी बौद्ध-भिक्षु रहते थे।

देव मन्दिरों की संख्या नौ थी, और शिव के उपासक 'पाशुपत साधु' तीन सौ से भी अधिक वहाँ रहते थे।[१]

कनिंघम ने अहिच्छत्र-जनपद को रुहेलखण्ड के पूर्वी भाग से मिलाया है।[२]

कपित्थ या सकाश्य—सकाश्य नगर का घेरा बीस ली था। वहाँ चार बौद्ध-विहार थे जहाँ एक हजार से अधिक हीनयानी बौद्ध-भिक्षु रहते थे।

देव मन्दिरों की संख्या दस थी और लोग शैव धर्म के मानने वाले थे।

भगवान बुद्ध त्रिसर्तिंश स्वर्ग में वर्षावास के बाद सकाश्य नगर में ही उतरे थे। इस घटना की स्मृति में अशोक ने वहाँ एक पाषाण-स्तम्भ स्थापित किया था। स्तम्भ कठोर, चमकीला और नीललोहित रंग का था और उसके शीर्ष पर आसन सिंह की मूर्ति बनी थी।[3]

कन्याकुब्ज या कन्नौज—यह नगर लम्बाई में बीस ली और चौड़ाई में पाँच ली था। नगर की किलेबंदी सुदृढ़ थी। इसमें अनेक सुन्दर भवन, अनेक सुन्दर वाटिकायें और सरोवर थे तथा विचित्र देशों की दुर्लभ वस्तुएँ वहाँ एकत्र थी।

पौरजन समृद्ध थे और अनेक परिवार महाधनी थे। फल-फूलों की बहुलता थी।

लोग सुसभ्य थे और चमकीले रेशमी परिधान धारण किया करते थे। वे शिल्पों तथा विद्या के अनुरागी थे। उनके तर्क सुस्पष्ट और प्रेरक होते थे।

बौद्ध-विहारों की संख्या सौ से भी अधिक थी जिन में हीनयानी और महायानी दस हजार से भी अधिक भिक्षु रहते थे।

देव मन्दिरों की संख्या दो सौ से अधिक थी और बौद्ध-इतर जन सहस्रों की संख्या में थे।

---

१ Watters Vol 1, p 331

२ Ancient Geography of India, p 359

३ Watters Vol I pp 333

गुप्तयुग (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय पांचवीं शताब्दी) में चीनी-यात्री फाह्यान ने जब कन्नौज की यात्रा की थी तो उस समय उसे वहां केवल दो बौद्ध-विहार मिले थे। लेकिन ह्वेनसांग के समय में उन की संख्या सौ से ऊपर हो गयी थी।[1] इस का प्रधान कारण मौखरी-महाराज ग्रहवर्मन, जो बौद्धआचार्य दिवाकरमित्र का सखा और प्रशंसी था, और बाद में हर्षवर्धन द्वारा बौद्धधर्म को प्रश्रय दिया जाना ही प्रतीत होता है।

कन्नौज के भद्र-विहार में ह्वेनसांग ने तीन महीने ठहर कर महान् पण्डित बौद्ध-श्रमण वीरसेन से 'विभाषा' (शास्त्र) का अध्ययन किया था।

कन्नौज के उत्तर-पश्चिम में, ह्वेनसांग ने वर्णन किया है, अशोक का एक स्तूप था। इस स्थान पर भगवान बुद्ध ने सात दिन तक धर्म-चर्चा की थी। इस स्तूप के पार्श्व में एक और स्तूप था, जहां पर पूर्वकाल के चार बुद्ध बैठे और भ्रमण किये थे। एक छोटा स्तूप और था जिस में भगवान बुद्ध के बालों और नाखूनों के अवशेष रखे गये थे।

धर्म-चर्चा के स्थान वाले स्तूप के दक्षिण ओर गंगा के निकट तीन बौद्ध-विहार थे। इन विहारों में मनोहर मूर्तियां थीं, और वहाँ के भिक्षुगण गम्भीर थे। तीनों विहार के मन्दिर में एक मंजूषा थी जिस में भगवान बुद्ध का बिम्बधारी

---

१ ह्वेनसांग ने 'कन्याकुब्ज' नाम के सम्बन्ध में प्रचलित गाथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि पहले यह नगर 'कुसुमपुर' के नाम से प्रसिद्ध था। प्राचीन काल में ब्रह्मदत्त नाम का एक वीर और शक्तिशाली राजा वहाँ राज्य करता था। उन की सौ कन्यायें थीं। उसके समय में गंगा के तीर एक महावृद्ध ऋषि रहता था। वह सैकड़ों वर्षों से समाधिस्थ था। एक बार समाधि छोड़ने पर जब वह इधर-उधर भ्रमण कर रहा था उस ने राजा की सौ कन्याओं को देखा और राजा से इन में से एक राजकुमारी विवाह में मांगी। कन्यायें तैयार नहीं हुईं। राजा ऋषि के शाप से सन्त्रस्त हो उठा, तब सबसे छोटी राजकुमारी ऋषि के कोप से पिता की रक्षा करने के लिए ऋषि से विवाह करने को सहमत हो गयी। ऋषि को जब राजकुमारियों के व्यवहार का पता चला तो उसने शाप देकर ९९ राजकुमारियों को कुबड़ी होने का शाप दे दिया। कुसुमपुर तभी से कुब्जा (कुबड़ी) कन्याओं का नगर नाम से प्रसिद्ध हो चला। कान्यकुब्ज (कन्नौज) नाम के सन्दर्भ में इसी प्रकार की कहानी ब्राह्मण-गाथाओं में भी मिलती है–(Ibid, pp 340-343)।

दतावशेष रखा था, जो डेढ इच लम्बा था। दर्शनार्थियो को वह एक सुवर्ण (सिक्का) देने पर प्रदर्शित किया जाता था। नगर के पास और भी पवित्र बौद्ध भवन थे।

सूर्यदेव और महेश्वर के भी वहाँ विशाल महालय (मन्दिर) थे।[१]

नवदेवकुल (na-fo t'i-p'o-ku-lo)—यह नगर कन्याकुब्ज के दक्षिण-पूरब में सौ ली की दूरी पर गगा के पूर्वी तट पर स्थित था। इस का घेरा बीस ली था। नगर फूलो के कुजों और निर्मल सरोवरो से पूर्ण था।

गगा के पूर्वी तट पर विशाल देवमन्दिर था। नगर के पूरब में तीन बौद्ध-विहार थे जिन में पाच सौ से अधिक बौद्ध-भिक्षु रहते थे। विहारो के निकट अशोक के बनाये स्तूप के अवशेष थे। भगवान बुद्ध ने यहाँ पर सात दिन धर्म-प्रचार किया था।

विहारो के उत्तर तरफ तीन-चार ली पर अशोक का एक और स्तूप था। यहाँ पर भगवान बुद्ध ने पाच सौ बुभुक्षित दैत्यो को धर्म-दीक्षा देकर देवत्व प्रदान किया था।

नवदेवकुल का देवमन्दिर शायद विष्णु (हरि) मन्दिर था। इस नगर को वर्तमान नौबतगज से मिलाया गया है।[२]

अयोध्या (A-Yu-T'E)—अयोध्या-जनपद में धान्य, फलो और फूलो की उपज अच्छी थी।

राजनगरी अयोध्या की परिधि बीस ली थी। पौरजन सुसभ्य थे। उपयोगी शिल्पो और व्यावहारिक ज्ञान में वे प्रीति रखते थे।

वहाँ सौ से अधिक बौद्ध-विहार थे जिनमें हीनयान और महायान सम्प्रदाय के तीन हजार से अधिक भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिर दस थे। बौद्ध-इतर जन अल्पसख्या में थे।

नगर के अतर्गत वह प्राचीन विहार भी था, जहाँ पर वसुबधु ने महायान और हीनयान धर्म से सम्बन्धित अनेक शास्त्रो की रचना की थी। इस विहार

---

१ Ibid pp 351–352–353

२ Ibid pp 352–353 Ancient Geography of India, p 382

के पार्श्व में उस भवन के अवशेष थे जहां वसुबन्धु ने राजकुमारों, प्रसिद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों आदि को बौद्ध-धर्म पर व्याख्यान दिये थे।

वसुबन्धु की जीवनी-लेखक परमार्थ के अनुसार अयोध्या के सम्राट विक्रमादित्य ने अपने युवराज बालादित्य को वसुबन्धु के पास अध्ययनार्थ भेजा था। बालादित्य जब राजा हुआ तो उसने वसुबन्धु को (गान्धार से) अपने पास अयोध्या आमन्त्रित किया था (J R A S 1905 p 49)।

सन्दर्भित विक्रमादित्य शायद गुप्तवंशीय सम्राट स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी और सौतेला भाई पुरगुप्त था, और 'बालादित्य' उसका लड़का नरसिंहगुप्त था (Gupta coins, Allan introduction p I)।

नगर के उत्तर तरफ चार-पांच ली की दूरी पर एक विशाल बौद्ध-विहार था, जहां भगवान बुद्ध के प्रवचन-स्थान पर एक अशोक-स्तूप बना था। इस विहार के पश्चिम लगभग पांच ली पर बुद्ध के अवशेषों वाला स्तूप था।

नगर के दक्षिण-पश्चिम, पांच-छः ली की दूरी पर एक आम्रकुञ्ज में वह विहार था जहां आचार्य असंग ने अध्ययन और अध्यापन किया था।[1]

अयमुख(=हयमुख या आयमुख)—अयमुख इसी नाम के जनपद की राजधानी थी। नगर का घेरा बीस ली था। वहां पांच बौद्ध-विहार थे जिन में एक हजार से ऊपर भिक्षु रहते थे।[2]

देव मन्दिरों की संख्या दस थी। नगर के समीप दक्षिण-पूर्व में उस स्थान पर अशोक का एक स्तूप था जहां पर भगवान बुद्ध ने तीन महीने धर्म-चर्चा की थी। यहां पर बुद्ध के अवशेषों पर गहरे नीले पत्थर का एक और स्तूप था।

इस अंतिम स्तूप के पार्श्व में एक बौद्ध-विहार था, जिस में दो सौ से अधिक भिक्षु रहते थे। उस में भगवान बुद्ध की सुन्दर सजीव प्रतीमा थी। विहार के भवन और कक्ष विशाल और शिल्प की दृष्टि से भव्य थे। इसी विहार में शास्त्रविद् बुद्धदास ने 'विभाषा शास्त्र' की रचना की थी।

---

१ Watters Vol, I, p 355

२ अयोध्या से अयमुख जाते समय ही डाकुओं ने ह्वेनसांग व उसके साथ के लोगों को लूटा और पकड़ कर बलि देने का प्रयास किया था। किन्तु प्रकृति के कोप से भयभीत हो, अन्त में वे ह्वेनसांग द्वारा बौद्धधर्म में दीक्षित हो गये थे (Ibid 359–360)।

प्रयाग—प्रयाग इसी नाम के जनपद की राजनगरी थी। नगर परिधि में बीस ली था। यह गंगा और यमुना के संगम पर स्थित था।

नगर में बौद्ध-विहार केवल दो थे जिन में बहुत थोड़े हीनयानी भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिर सैकड़ो की संख्या में थे और बहुसंख्यक पौर-जन बौद्ध-इतर थे।

नगर के दक्षिण-पश्चिम एक चम्पक कुन्ज में उस स्थान पर अशोक का एक स्तूप था जहाँ पर भगवान बुद्ध ने शास्त्रार्थ में विरोधियो को न्यस्त किया था। इस के पार्श्व में बुद्ध के बालो और नाखूनो के अवशेष वाला स्तूप था।

नगर मे एक विश्रुत देव मन्दिर था जिस के सामने एक विशाल वट-वृक्ष था। इस मन्दिर में आकर पुरातन काल मे लोग आत्महत्या किया करते थे। किन्तु चीनी-यात्री कहता है कुछ समय पहले एक अभिजात शास्त्रज्ञ ब्राह्मण ने लोगो के अंधविश्वास को दूर कर आत्महत्या करने की प्रथा रोकने का प्रयत्न किया है। अंधविश्वास शायद यह था कि मंदिर में आत्महत्या करने से वे मर कर स्वर्ग पायेंगे।

नगर के पूरब तरफ नदियो के संगम-स्थान पर दस ली में विस्तृत बालूका भूमि थी जो महादान-भूमि नाम से प्रसिद्ध थी। इस स्थान पर प्राचीन काल से राजागण तथा अन्य दानी-जन पूजा और दान देने के लिये आते थे।

सम्राट हर्ष प्रतिपाचवें वर्ष इसी स्थान पर आकर महादान किया करते थे।

प्रयाग के संगम का वर्णन् करते हुए चीनी यात्री ने कहा है कि प्रतिदिन सैकड़ो आदमी गंगा-यमुना के पवित्र जल में डूब कर मृत्यु को प्राप्त होते थे। उन का विश्वास था कि ऐसा करने से वे स्वर्ग में अवतीर्ण होंगे। बन्दर और वन्य-पशु तक वहा आकर स्नान करने आते और फिर लौट जाते थे, कुछ वहीं मरणपर्यन्त उपवास करते थे।

इस सन्दर्भ में ह्वेनसाग ने एक बन्दर की कहानी कही है जो नदी के पास एक वृक्ष के तले रहता था, और शीलादित्य (सम्राट हर्षवर्धन) जब वहाँ गए थे वह (बन्दर) उपवास कर के मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

संगम की महादान-भूमि मे ह्वेनसाग ने क्लेशपूर्ण कठिन तपस्या करने वालो का भी उल्लेख किया है।[1]

---

१ ह्वेनसाग ने मन्दिर के जिस वट-वृक्ष का उल्लेख किया है, वह शायद वही

कौशाम्बी—कौशाम्बी इसी नाम के जनपद की राजधानी या मुख्य नगर था। नगर का घेरा तीस ली था। जनपद की मुख्य उपज धान और गन्ना थी। यहाँ के लोग साहसी, शिल्पों में रुचि रखने वाले और धर्म-कर्म वाले थे।

बौद्ध-विहारों की संख्या दस से ऊपर थी, लेकिन सभी विनष्ट-अवस्था में थे। बौद्ध-भिक्षुओं की संख्या तीन सौ से ऊपर थी। वे सभी हीनयानी थे।

देव-मन्दिर पचास से ऊपर थे। बौद्ध-इतर जनों की संख्या बहुत अधिक थी।

यहाँ के प्राचीन राजप्रासाद (बुद्ध के युग के राजा उदयन के प्रासाद से तात्पर्य है) के अन्तर्गत साठ फीट ऊँचा एक विशाल बौद्ध-मन्दिर था। इस मन्दिर में चन्दन की लकड़ी से काटी गयी एक बुद्ध की प्रतिमा थी जिस के शीर्ष पर पाषाण का छत्र बना था। इस प्रतिमा को अपने स्थान से कोई हटा नहीं सकता था। इसलिए उस मूर्ति के अनुरूप बने चित्रों की पूजा की जाती थी। बुद्ध की यथार्थ प्रतिमाएँ इसी मूर्ति के आधार पर बनायी गयी थी।

इस प्रतिमा का निर्माण सम्राट उदयन के समय हुआ था। ह्वेनसाग ने इस मूर्ति से सम्बन्धित एक गाथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि भगवान् बुद्ध स्वर्ग से जब सकाश्य (सकाराय) में उतरे थे तो यह मूर्ति तथागत को मिलने गयी थी।[1]

चीनी यात्री कहता है, नगर के दक्षिण-पूरब तरफ घोसिल के भवन के अवशेष थे। वहाँ एक बौद्ध-मन्दिर, एक स्तूप (जिस में बुद्ध के बाल और नाखून थे), और भगवान बुद्ध के स्नानगृह के भी अवशेष थे। यहाँ से थोडी दूर, लेकिन नगर के बाहर घोसिल (घोसित) का बनवाया विहार घोसिलाराम था। वहाँ पर अशोक द्वारा निर्मित दो सौ फीट ऊँचा स्तूप भी था। यहाँ ह्वेनसाग ने कहा है भगवान बुद्ध ने वर्षों धर्म-प्रवचन किया था।

वृक्ष है जो आज भी 'अक्षय-वट' के नाम से विद्यमान है और जिस की आज भी पूजा होती है—Ibid pp 361–365

१ वाटर्स ने लिखा है कि एक विवरण के अनुसार यह मूर्ति चीन ले जायी गयी थी। और 'लाइफ' के विवरणानुसार यह मूर्ति स्वयं वायुमार्ग से खोतान चली गयी। इस मूर्ति की प्रतिकृति हाग-मिंग-ति के समय ही चीन पहुँच गयी थी—Ibid p. 169

बुद्ध के समय मे घोसिल कौसाम्बी के राजा (उदयन) के तीन मुख्य मन्त्रियो में से एक था। वह भगवान बुद्ध के धर्म में दीक्षित हो गया था। बौद्ध-उपासक होने पर घोसिल ने अपनी भूमि पर भगवान के लिए एक 'आराम' (विहार) का निर्माण करवाया था। कौसाम्बी की यात्रा के अवसरो पर भगवान बुद्ध अधिकतर इसी आराम में रहा करते थे।

पालि साहित्य में घोसिल का श्रेष्ठी घोसित नाम से उल्लेख है, और उस के द्वारा निर्मित विहार को घोसितराम कहा गया है।

घोसितराम विहार के दक्षिण-पूर्व में, चीनी यात्री ने बताया है कि एक दो मंजिला भवन था जिस में ऊपर एक ईंटो का निर्मित ऊपरी कक्ष था जिस में वसुबन्धु निवास करते थे और यही उन्होने हीनयानियो के मत का खण्डन करते हुए 'विद्यामात्र सिद्धि शास्त्र' की रचना की थी।

घोसितराम के निकट आम्र-वन में महान् बौद्ध पण्डित असग के भवन के अवशेष थे। यही पर असग ने 'योगाचार-भूमि शास्त्र' पर भाष्य लिखा था।

नगर के दक्षिण-पश्चिम आठ-नौ ली के दूरी पर एक विषैले नाग की गुफा थी जिसे भगवान बुद्ध ने विनीत किया था और गुफा पर अपनी साया छोड गये थे।

इस गुफा के पास अशोक का बनवाया स्तूप था, और उस के पार्श्व में तथागत की सक्रमण भूमि और बालो व नाखूनो के अवशेष वाला स्तूप था।[१]

पाचवी शताब्दी मे फाह्यान ने भी कौसाम्बी की यात्रा की थी। उस ने लिखा है कि घोसितराम (विहार) में उस समय भी बौद्ध-भिक्षु रहते थे जो

---

१ Ibid pp 365–372

आचार्य असग, आचार्य वसुबन्धु के जेठे भाई थे। वे विज्ञानवाद योगाचार दर्शन के प्रवर्तक और महायान धर्म के महान् भाष्यकार थे।

भिक्षु धर्मरक्षक ने असग के विश्रुत 'योगाचार भूमिशास्त्र' का अधिकाश भाग चीनी मे अनुदित किया था। यह भिक्षु उत्तरपूर्वी चीन का निवासी था। इस प्रतिभाशाली भिक्षु ने लगभग दो सौ सस्कृत ग्रन्थो का चीनी में अनुवाद किया था जिन में से नब्बे अभी तक वर्तमान् है।

वह आचार्य असग का समकालीन माना जाता है (The Early History of Kausambi pp 77–78)।

विशेषतया हीनयान सम्प्रदाय के थे।[१] इससे प्रकट है कि ह्वेनसाग के दो सौ वर्ष पूर्व तक कौसाम्बी के बौद्धविहार अच्छी स्थिति में थे लेकिन ह्वेनसाग के समय में वे नष्टप्राय हो चुके थे।

घोसितारा‌म तथा अन्यान्य बौद्ध-विहार के पाचवीं शताब्दी के बाद नष्ट-भ्रष्ट होने का सभाव्य कारण सम्राट स्कन्दगुप्त के बाद छठी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में वर्बर हूणा का हमारी सीमाओं का अतिक्रमण करना और सघातिक आक्रमण करते थे।[२]

काशपुर या काजपुर (Ka-she-pu-lo)—कौसाम्बी से उत्तर तरफ गगा को पार कर ह्वेनसाग काशपुर (जुलिअन ने का-शि-पु-लो का भारतीय नाम काशपुर इगित किया है) पहुँचा था। इस नगर का घेरा दस ली था। पौरजनों की स्थिति अच्छी थी। नगर के समीप एक प्राचीन बौद्ध-विहार के खण्डहर थे। यही पर विश्रुत बौद्ध-आचार्य धर्मपाल ने बौद्धधर्म के विरोधियो को शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

बौद्धविहार के खण्डहर के पास अशोक का बनवाया एक (खण्डित) स्तूप था, जो तब भी दो सौ फीट ऊँचा था। इस स्थान पर भगवान बुद्ध ने ६ मास धर्म-प्रवचन किया था। पास ही भगवान की सक्रमण भूमि थी और बाल व नाखून वाला एक स्तूप था।[3]

विशोक (पि-शो-क P'I-sho-ka)—यह जनपद काशपुर के उत्तर

---

१. The Travels of Fa-Hien James Legge p 96

२. 'Evidently the Ghositarama was in good Condition in the fifth century A D when Fa-Hien visited Kausambi It was however reduced to ruins when Hiuen-Tsang visited the place in the seventh Century A D This may be accounted for by the fact that the Hunas who poured into India in the latter part of the fifth century A D Carried on a systematic ravage of the country and destruction of buildings, the saiva temples and Buddhist Monastries coming equally under their Vandalic lust—' An Early History of Kausambi, N N Ghosh p 75.

३ Watters Vol. I, pp 372-373

लगभग एक सौ अस्सो ली की दूरी पर था। मुख्य नगरी (सम्भवतया विशोक) की परिधि सोलह ली थी।

जनपद में धान्य की उपज प्रचुर थी और फलो व फूलो की बहुलता थी।

जनपदवासी आचरण में सभ्य, अध्ययन प्रेमी और अध्यव्यवसायी थे।

यहा बीस बौद्ध-विहार थे जहाँ तीन हजार भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिरो की सख्या पचास थी और बौद्ध-इतर जनो की सख्या बहुल थी।

नगर के दक्षिण में एक विशाल बौद्ध-विहार था जिस में एक समय अरहत (भिक्षु) देवशर्मन तथा अरहत गोप रहे थे।

देवशर्मन ने 'विज्ञानकाय शास्त्र' की रचना की थी। आचार्य गोप ने भी बौद्धधर्म पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखा था।

वॉटरस ने इगित किया है कि गोप के ग्रन्थ का चीनी बौद्ध साहित्य की तालिका में उल्लेख नही है। उसकी जीवनी के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नही है। सम्भवतया वह देवशर्मन का समकालीन था जिसका समय भगवान बुद्ध के निर्वाण के चार सौ या सौ वर्ष बाद अनुमान किया जाता है।

इसी बौद्ध-विहार में एकबार आचार्य धर्मपाल का हीनयानी आचार्यों से सात दिन तक शास्त्रार्थ हुआ था जिस में वे पूरी तरह हार गये थे।

यहाँ भगवान बुद्ध ने ६ वर्ष निवास किया था तथा धर्म का प्रवर्तन किया था। विशाल बौद्ध विहार के समीप जहाँ भगवान बुद्ध ने निवास किया था वहाँ पर एक स्तूप बना था। इस स्तूप के पास लगभग सात फीट ऊँचा एक वृक्ष था। कहते है भगवान ने दातून करके लकडी का जो टुकडा वहाँ गिरा दिया था उसी ने जड पकड कर पल्लवित होकर वृक्ष का रूप ले लिया था। चीनी यात्री ने यह भी उल्लेख किया है कि इस वृक्ष को बौद्ध-विरोधियो ने अनेक बार काट कर नष्ट कर देने का प्रयत्न किया था, लेकिन वह उस के समय में भी विद्यमान था।[1]

श्रावस्ती—विशोक जनपद से उत्तर-पूर्व पाँच सौ ली की दूरी (अर्थात सौ मील) तय कर ह्वेनसाग श्रावस्ती-जनपद में पहुँचा था। इस की राजनगरी (श्रावस्ती) चीनी यात्री को खण्डहर के रूप में मिली थी। "राजप्रासाद नगरी"

---

१ Ibid pp 373–374

(Palace Gits) की ध्वस्त नींव का घेरा बीस ली से ऊपर था। राजनगरी यद्यपि ध्वस्तावस्था में थी, तथापि वहाँ कुछ लोग निवास करते थे।

जनपद में फसलें अच्छी होती थीं। वहा के जन व्यवहार में शुचि थे और विद्या तथा सुकार्यों में प्रीति रखते थे।

वहाँ सैकड़ा बौद्ध-विहार थे लेकिन अधिकांश ध्वस अवस्था में थे। भिक्षुओं की संख्या बहुत अल्प थी।

देवमंदिरों की संख्या भी थी और बौद्ध-इतर जन संख्या में बहुल थे।

यह नगरी भगवान बुद्ध के समय में सम्राट प्रसेनजित की राजनगरी थी और इस सम्राट के प्राचीन प्रासाद की नींव प्राचीन प्रासाद नगर' में वर्तमान थे। इस के पूर्व तरफ समीप ही 'प्रवचन-भवन' के अवशेष पर एक स्तूप बना था। प्रवचन-भवन के पास ही एक और स्तूप था। इस स्थान पर पूर्वकाल में बुद्ध की विमाता महा-प्रजापति के लिये प्रसेनजित् ने भिक्षुणी-विहार (nunnery = Ching-she) बनवाया था।

भिक्षुणी-विहार के पूर्व में सुदत्त (अनाथपिण्डक) के भवन के स्थान पर एक स्तूप बना था। इसी के पार्श्व में उस स्थान पर भी एक स्तूप था जहाँ अंगुलिमाल ने बुद्ध की शरण ग्रहण की थी।

नगर (श्रावस्ती) के दक्षिण पाँच-छ ली की दूरी पर जेतवन विहार (अनाथपिण्डक सुदत्त का बनवाया अनाथपिण्डाराम) था। यह विहार प्रसेनजित् के महान मन्त्री सुदत्त ने बुद्ध के लिये बनवाया था। यह संघाराम ध्वस्तावस्था में था।

जेतवन विहार के पूर्वी तोरण पर दो शिला-स्तम्भ थे, जो प्रवेश-द्वार के दोनों ओर स्थित थे। ये सत्तर फीट ऊँचे थे और इन्हें सम्राट अशोक ने स्थापित किया था। वाम ओर के स्तम्भ के शीर्ष पर धर्म-चक्र था, और दक्षिण तरफ के स्तम्भ पर नन्दि (साँड) की प्रतिमा बनी थी। इन का फाह्यान भी इसी तरह उल्लेख किया है और जेतवन विहार को मूलत सात मंजिला बताया है (The Travels of Fa-Hien, pp 55–57)।

जेतवन विहार के स्थान पर केवल एक भवन अकेला बचा था। यह भवन ईंटों से बना था जिस में प्रसेनजित् के लिये बनवायी गयी भगवान बुद्ध की मूर्ति रखी गयी थी। यह मूर्ति पाँच फीट ऊँची थी।

अनाथपिण्डाराम (जेतवन) के उत्तर-पूरब में उस स्थान पर एक स्तूप था जहाँ भगवान बुद्ध ने एक रुग्ण-भिक्षु की, जो दर्द से पीड़ित अकेला रह रहा

था, सेवा की थी। करुणा से प्रेरित होकर भगवान ने उस भिक्षु को नहलाया, उसका विस्तर ठीक किया, उस को साफ वस्त्र पहिनाये और उसे अपने स्पर्श से स्वस्थ कर दिया था और तब उसे धर्म-कर्म के प्रति उद्यमी होने का उपदेश दिया था।

जेतवन (आराम) के उत्तर-पश्चिम में एक और स्तूप था और इसके समीप एक कूप (कूआँ) था, जिससे भगवान बुद्ध के लिये पानी लिया जाता था। इसके समीप ही भगवान के अवशेषों पर अशोक स्तूप था।

जेतवन से सौ कदम पर एक गहन गड्डा था, जिस से होकर देवदत्त जीते-जी नरक गया था, क्योंकि उसने भगवान को विष देकर मारने का यत्न किया था। इस गड्डे का फाह्यान ने उल्लेख नही किया है।

जेतवन विहार से साठ सहत्तर कदम की दूरी पर एक साठ फीट ऊँचा विशाल मन्दिर था (चिंग शे = Ching she) जिस में भगवान बुद्ध की आसन्न मूर्ति थी जिस का मुख पूरब की तरफ था।

इस मन्दिर के पूरब में उतना ही ऊँचा एक एक देव मन्दिर था।

इस मन्दिर के पूरब तीन-चार ली की दूरी पर उस स्थान पर एक स्तूप था जहाँ सारिपुत्र का तीथकों से शास्त्रार्थ हुआ था।

सारिपुत्र-स्तूप के पार्श्व में एक मन्दिर था जिसके सामने एक बुद्ध-स्तूप था। यहा पर भगवान ने विरोधियो को शास्त्रार्थ में पराजित किया था और माता विशाखा को दीक्षा दी थी।

बुद्ध-भक्त विशाखा ने भगवान और उनके शिष्यो के लिये श्रावस्ती में एक 'आराम' का निर्माण करवाया था। विशाखा का बनवाया पुरवाराम' डा० होय (Hoey) के अनुसार सम्भवतया साहेत-माहेत के पास उस स्थान पर था जो 'वागहावारी' का खण्डहर कहलाता है।

विशाखाराम के दक्षिण वह स्थान था जहाँ पर शाक्यो के विरुद्ध सैन्य के साथ यान करते हुये विरुद्धक ने भगवान बुद्ध को देखा था और तब ससैन्य वापस लौट गया था।

उस स्थान के पास भी एक स्तूप था जहाँ पर विरुद्धक ने पाँच सौ शाक्य-स्त्रियों का अगभग किया था। भगवान ने उन घायल स्त्रियों को अपने धर्मदान से पवित्र किया था और ज्ञान-लाभ करने के बाद वे मृत्यु को प्राप्त हो स्वर्ग सिधारी थी।

इस स्तूप के निकट ही एक सूखा तालाब था जिसमें अग्नि से जलकर विरूढ़क (उक्त घटना के सात दिन बाद) विनाश को प्राप्त हुआ था।[1]

प्राचीन ध्वस्त श्रावस्ती नगरी को कनिंघम ने वर्तमान साहेत-माहेत से मिलाया है जो राप्ती नदी के दक्षिणी तट पर है। यहां कनिंघम को भगवान बुद्ध की एक विशाल मूर्ति मिली थी जिस पर 'श्रावस्ती' नाम अंकित था।[2]

कुशीनगर (Kiu-shi-na-Kie-lo=कुशीनारा)—कुशीनगर, ह्वेनसांग को ध्वस्त स्थिति में मिला था। चीनी यात्री ने लिखा है कि राजनगरी कुशीनारा नष्ट-भ्रष्ट स्थिति में था। इस जनपद के अन्य नगर और गांव भी नष्टप्राय और बर्बाद स्थिति में थे। पुरानी राजनगरी की विनष्ट दीवार की ईंटों की नींव का घेरा लगभग दस ली था। जनसंख्या विरल थी।

राजनगरी के उत्तर-पूरब के कोने में स्थित तोरण के पास अशोक का बनाया एक स्तूप था। यहीं पर चुन्द (=Chun-to)[3] का मकान था। मकान के मध्य में एक कुआ था। यह उस समय खोदा गया था जब उसने भगवान बुद्ध को अपने घर आमन्त्रित किया था। युगों के बीत जाने पर भी इस कुंए का पानी निर्मल और मधुर था।

नगर के उत्तर-पश्चिम तीन-चार ली की दूरी पर अजितावती नदी (अजिरावती = हिरण्यवती) के पार पश्चिमी तट के निकट ही शाल-वन था। इस वन में चार शाल के वृक्ष असाधारण ऊंचाई के थे। यहीं इन पेड़ों के तले (छाया में) तथागत ने निर्वाण प्राप्त किया था।

यहां पर ईंटों से निर्मित एक विशाल विहार था, जिस में तथागत की निर्वाण-मूर्ति थी। भगवान (मूर्ति) उत्तर की ओर सिर किये लेटे हैं, मानों निद्रित हों। इस विहार के पार्श्व में अशोक राजा का बनाया एक स्तूप था जो ध्वस्त होते हुए भी दो सौ फीट ऊंचा था। इस के सामने तथागत के निर्वाण-स्थल को इंगित करता एक पाषाण-स्तम्भ था। इस पर लेख भी अंकित था लेकिन उस में तिथि, वर्ष व माह अंकित नहीं थे।

---

१ Ibid pp 376–396.

२ Ancient Geography of India p 409

३ भगवान के कुशीनारा पहुंचने पर चुन्द ने ही उन्हें अपने घर पर भोजन के लिए आमन्त्रित किया था। भगवान का वही अन्तिम भोजन था।

ह्वेनसाग ने तथागत के निर्वाण की तिथि की भी चर्चा की है। उस ने लिखा है कि सामान्य जनश्रुति के अनुसार भगवान परिनिर्वाण के समय अस्सी वष के थे और वैशाख के शुक्लपक्ष में उन का निर्वाण हुआ था। चीनी यात्री ने लिखा है कि बुद्ध के निर्वाण को हुये कोई तेरह सौ, कोई बारह सौ, कोई पन्द्रह सौ, और कोई नौ सौ वष हुआ कहते हैं। ह्वेनसाग ने बुद्ध के निर्वाण की तिथि स्वय अपने समय से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व (याने अशोक से लगभग सौ वर्ष पूव) अनुमानित की है।

इतिहासज्ञ गिगेर (Geiger) ने भगवान बुद्ध के निर्वाण की तिथि ई० पू० ४८३ निर्धारित की है जिसे सामान्यत सभी इतिहासविज्ञो ने अधिक सम्भाव्य तिथि माना है।[१] बील ने बुद्ध का निर्वाण काल ई० पू० ४७७ और ४८२ के बीच माना है।[२]

ह्वेनसाग ने कुशीनारा के सुभद्र-स्तूप का उल्लेख करते हुए उस के सन्दभ में बताया है कि सुभद्र एक सौ बीस वर्ष का एक वृद्ध ब्राह्मण था। भगवान जब निर्वाण की स्थिति में शयन कर रहे थे, तो उस ने भगवान से दीक्षा ली और शीघ्र ही अर्हत पद को भी प्राप्त हो गया। भगवान द्वारा दीक्षित वह अन्तिम व्यक्ति था। सुभद्र भगवान का आसन्न निर्वाण देखना सहन न कर स्वय अग्निधातु—समाधि में प्रविष्ट हो भगवान से पूर्व ही निर्वाण को प्राप्त हो गया था।

तथागत बुद्ध का निर्वाण समीप देख कुशीनारा (पावा) के मल्ल दु ख से विह्वल हो अपने हीरक गदाओ को गिराकर बहुत देर तक भूमि पर लेटे रहे। ह्वेनसाग के अनुसार जहाँ पर मल्लो के हीरक-गदा भूमि पर गिरे थे वहाँ एक स्तूप था। यही पर भगवान के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर सात दिन तक मल्लो ने धार्मिक-कृत्य किये थे।

---

१ Mahavamsa, Geiger p xxviii

Cambridge History of India, Vol I, Edited by E J Rapson p 152

J R A S, 1909 pp 1–34

Political History of Ancient India, H Rayachaudhuri, p 226

२ Records (si-yu-ki), Beal, Vol II p 33 fn 94.

कुशीनारा के उत्तर में नदी को पार कर तीन सौ कदम पर एक स्तूप था। इस स्थान पर तथागत को चिता पर जलाया गया था।

जिस स्थान पर आठ राजाओं ने भगवान बुद्ध के अवशेष परस्पर बांटे थे, वहां अशोक-राज का बनवाया एक स्तूप था।[1]

वाराणसी (P'o-Lo-NI-SSE = 'बनारस)—कुशीनारा के बाद ह्वेनसांग वरणा और असि (गंगा की सहायक नदियां) के बीच बसे वाराणसी (नगर) पहुँचा था।

चीनी यात्री ने वाराणसी का उल्लेख करते हुये कहा है कि यह नगर (जो काशी जनपद की राजनगरी थी) गंगा के बांये तट पर बसा है। इस की लम्बाई अट्ठारह-उन्नीस ली और चौडाई पांच-६ ली है। आबादी घनी थी। नगर के भीतरी द्वार दृढ़ता से जुडे और लोहे की तीखी शलाकाओं से संयुक्त थे (Records Beal II p 44 fn 2)।

यहां के परिवार बहुत धनी थे। पौरजन स्वभावतः कोमल एवं मानवीय गुणों से युक्त, और अध्ययनशील थे। बुद्ध के उपासकों की संख्या बहुत कम थी। बौद्धेतर जन ही बहुल थे।

वाराणसी जनपद में बौद्ध-संघारामों की संख्या लगभग तीस थी, जिन में लगभग तीन हजार भिक्षु रहते थे।

जनपद में देवमन्दिरों की संख्या सौ के लगभग थी जिन में दस हजार साधु रहते थे। वे मुख्यतया माहेश्वर-शिव (Ta-tseu-tsai) के उपासक थे, जिन में कुछ सिर मुड़ाये थे, कुछ सिर पर जटा बांधे थे, और निरवस्त्र रहते थे। वे शरीर पर भस्म रमाए रहते और जीवन-मरण से मुक्ति पाने के लिए कठिन तपस्या में रत रहते थे।

राजनगरी (वाराणसी) में बीस देव मन्दिर थे। इन मन्दिरों की अट्टालें और भवन नक्काशी किये पाषाणों व दारुओं (लकडी) के बने थे।

भगवान देवमाहेश्वर की मूर्ति सौ फीट ऊँची थी जो ताम्र-निर्मित थी। मूर्ति देखने में भव्य और गम्भीर थी, और सजीव प्रतीत होती थी।

राजनगरी के उत्तर-पूरब में वरणा के पश्चिमी तट पर अशोक का बनाया स्तूप था। यह सौ फीट ऊँचा था। इस के सामने एक पाषाण-स्तम्भ था जो

---

१ Records S Beal Vol II pp 31-40

समुज्ज्वल और दर्पण की तरह चमकीला था। इस की ऊपरी सतह बरफ की जैसी चिक्नी और शुभ्र थी।

वरणा नदी के उत्तर-पूरब में लगभग दस ली की दूरी पर मृगादव *(सारनाथ)* का संघाराम था। संघाराम आठ भागों में विभाजित था और चारों तरफ से वह दीवार से घिरा था।

संघाराम में पन्द्रहसौ हीनयानी भिक्षु रहते थे। संघाराम की चाहरदीवारी के भीतर दो सौ फीट ऊँचा एक विहार था। इस विहार के शीर्ष पर सुवर्ण-पत्रित आम्रा (आवला) फल की आकृति बनी थी। विहार के मध्य में भगवान बुद्ध की धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन मुद्रा में निर्मित आदम-कद मूर्ति थी।

विहार के दक्षिण-पश्चिम में अशोक-राज का बनवाया पत्थर का स्तूप था। उस की नींव ढह गयी थी लेकिन सौ फीट से अधिक दीवार तब भी विद्यमान थी। भवन के सामने सत्तर फीट ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ था। पत्थर चमकीला और प्रकाश की तरह दीप्ति विकीर्ण करता था। यहीं पर बोधित्व प्राप्त करने के बाद भगवान तथागत ने धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया था।

संघाराम के भीतर पश्चिम तरफ स्वच्छजल का सरोवर था। यहाँ पर तथागत बहुधा स्नान किया करते थे। इस के पश्चिम में एक बड़ा तड़ाग (तालाव) था, जहाँ तथागत अपना भिक्षा-पात्र धोया करते थे। इस के उत्तर में एक झील थी, जिस में तथागत अपने वस्त्र धोया करते थे।[1]

गरजपुर (वर्तमान् गाजीपुर = Chen-Chu Records Beal II p 61 fn 49)—राजधानी गरजपुर अथवा गाजीपुर का घेरा दस ली था। गाजीपुर-जनपद के निवासी धनी और समृद्ध थे। गाँव और नगर समीप-समीप थे। जनपदवासी शुद्ध और ईमानदार चरित्र के थे। लेकिन भावुक और उग्र भी थे।

यहाँ संघारामों की संख्या लगभग दस थी और देवमन्दिर बीस थे।

राजधानी गाजीपुर के उत्तर-पश्चिम में अशोक-राज का बनवाया एक स्तूप था।

इस जनपद में गंगा नदी के उत्तर तरफ नारायणदेव (Na lo-yen = विष्णु) का मन्दिर था जिस की अट्टालिकायें आदि अद्भुत तरीके से चित्रित और सजी-धजी थीं। देवताओं की पाषाण-मूर्तियाँ अत्यन्त कलापूर्ण थीं।

---

१ Ibid pp 44–49

इस मन्दिर के पूरब लगभग तीन ली की दूरी पर अशोक-राज का बनवाया एक स्तूप था। उसके सामने बीस फीट ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ था जिस के शीर्ष पर सिंह की मूर्ति बनी थी। उस पर लेख भी खुदा था।[1]

वैशाली (Fei-she-Li)—ह्वेनसांग ने वैशाली जनपद का घेरा पाँच हजार ली दिया है। उस ने लिखा है कि यहां की भूमि उर्वर और समृद्ध थी और फल-फूल बहुलता से होते थे। आम (आम्र) और केला (मोचा) की प्रचुरता थी और वे परमप्रिय फल थे।

जनपदवासी शुद्ध चरित्र के और ईमानदार थे। वे धर्म में प्रीति रखने वाले और विद्या-प्रणयी थे। बौद्ध और बौद्ध-इतर जन मिलजुल कर साथ रहते थे।

संघाराम सैकड़ों थे लेकिन प्राय नष्टावस्था में थे।

देवमन्दिर कोड़ियों थे, जिन में विभिन्न सम्प्रदायों के साधु रहा करते थे।

निग्रन्थों (जैनियों) की संख्या बहुल थी। प्राचीन वैशाली राजनगरी ध्वस्त स्थिति में थी। इस की पुरानी नींव का घेरा साठ-सत्तर ली था। राज-प्रासाद का घेरा पाँच-छः ली था।

राजप्रासाद के स्थान से उत्तर-पश्चिम पाँच-छः ली पर एक संघाराम था जिस में थोड़े से भिक्षु रहते थे।

वैशाली के उस स्थान पर जहाँ आम्र या आम्रवाटिका (सुविख्यात नगर-सुन्दरी अम्बपाली) का भवन रहा था, वहाँ पर ह्वेनसांग ने लिखा है, एक स्तूप बना था। इसी स्थान पर भगवान बुद्ध की मौसी व अन्य भिक्षुओं ने निर्वाण प्राप्त किया था।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि उस स्थान पर भी जहाँ से तथागत निर्वाण के लिये कुशीनगर रवाना होते समय रुके थे, एक स्तूप बना था। इस स्तूप के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप था जहां से भगवान बुद्ध ने वैशाली पर विदा होते समय अन्तिम दृष्टिपात किया था। इस स्तूप के दक्षिण में एक विहार और उस के आगे एक स्तूप था। इसी स्थान पर आम्रपाली (अम्बपाली) का आम्रवन था जो उस ने भगवान बुद्ध को दान में अर्पित किया था।

आम्रवन के पास एक स्तूप था। यहीं पर तथागत ने अपने निर्वाण (काल) की घोषणा की थी।

---

१ Ibid pp 61–64

राजनगरी के उत्तर-पश्चिम पचास-साठ ली की दूरी पर एक विशाल स्तूप था। यही पर कुशीनारा के लिए प्रयाण करते समय लिच्छवियो ने भगवान बुद्ध को विदा दी थी।

नगर के दक्षिण-पूरब चौदह-पन्द्रह ली पर भी एक विशाल स्तूप था। इसी स्थान पर भगवान के निर्वाण के एक सौ दस वर्ष बाद बौद्धधर्म के सात सौ साधु-सन्तो की धर्म-सभा हुयी थी (बौद्धधम की द्वितीय सगति—Records Vol II p 74 fn 94)।[1]

वृज्जि (वज्जि)—वृज्जि जनपद का घेरा लगभग चार हजार ली था। भूमि उर्वर और समृद्ध थी और फल-फूल बहुलता से होते थे। बौद्ध जनसख्या बहुत अल्प थी।

सघाराम लगभग दस थे। देवमन्दिरो की सख्या कोडियो थी।

राजनगरी चेन-सु-ना (सत मार्टिन ने इसे मिथिला के राजा जनक की जनकपुरी से मिलाया है—Records Vol II p 78 fn 101) थी। यह नगरी ध्वस स्थिति मे थी। नगर के भीतर प्राचीन प्रासाद-नगरी में अभी भी तीन हजार घर थे। वह गाव या कस्बा जैसा था।[2]

मगध जनपद (Mo-Kie-t'o)—इस जनपद का घेरा पाच हजार ली था। प्राकारो (दीवारो) से घिरे नगरो की आबादी विरल थी। लेकिन कस्बो या गावो की आबादी घनी थी।

यहा की भूमि समृद्ध और उर्वर थी। अनाज प्रचुरता से उत्पन्न होता था।

यहा एक विशेष प्रकार का धान होता था जिस के दाने लम्बे, सुगन्धित और खाने मे परमस्वादिष्ट होता था। इस के चावल के दाने चमकदार होते थे। यह महा् (समृद्ध) लोगो के खाने का चावल कहा जाता था। जुलियन ने सम्भवतया इसी चावल को महाशाली और सुगन्धिका नाम दिया है—(Records Vol II p 82 fn 3)।

जनपदवासी व्यवहार में सहज और ईमानदार थे। लोग विद्यानुरागी थे और बुद्ध के धर्म के परम अनुरक्त थे। सघारामो की सख्या करीब पचास थी जिनमें दस हजार भिक्षु रहते थे।

---

१ Ibid pp 66–75

२ Ibid pp 77–78

देव मन्दिर दस थे जिन में विभिन्न सम्प्रदायों के बहुसंख्यक साधु रहा करते थे।

गंगा नदी के दक्षिण प्राचीन नगर के खण्डहर थे। इस का घेरा सत्तर ली था। यह प्राचीन काल में कुसुमपुर के नाम से प्रसिद्ध था क्योंकि वहाँ के राजा का प्रासाद कुसुमों से पूर्ण रहता था। बाद में इस का नाम पाटलिपुत्र हो गया। ह्वेनसांग ने इस नगर को ध्वंस स्थिति में पाया था। उस ने लिखा है कि पाटलिपुत्र की प्राचीन दीवार की केवल नींव रह गयी थी।

संघाराम, देवमन्दिर और स्तूप सैंकड़ों की संख्या में थे, लेकिन दो-तीन को छोड़कर सभी ध्वस्त अवस्था में थे।

प्राचीन प्रासाद के उत्तर में और गंगा नदी की सीमा पर एक छोटा कस्बा था जिस में करीब एक हजार घर थे।

ह्वेनसांग के उल्लेखानुसार भगवान तथागत मगध से विदा लेकर जब उत्तर ओर कुशीनगर के लिए प्रयाण किए थे, तब उन्होंने दक्षिण तरफ मुड़कर एक शिला पर खड़े हो मगध पर अन्तिम बार दृष्टिपात किया था। उस समय भदन्त आनंद से भगवान ने कहा था कि 'मैं अपने पदचिह्न इस शिलाखण्ड पर छोड़ जा रहा हूँ। मेरे निर्वाण के सौ वर्ष बाद राजा वु-याउ-वांग (Wu-yau-vang) यहाँ पर अपनी राजधानी अर्थात् नया पाटलिपुत्र नगर बसायेगा और धर्म के त्रिरत्नों की रक्षा करेगा।'

राजा के चीनी नाम वु-याउ-वांग से ओल्डनवर्ग ने देवानांप्रिय अशोक से अभिप्राय लिया है और बील ने कालाशोक से, जिसे वे अजातशत्रु का पोता कहते हैं (Records Vol II p 90 fn 26)। किन्तु ब्राह्मण (पुराणों) बौद्ध और जैन स्रोतों से हमें मालूम है कि पाटलिपुत्र की स्थापना अजातशत्रु के पुत्र उदयी ने की थी और कालाशोक अथवा काकवर्ण, पुराणों के अनुसार बिम्बिसार (हर्यङ्कवंश) के वंशजों को अपदस्थ कर मगध पर अधिकार स्थापित करने वाले शिशुनाग का पुत्र था, और धर्माशोक (अशोक-राज) तो और भी बाद (ई० पू० तीसरी शताब्दी) में मगध के सिंहासन पर आया था (मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ९३–९४)।

भगवान तथागत के पद-चिह्न वाला पत्थर, ह्वेनसांग के विवरणानुसार प्राचीन राजप्रासाद के समीप ही था और उसके पास एक स्तूप था। समीप ही एक विहार था और निकट ही तीस फीट ऊँचा एक पाषाण-स्तम्भ था, जिस पर एक लेख भी खुदा था जो भग्नावस्था में था। स्तम्भ लेख में मुख्यतया अशोक-

राज द्वारा तीन बार जम्बूद्वीप, बुद्ध, धम और सघ को दान में अर्पित करने का उल्लेख था।

प्राचीन नगर के दक्षिण-पूरब मे अशोक-राज का बनवाया कुक्कुटराम सघाराम था, जो ध्वस हो चुका था लेकिन उस की नीव की दीवार तब भी शेष थी।[1]

गया—नैरञ्जना नदी (वर्तमान् फल्गु) को पार कर ह्वेनसाग गया नगर पहुँचा था। नगर की आबादी, ह्वेनसाग ने लिखा है विरल थी। वहाँ लगभग ब्राह्मणो के एक हजार परिवार थे। वे एक ऋषि की सतति थे। मगध-राज उन्हें अपना भृत्य नही मानता था और सर्वत्र लोग उन का बहुत सम्मान करते थे।

नगर के उत्तर और लगभग तीस ली की दूरी पर एक निर्मल जल का झरना था। भारतीय उसे 'पवित्र जल' मानते थे और उन का विश्वास था कि उस मे जो नहाता अथवा उस का पानी पीता है उस के सब पाप विमोचित हो जाते है।

नगर के दक्षिण-पश्चिम पाँच-छ ली की दूरी पर गया-पवत था जिस की घाटी और नाले सुरम्य थे। भारतीय उसे आध्यात्मिक शैल कहते थे। प्राचीन काल से यह प्रथा प्रचलित थी कि मगध का राजा जब सिंहासनारूढ होता था तो वह इस पर्वत पर धार्मिक कृत्यो के साथ अपने राज्यग्रहण की घोषणा किया करता था।

पर्वत के ऊपर अशोक-राज का बनवाया एक सौ फीट ऊँचा स्तूप था। इस स्थान पर प्राचीनकाल में तथागत ने धर्म-सूत्रो का प्रवचन किया था।

गया-पर्वत के दक्षिण-पूरब गयाकश्यप-स्तूप के पूरब मे नदी के पार प्राग्बोधि-पवत था। इसी पवत मे एक स्थान पर (प्राग्बोधि-पवत से १४-१५ ली की दूरी पर) पीपल (बोधि-वृक्ष) के तले तथागत ने बोधित्व लाभ किया था।

इस पवत पर जहाँ भगवान बुद्ध के चरण पडे थे, अशोक-राज ने स्तम्भ और स्तूप स्थापित करवाये थे।

बोधि-वृक्ष (जिस के तले सिद्धार्थ बुद्ध हुए थे) ईंटो की एक ऊँची दीवार से घिरा था, जिस का आवर्तन (गोलायी) पाच सौ कदम था। बोधिवृक्ष की

---

१ Ibid pp 82–95

दीवार के भीतर मध्य में वज्रासन (हीरक सिंहासन) था। तथागत ने इसी सिंहासन पर समाधि लगायी थी और बुद्धत्व प्राप्त किया था, इसलिए इसे 'बोधि-मण्ड' (=बोधिमण्डल) भी कहा जाता था।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि गौड के राजा शशांकराज ने इस बोधि-वृक्ष को जड से काट कर जला डाला था। लेकिन मगध के राजा पूर्णवर्मा (जिसे चीनी यात्री अशोक के वंश का अन्तिम राजा कहता है) ने नष्ट-भ्रष्ट किये गए बोधि-वृक्ष की जडों को एक हजार गायों के दूध से सिंचित कर उसे पुनः पल्लवित कर दिया था, और सुरक्षार्थ उसे चौबीस फीट ऊँची पाषाण-दीवार से घेर दिया था।

बोधिवृक्ष के पूरब में एक सौ साठ-सत्तर फीट ऊंचा विहार था जिसे एक ब्राह्मण ने बनवाया था। विहार में भगवान बुद्ध की एक मनोहर कलापूर्ण मूर्ति भी स्थापित की गयी थी। शशांक-राज ने बोधि-वृक्ष काटने के बाद इस मूर्ति को भी नष्ट करने की इच्छा की थी, लेकिन प्रतिमा की अनुरागमयी आकृति को देखकर उस ने अपना निश्चय त्याग दिया था।

बोधि-वृक्ष के पश्चिम समीप ही एक विशाल विहार था जिस में बुद्ध की रत्नालंकारों से युक्त कांस्य प्रतिमा थी। बुद्ध की यह खड़ी प्रतिमा पूरब को मुँह किये स्थित थी।

बोधिवृक्ष के दक्षिण तरफ निकट ही अशोक का बनाया सौ फीट ऊँचा एक स्तूप था। इस स्थान से बोधिसत्व निरंजना में स्नान करने के बाद बोधिवृक्ष की ओर समाधि लगाने गये थे।[1]

कुशाग्रपुर (गिरिव्रज अथवा प्राचीन राजगृह)—कुशाग्रपुर याने 'सुन्दर (सौभाग्यशाली) घास का राजकीय पुर' (राजधानी), मगध का केन्द्रिय-स्थान था। मगध के प्राचीन राजाओं की यह राजनगरी थी। यहां की घास बहुत ही सुन्दर, सुगन्धित और सौभाग्यशालिनी थी, इसीलिए इसे 'सुन्दर घास का नगर' कहा जाता था। नगर पूरब से पश्चिम तरफ विस्तृत था और उत्तर से दक्षिण ओर सकरा था। इस की परिधि लगभग एक सौ पचास ली थी।

भीतरी नगर की दीवार का अवशिष्ट भाग का घेरा तीस ली था।

राजप्रासाद के नगर (palace city) के उत्तर-पूरब चौदह-पन्द्रह ली की

---

१. Ibid pp 113-123

दूरी पर गृघकूट पर्वत है। भगवान बुद्ध ने यहाँ पर काफी दिन निवास किया था, और सम्राट बिम्बिसार भगवान से धर्म-वार्ता सुनने के लिए यहाँ पधारा था।[१]

राजगृह—फाह्यान ने इसे 'नया नगर' कहा है जो पर्वत के उत्तर ओर स्थित था (Records Vol II p 165 fn 70)। ह्वेनसांग ने लिखा है कि इस की बाहरी दीवार नष्ट हो चुकी थी और उस के कोई अवशेष बाकी न थे। नगर की भीतरी दीवार ध्वस स्थिति में थी तब भी उस का थोड़ा हिस्सा जमीन के ऊपर था और उसका घेरा करीब बीस ली था।

पहले बिम्बिसार-राजा कुशाग्रपुर में रहता था। वहां पौरजनो के घर पास-पास थे और बहुधा आग लग जाती थी। अत सम्राट ने 'शासन' प्रेषित किया कि जिस के घर में आग लगेगी उस को नगर से बाहर 'शीतवन' (जहां श्मशान भूमि थी) में रहना पड़ेगा। सयोग से 'शासन' प्रेषित होने के बाद पहले सम्राट के प्रासाद में ही आग लगी। फलत अपने 'शासन' की मर्यादा को स्थित रखने के लिये महाराज बिम्बिसार राजगृह त्याग कर शीतवन में जा बसे। इसके बाद राज्य के मन्त्री और पौरजन भी वहीं जा कर बस गये। लेकिन चूँकि प्रथम उस स्थान पर बिम्बिसार ने अपना गृह बनवाया था इसीलिए वह स्थान अथवा नगर 'राजगृह' कहलाया।

ह्वेनसांग ने जनश्रुति की चर्चा करते हुये उल्लेख किया है कि यह भी कहा जाता है कि राजगृह को प्रथम अजातशत्रु-राजा (बिम्बिसार-राज का पुत्र) ने बसाया था और उसके उत्तराधिकारी ने भी राजगृह को अपनी राजधानी बनाये रखा, लेकिन अशोक जब राजा हुआ तो उस ने राजगृह ब्राह्मणो को दे दिया और राजधानी पाटलिपुत्र ले गया (पाटलिपुत्र अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदयी के समय में ही मगध की राजधानी बन गयी थी, इस का पूर्व उल्लेख किया जा चुका है।)

ह्वेनसांग ने लिखा है कि राजगृह में केवल ब्राह्मणो के एक हजार परिवार निवास करते थे।

राजगृह के दक्षिणी-द्वार से निकल कर उत्तर की तरफ लगभग तीस ली की दूरी पर नालन्दा—सघाराम था (नालन्दा को राजगृह से उत्तर सात मील की दूरी पर स्थित बड़ा-गाँव से मिलाया गया है।)[२]

---

१ Ibid pp 149–153

२ Ibid pp 165–167 and fn 76

हिरण्यपर्वत जनपद—जनरल कनिंघम ने हिरण्यपर्वत को मुंगेर के पर्वत से मिलाया है। अत ह्वेनसाग ने हिरण्य-पर्वत नाम से शायद मुंगेर जनपद का ही उल्लेख किया है।

इस जनपद की राजनगरी (मुंगेर) लगभग बीस ली थी और उत्तर की ओर गगा नदी थी। यहाँ फल-फूल प्रचुरता से उत्पन्न होते थे। जनपदवासी सरल और शुचि थे। यहाँ दस सघाराम थे जिन में चार हजार भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिरो की सख्या लगभग बारह थी जिन में विभिन्न सम्प्रदायो के साधु रहते थे।

राजनगरी के पार्श्व में गगा के समीप हिरण्यपर्वत था जिस से निसृत होने वाले धुये और भाप से सूर्य और चन्द्रमा की रोशनी मन्द पड जाती थी।

राजधानी के दक्षिण में एक स्तूप था। यहाँ पर तथागत ने तीन महीने धर्म-प्रवचन किया था।[1]

चम्पा—चम्पा या चम्पापुरी इसी नाम के जनपद की राजधानी थी। ह्वेनसाग ने चम्पा जनपद की परिधि चार हजार ली दी है। राजनगरी चम्पा के उत्तर में गगा नदी थी, और उस की परिधि लगभग चालीस ली थी।

यहाँ के निवासी सरल और शुचि थे। सघाराम दसियो थे लेकिन सब नष्टावस्था में थे। भिक्षुओं की सख्या यहाँ लगभग दो सौ थी।

देवमन्दिरो की सख्या लगभग बीस थी जिन में हर सम्प्रदाय के साधु आते-जाते रहते थे।

राजधानी की ईंटों की दीवार कई दसियो फीट ऊँची थी। नगर के पूरब में एक सौ चालीस-पचास ली की दूरी पर गगा के दाहिनी तरफ चारो ओर से पानी घिरा एक चट्टान था जिसके शीर्ष पर एक देव मन्दिर था।[2] जनरल कनिंघम ने इसे पत्थर-घाट के सामने के चट्टानी द्वीप से मिलाया है— Ancient Geography of India, p 477)।

कजुघिर (या खजुगिर Kajughira)—चम्पा से पूरब ओर चार सौ ली की दूरी पर कजुघिर-जनपद था जिसकी परिधि दो हजार ली थी।

---

१ Ibid pp 186–187

२ Ibid pp 191–192

इस जनपद का मुख्य नगर अथवा राजनगरी कजुधिर ही थी। यह नगर सम्भवतया उसी जगह था जहाँ अब कजेरी गाँव है जो चम्पा से चार सौ (९२ मील) की दूरी पर है।

यहाँ के लोग ह्वेनसाग ने कहा है प्रज्ञावानो का बहुत आदर-मान करते थे और विद्या व कलाओ के प्रणयी थे। सघारामों की सख्या ६-७ थी जिनमें लगभग तीन सौ भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिरो की सख्या लगभग दस थी, जिन मे सभी सम्प्रदाय के साधु निवास करते थे।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि यहाँ के नगर वीरान स्थिति में थे और लोग ज्यादातर गाँवों-कस्बो में रहते थे। अत जब शीलादित्य-राज (सम्राट हर्ष) पूर्वी भारत के भ्रमण पर था तो उन्होने अपने निवास के लिये कजुधिर में एक 'प्रासाद' बनवाया था। प्रासाद घास-फूस से अस्थायी रूप में बनाया गया था और वहाँ से जाने पर वह जला दिया गया था।[१]

पुण्ड्रवर्धन—प्रोफेसर विल्सन ने प्राचीन पुण्ड्रवर्धन जनपद में राजशाही, दिनाजपुर, रङ्गपुर, नदिया, वीरभूमि, बर्दवान, मिदनापुर, जङ्गलमहाल, रामगढ, पचित पलमन और चुनार का कुछ भाग शामिल बतलाया है। पुण्ड्र (=पौडा अथवा गन्ना) यहा बहुलता से उत्पन्न होता था इसीलिये यह जनपद पुण्ड्रवर्धन नाम से विश्रुत हुआ।[२]

ह्वेनसाग ने पुण्ड्रवर्धन का घेरा चार हजार ली दिया है। इस की राजधानी की परिधि लगभग तीस ली थी। यहाँ की आबादी बहुत घनी थी। पनस-फल (Jack fruit) बहुलता से होता था और बहुत पसन्द किया जाता था। पनस का फल कोहडे के जैसा बडे आकार का होता था। पकने पर उस का रग पीला हो जाता था।

जनपदवासी विद्या का आदर करने वाले थे। सघारामो की सख्या बीस थी जिन में लगभग तीन हजार भिक्षु रहते थे।

---

१ Ibid pp 193 fn 17

२ Vishnu Purana, Vol II pp 134–170
Indian Antiquary, Vol III 59 p, 449
Quarterly oriental Magzine, Vol II p 188

देव मन्दिरों की संख्या कई सौ थी जिन में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग एकत्र होते थे। नग्न निग्रन्थों की संख्या सब में अधिक थी।

राजनगरी (पुण्ड्रवर्धन) के पश्चिम में लगभग बीस ली की दूरी पर अग्नि की तरह उज्ज्वल वाशिवासंघाराम (po-chi-p'o) था। इस में लगभग सात सौ भिक्षु रहते थे। पूर्वी भारत के अनेक प्रसिद्ध आचार्य यहां निवास करते थे। इस संघाराम के समीप ही अशोक का बनवाया एक स्तूप था। तथागत ने यहाँ पर तीन महीने धर्म-प्रवचन किया था।[1]

कामरूप—कामरूप-जनपद की परिधि ह्वेनसाग ने लगभग दस हजार ली बताई है। इसकी राजधानी का घेरा तीस ली था। यहाँ पनस और नारिकेल (नारियल) फल के वृक्ष उगाये जाते थे। यहा के लोग सरल और शुचि थे। वे देवताओं के उपासक थे। बौद्धधर्म का मानने वाला कोई नहीं था, इसलिए तथागत के समय से तब तक वहा कोई संघाराम नहीं बनाया गया था। देवमन्दिरों की संख्या लगभग सौ थी।

वहा के राजवंश का उल्लेख करते हुए ह्वेनसाग ने लिखा है कि वर्तमान् राजा नारायणदेव के कुल का है। वर्ण से वह ब्राह्मण है। उस का नाम भास्कर-वर्मन और विरुद कुमार है। यह राजा विद्याप्रेमी है जिस कारण प्रजाजन भी विद्या के अनुरागी हैं।

चीनी यात्री ने यह भी उल्लेख किया है कि यद्यपि भास्करवर्मन बौद्ध नहीं था, लेकिन श्रमणाचार्यों का बहुत मान करता था। ह्वेनसाग को भास्कर ने अपने दूतों द्वारा नालन्दा से कामरूप आने के लिये तीन बार निमन्त्रण भेजा था, लेकिन वह गया नहीं। अन्त में नालन्दा के आचार्य शीलभद्र के कहने पर ह्वेनसाग कामरूप गया था। ह्वेनसाग से भेंट होने पर भास्करवर्मन ने कहा था "भारत के राज्यों में कई ऐसे लोग हैं जो चिन राजा (Tsin king) की विजय के गीत गाया करते हैं। मैंने बहुत पहले इस सम्बन्ध में सुना था। और क्या यह सच है कि वहीं आप का जन्म स्थान है।' ह्वेनसाग ने हाँ में उत्तर दिया था, और कहा था कि "ये गीत मेरे सम्राट के गुणों की स्तुति में है।"

सम्राट हर्ष इस अवसर पर कजुघिर में थे। जब शीलादित्य राज का निमन्त्रण पाकर भास्करवर्मन ह्वेनसाग को अपने साथ लेकर कजुघिर पहुँचा था।[2]

---

१ Ibid pp 194—195
२. Ibid pp 195—198

ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक)—यह समुद्रतटीय जनपद था, जिसका घेरा ह्वेनसाग ने चौदह-पन्द्रह सौ ली बताया है। यहाँ फल फल बहुतायत मे होते थे। यहाँ के निवासी व्यवहार मे तेज और जल्दबाज थे। लेकिन वे परिश्रमी और साहसी थे।

राजनगरी (ताम्रलिप्ति) की परिधि दस ली थी। सघारामो की सख्या लगभग दस थी जिन में करीब एक हजार भिक्षु रहते थे।

देवमन्दिरो की सख्या पचास थी जिन मे विभिन्न सम्प्रदाय के साधु रहते थे।

यहाँ पर बहुमूल्य वस्तुएँ और रत्न बहुलता मे पहुँचते थे, इसलिए यहाँ के लोग सामान्यत धनी थे। नगर के पास ही अशोक का बनवाया एक स्तूप था।[1]

कर्णसुवर्ण—इस राज्य का घेरा लगभग चौदह-पन्द्रह ली था।

राजनगरी (कर्णसुवर्ण) की परिधि बीस ली थी। आबादी घनी थी। पौरजन बहुत समृद्ध थे।

लोग ज्ञान-प्रिय थे। विद्या-अर्जन मे वे निमग्न रहते थे। सघाराम लगभग दस थे जिन में करीब दो हजार भिक्षु रहते थे।

देव मन्दिर पचास थे। बौद्ध इतर जन बहुल थे।

नगर के पास रक्तविति (लाल मिट्टी) सघाराम था।

उस के पास ही अशोक का बनवाया एक स्तूप था। यहाँ पर तथागत ने सातदिन धर्म-व्याख्या की थी।[2]

उद्र (उडीसा=उत्कल)—इस प्रदेश की परिधि सातहजार ली थी।

राजधानी का घेरा बीस ली था। सभवतया राजधानी 'जजिपुर' (जाजपुर) थी। यहाँ के लोग विद्या प्रेमी थे और ज्यादातर बुद्ध के अनुयायी थे। वहाँ सैकडो सघाराम थे जहाँ दस हजार भिक्षु रहते थे। स्तूप लगभग दस थे जिन्हें अशोक ने बनवाया था। इन स्थानों पर भगवान बुद्ध ने धर्म प्रचार किया था।

देवमन्दिरो की सख्या पचास थी।

---

१ Ibid pp 200–201

२ Ibid pp 201–204

उड्र जनपद के दक्षिण-पूरब सीमान्त पर चरित्र नामक नगर था। यहाँ से व्यापारी दूर देशों के लिए रवाना होते थे। विदेशी लोग यहाँ आते-जाते पड़ाव डाल्ते थे। नगर की दीवार ऊँची और सुदृढ थी। यहा पर सब प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ और रत्नादि उपलब्ध थे।[1]

कोनयोद (कोंगध=(kong-u 'TO)—कोनयोद या कोंगध जनपद का घेरा ह्वेनत्साग ने एक हजार ली दिया है। कनिंघम ने कोंगध को गजाम से मिलाया है। ह्वेनत्साग जब यहा पहुँचा था, तो उस ने सुना था कि सम्राट हर्ष हाल ही कोंगद (=गजाम) की विजय कर लौटे हैं। कनिंघम के विचार में गजाम की विजय के बाद उड़ीसा में मिला दिया गया था (J R A S Vol vi p 250 Records Vol II p 206 fn 57)। यह भी समुद्रतटीय प्रदेश था। इस के पर्वतों की शृंखला ऊँची और ढाल थी।

राजनगरी की परिधि बीस ली थी। फरगुसन (Fergusson) का अनुमान है कि कोंगद की राजनगरी कटक के पास थी। यहा निवासी बुद्ध के अनुयायी नहीं थे। देवमन्दिरों की सख्या सैकड़ों थी जिन में प्राय दसहजार विभिन्न सम्प्रदायों के साधु रहते थे।

यह समुद्रतटीय प्रदेश बहुमूल्य और अप्राप्य वस्तुओं से परिपूर्ण था। व्यापार-विनिमय में वे कौड़ी की सीपियों और मुक्ताओं (मोतियों) का प्रयोग करते थे। यहा के आकाशनील रग के हाथी बहुत विशाल थे जिन से दूर की यात्रा की जाती थी।[2]

कलिंग—कलिंग जनपद का घेरा लगभग पाच हजार ली था। इस की राजधानी की परिधि करीब बीस ली थी।

बील के अनुसार राजधानी का नाम सम्भवतया राजमहेन्द्रि था जहाँ चालुक्यों ने अपनी राजधानी स्थापित की थी। फरगुसन का अनुमान है कि कलिंग की राजनगरी शायद विजयनगर के समीप थी (Records Beal Vol II p 207 fn 60)।

कलिंग में फलों और फूलों की बहुलता थी। यहा के विशाल हाथी सुप्रसिद्ध

१ Ibid pp 204–205

२. Ibid pp. 206–207. fn 59–60

थे। कलिंग की राजनगरी के दक्षिण तरफ निकट ही सौ फीट ऊँचा अशोक का बनवाया एक स्तूप था।[१]

कोसल (दक्षिण कोसल)—इस जनपद का घेरा पांच हजार ली था। इस की राजनगरी का घेरा लगभग चालीस ली था।

यहाँ के गाँव और नगर पास पास थे। आबादी बहुत घनी थी। यहां बौद्ध और बौद्ध-इतर दोनों प्रकार के लोग थे। वे प्रज्ञावान और अध्ययनशील थे।

यहाँ का राजा क्षत्रिय था और बौद्धधर्म का अनुरक्त था। यहां लगभग एक सौ संघाराम थे जिन में दसहजार के आसपास भिक्षु रहते थे। देव-मन्दिरों की संख्या लगभग बीस थी।

राजधानी के दक्षिण में एक प्राचीन संघाराम था जिस के पार्श्व में अशोक का बनवाया एक स्तूप था। यहाँ पर प्राचीनकाल में तथागत ने विधर्मियों को न्यस्त किया था।

आगे चलकर नागार्जुन बोधिसत्व भी इस संघाराम में निवास किये। उस समय सद्वाह (= सद्भाव) वहाँ का राजा था जो नागार्जुन का परमभक्त था। नागार्जुन प्रज्ञावान आचार्य होने के अलावा एक महान् चिकित्सक भी थे। दक्षिण-पश्चिम लगभग तीन सौ ली की दूरी पर ब्रह्मगिरि के शीर्ष पर चट्टान को कटवाकर राजा सद्वाह ने नागार्जुन बोधिसत्व के लिए एक और संघाराम निर्मित करवाया था।[२]

आंध्र (An-TA-Lo)—इस जनपद की परिधि तीन हजार ली थी। राजनगरी का घेरा बीस ली था।

राजनगरी का नाम सम्भवतया वेङ्गी था जो एलूर झील के उत्तर-पश्चिम गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच स्थित था। यहाँ बीस संघाराम थे जिन में लगभग तीन हजार भिक्षु रहते थे। देवमंदिरों की संख्या तीस थी।

वेङ्गी के समीप एक अहत अचल ('O-che-lo) का संघाराम था और पास ही बीस ली की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में एक एकाकी पर्वत पर स्तूप था। यहाँ पर प्राचीनकाल में तथागत ने धर्म प्रवचन किया था। संघाराम में भगवान बुद्ध की एक बहुत ही सुन्दर कलापूर्ण प्रतिमा थी और संघाराम के सामने कई

१ Ibid pp 207—208
२ Ibid pp 209 214

सौ फीट ऊँचा एक पाषाण स्तूप था। इसे भी अर्हत अचल (Achala) ने बनवाया था।[1]

धनकटक (धम्मना कटक=धान्यकटक)—इस जनपद का घेरा लगभग छ हजार ली था। राजधानी की परिधि लगभग चालीस ली थी।

सम्भवतया ह्वेनसांग वर्णित राजधानी वर्तमान बेजवाडा (Bejwada) थी। यहा के लोग विद्या के प्रेमी थे। सघाराम अनेक थे लेकिन अधिकाश नष्टावस्था में थे लगभग बीस सघाराम सुस्थिति में थे जिन में एक हजार भिक्षु रहते थे। देवमदिरो की सख्या लगभग बीस थी। नगर के पूर्व और पश्चिम में पवत म लगे पूर्वशीला और अवरशीला नाम के दो विहार थे, जिन्हे यहा के एक पूर्वकालिक राजा ने बनवाया था।[2]

चोल (Chu-li-ye)—चोल जनपद का घेरा लगभग पच्चीस-सौ ली था। राजनगरी की परिधि लगभग दस ली थी। यह उजाड और वीरान था। जनसख्या विरल थी। डाकूओ के दल जनपद में सुरेआम विचरा करते थे। ज्यादातर लोग बौद्ध-इतर थे। सघाराम ध्वस्त स्थिति में थे। देव-मन्दिरो की सख्या दसियो थी। निरग्रन्थ बहुल थे।

नगर के दक्षिण-पूरब में अशोक-राज का बनवाया एक स्तूप था। प्राचीनकाल में तथागत यहा रहे थे और धर्म का प्रचार किया था। नगर के समीप पश्चिम तरफ भी एक प्राचीन सघाराम था।[3]

द्रविड-जनपद (TA-Lo-PI-CH'A)—इस जनपद का घेरा छ हजार ली था। राजधानी काञ्चीपुर (काञ्जीवरम्) थी, जिस का घेरा तीस ली था।

यहाँ की भूमि उर्वर थी। अनाज बहुत उत्पन्न होता था। फल-फूलो की भी बहुलता थी। बहुमूल्य रत्नादि भी यहा पाये जाते थे।

लोग शुचि और सत्यपरायण थे, और विद्या के बहुत अनुरागी थे। सघारामो की सख्या सैकडो थी जिन में दस हजार भिक्षु रहते थे। देवमदिरो की सख्या लगभग अस्सी थी। निरग्रन्थो की सख्या भी बहुत थी।

---

१. Ibid. pp 217-218-fn86 and 87

२ Ibid pp 221-fn 97-98

३ Ibid p 227 fn 118. फरगुसन का अनुमान है कि चोल-जनपद की राजधानी नेल्लोर (Nellore) थी—Ibid p 230 fn 123

तथागत ने यहां अनेक बार आकर धर्म का प्रचार किया था। अतः अशोक ने यहाँ जहां जहाँ बुद्ध गये और रहे उन स्थानों पर अनेक स्तूप बनवाये थे।

विश्रुत धर्मपाल बोधिसत्व काञ्ची के ही निवासी थे। वे यहाँ के राजा के प्रमुख-मन्त्री के ज्येष्ठ पुत्र थे।

राजनगरी काञ्ची के दक्षिण में समीप ही एक विशाल संघाराम था जिस में प्रभावान बौद्धपण्डित एकत्र होने और ठहरा करते थे। यहां पर अशोक-राज का बनवाया लगभग सौ फीट ऊँचा एक स्तूप था। तथागत ने यहाँ निवास किया था और लोगों को बौद्धधर्म में दीक्षित किया था।

कांची से लंका के लिये जहाज आया-जाया करते थे। यहा से लंका पहुँचने में तीन दिन लगते थे।[1]

मलकूट (Mo-Lo-Ktu CH' A)—इस जनपद का घेरा लगभग पांच हजार ली था। राजनगरी की परिधि लगभग चालीस ली थी।

डा० बरनेल (Dr Burnele) ने मलकूट जनपद को कावेरी के मुहाने के प्रदेश में इंगित किया है। उस की राजनगरी सम्भवतया कुम्भ-घोणम (Kumbbaghonam) या आऊर (Avur) के पास थी। बरनेल का अनुमान है कि सातवीं शताब्दी में कुम्भघोणम मलएकूड्डम (Malaikurarram) के नाम से जाना जाता था।

समुएअल बील का अनुमान है कि ह्वेनसाग मलकूट स्वयं नहीं गया था, और उसने वहाँ का विवरण दूसरों से सुनकर लिखा है। वह कञ्जीवरम् से आगे दक्षिण में नहीं बढ़ा था और सम्भवतया कञ्जीवरम् नदी के मुहाने से पोत द्वारा लंका के लिये चल दिया था।

यहाँ के लोग ह्वेनसाग ने लिखा है बौद्ध तथा बौद्ध-इतर धर्मों के मानने वाले थे। विद्या में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी। वे व्यापार में ही अधिक व्यस्त रहते थे।

प्राचीन बौद्धविहारों के वहाँ अनेक ध्वंसावशेष थे और भिक्षुओं की संख्या बहुत कम थी।

---

१ Ibid, p 229-230 fn 118

देवमन्दिरों की संख्या कई सौ थी। निग्रन्थ साधुओं की संख्या बहुत थी।

नगर के पूरब बहुत समीप ही एक प्राचीन स्तूप के खण्डहर थे जिस की केवल नींव की दीवार शेष रह गयी थी। इसे अशोक-राज के कनिष्ठ भाई महेन्द्र ने बनवाया था। इस के पूरब में एक और स्तूप था जिसे अशोक ने बनवाया था। उस का अधिकांश भाग भूमि में धसा गया था, और केवल शीर्ष का हिस्सा बाकी रह गया था। यहीं पर भगवान तथागत ने प्राचीनकाल में धर्म-प्रवर्त्तन किया था।

मलकूट के दक्षिण में समुद्रतट से लगा मलय-पर्वत श्रृंखला (Mo-la-ye) थी। इस पर्वत की चोटियां ढलुए, और घाटियां गहन थीं। इस पर्वत पर धवल चंदन और चन्दनेव (चंदन के जैसे वृक्ष) के पेड उगते थे। इसी पर्वत पर कर्पूर (कपूर) के वृक्ष भी होते थे।

मलय पर्वत के पूरब में पोटलक पर्वत था। इस पर्वत के उत्तर-पूरब में समुद्र के तट पर एक नगर था जहां से यात्री पोतों द्वारा सिंहल (लंका) की यात्रा पर रवाना होते थे।

इस नगर का ह्वेनसांग ने नाम नहीं दिया है। डा० बर्नेल ने इस नगर को कावेरीपट्टम अनुमानित किया है (Indian Antiquary, Vol VII p 40)। जुलियन (Julien) ने उसे चरित्रपुर समझा है और कनिंघम के विवरण के आधार पर समुद्रगुप्त बील का अनुमान है कि नौकाधार नगर का नाम नागपट्टम (नागपत्तन) था। यहां से नावों द्वारा लंका की यात्रा में तीन दिन लगते थे।[1]

कोंकणनापुर—यह जनपद द्रविड प्रदेश के उत्तर और लगभग दो हज़ार ली की दूरी पर था।[2]

---

१ Ibid pp 230-234 fn 123 and fn 131 J P A S, Vol XIII p 552

२ कोंकणनापुर का शुद्ध नाम जुलियन के अनुसार कोंकणापुर है। यह नगर बील के विचार में सम्भवतया गोलकुण्डा के पास स्थित था (Records Vol II, p 253 fn 40)।

कनिंघम ने कोंकणनापुर को तुङ्गभद्रा नदी के उत्तरी तट पर स्थित अनगुण्डी से मिलाया है (Ancient Gography of India, p 552)।

राजधानी (कोणक्नापुर) का घेरा लगभग तीन हजार ली था। जनपद की भूमि समृद्ध और उर्वर थी। फसलें बहुत होती थी।

जनपदवासी विद्या के प्रेमी थे और गुणज्ञो व प्रज्ञावानो का आदर करने वाले थे।

सघारामो की सख्या लगभग सौ थी जिन में दस हजार भिक्षु रहते थे। देवो (देवताओ) की बहुत मान्यता थी, और देवमन्दिरो की सख्या कई सौ थी।

नगर के पूरब तरफ समीप ही एक स्तूप था। स्तूप की नीव जमीन में धँस गयी थी, फिर भी जमीन के ऊपर का भाग तीस फीट ऊँचा था। प्राचीन गाथाओ के अनुसार उस में बुद्ध के अवशेष थे। इस स्थान पर अपने जीवनकाल में तथागत ने धर्म प्रवत्तन किया था। नगर के दक्षिण-पश्चिम में अशोक का बनवाया लगभग एक सौ फीट ऊँचा स्तूप था।

महाराष्ट्र (Mo-Ho-La-CH'A)—कोणक्नापुर जनपद के उत्तर-पश्चिम चलकर लगभग पच्चीस सौ ली की यात्रा करने के बाद चीनी यात्री महाराष्ट्र-जनपद पहुँचा था। उस ने लिखा है इस जनपद की परिधि लगभग पाच हजार ली थी।

इस की राजधानी[१] एक बडी नदी के पश्चिमी तट पर बसी थी। इस की परिधि लगभग तीस ली थी।

जनपद की भूमि समृद्ध और उर्वर थी। खेती नियमित रूप से होती थी और उपज बहुल थी। यहाँ के निवासी कद में ऊँचे, गभीर और प्रतिशोधी थे। सामान्यत लोग शुचि और सरल चरित्र के थे। अपने उपकार कर्त्ताओ के प्रति वे कृतज्ञ थे, और शत्रुओ के लिए दुरुह थे। यदि उन्हें अपमानित किया जाता तो वे प्राणो का मोह छोडकर प्रतिशोध लेते थे। बदला लेने के अवसर पर वे शत्रु को चेता देते थे, और तब दोनो भाला लेकर एक-दूसरे पर प्रहार करते। भागने वाले का पीछा किया जाता था, लेकिन आत्मसमर्पण कर देने वाले को मारा नही जाता था।

---

१ सेण्ट मार्टिन ने राजधानी का नाम देवगिरी (दौलताबाद) अनुमानित किया है। लेकिन देवगिरी नदी के तट पर नही है। श्री फरगुसन के अनुमान मे पैठान राजधानी थी। बील का अनुमान है कि राजधानी शायद तासी या घिरना नदी के पास स्थित थी (Beal II p 255 fn 43)।

श्री कनिंघम के विचार मे राजनगरी कल्याण या कल्याणी थी, जिस के पश्चिम में काली नदी बहती है। यह अनुमान अधिक सम्भाव्य लगता है।

यदि कोई सेनापति युद्ध में पराजित होता, तो उसे दण्ड नहीं दिया जाता था, लेकिन उसे स्त्रियों का परिधान दिया जाता जिस कारण वह स्वयं अपने प्राणों का अन्त कर देता था। सुभटों की संख्या कई सौ थी। संघर्ष के अवसरों पर वे मद्य पीते और तब उन में से प्रत्येक प्राण धारण कर दस हजार के साथ जूझने को उद्यत हो जाता था। यदि सुभटों में से कोई किसी व्यक्ति को संघर्ष में मार डालता तो राज्य से उन्हें दण्डित नहीं किया जाता था। जब वे बाहर निकलते तो उन के आगे डंका बजता चलता था। उन के पास सैकड़ों मदमत्त हाथी थे। युद्ध के अवसर पर वे स्वयं मद्य पीते और तब संघबद्ध होकर शत्रु पर ऐसा भीषण आक्रमण करते कि शत्रु उन के सामने टिक नहीं सकते थे।

इन सुभटों और हाथियों के भरोसे हो वहां (महाराष्ट्र) का राजा अपने पड़ोसियों को हेय समझता था। राजा क्षत्रिय-वंश का था और उस का नाम पुलकेशी था। उस की योजनायें और कार्यक्रम विस्तृत थे और उस के सुकर्मों का प्रभाव दूर-दूर तक फैला था। 'वर्तमान समय में शीलादित्य-राज (सम्राट) ने पूरब से पश्चिम में दूर-दूर तक अभियान कर विजयें की हैं, लेकिन इस जनपद के लोग उस के सामने नहीं झुके। उस (श्री हर्ष) ने पाचों-भारत (five Indias) से सेना एकत्र की, समस्त प्रदेशों से सुयोग्य सेनापतियों को बुला भेजा, और अपनी वाहिनी को लेकर स्वयं इन लोगों (महाराष्ट्रियों) को दबाने गया, लेकिन वह उन पर विजय नहीं पा सका।'

यहां के लोग विद्या प्रेमी थे। संघारामों की संख्या लगभग सौ थी जिन में लगभग पांच हजार भिक्षु रहते थे। देव-मन्दिरों की संख्या लगभग सौ थी।

राजधानी के बाहर-भीतर पांच स्तूप थे, जिन्हें अशोक ने बनवाया था।

जनपद के पूर्वी सीमान्त पर एक विशाल पर्वत था, जिस के शिखिर उत्तुंग थे, और बहुत सी चट्टानें थीं। यहां गहरी घाटी में अर्हत आचार का बनवाया एक संघाराम था। इस के विशाल भवन और पार्श्व के कोने चट्टानों के सामने फैले हुये थे। संघाराम के ऊपर एक के बाद दूसरी मंजिल थी जिन के पृष्ठ में उत्तुंग शिखर थे और सामने की तरफ घाटी थी। संघाराम के भीतर लगभग सौ फीट ऊँचा एक विहार था, जिस के मध्य में भगवान बुद्ध की करीब सत्तर फीट ऊँची पाषाण मूर्ति थी जिस के ऊपर सातमंजिला पाषाण छत्र था।

विहार के चारों ओर की पाषाण भित्तियों पर तथागत के बुद्ध होने से पूर्व के जीवन से सम्बन्धित दृश्य चित्रांकित थे। दृश्यावली बड़ी निपुणता और

कुशलता से तराशी गयी थी। सघाराम के तोरण के बाहर उत्तर और दक्षिण तरफ पाषाण के हाथी थे।[१]

भारुकच्छ (भृगुकच्छ=भड़ौंच)—इस जनपद का घेरा लगभग पच्चीस सौ ली था। राजनगरी (भारुकच्छ) की परिधि बीस ली थी।

यहाँ के लोग समुद्र के पानी से नमक बनाते थे। समुद्र (उत्पादनो) से ही उन की मुख्य आय थी।

यहा के लोग व्यवहार मे अन्यमनस्क, और दुष्ट प्रकृति के थे। विद्याध्ययन में उन की रुचि न थी। वहाँ दस सघाराम थे, जिन में लगभग तीन सौ भिक्षु रहते थे। देवमन्दिरो की सख्या करीब दस थी।

मालवा (Mo La-P'O)—उत्तर पश्चिम दो हजार ली की यात्रा कर चीनी यात्री मालवा पहुँचा था।

इस जनपद का घेरा छ हजार ली था। राजनगरी की परिधि करीब तीस ली थी, जिस के दक्षिण और पूरब में माही नदी थी। कनिंघम और सेण्ट मार्टिन के विचार मे इस राजनगरी से अभिप्राय धारनगर (धारानगरी) से है।

मगध की तरह मालवा भी विद्या-केन्द्रो के लिये सुविख्यात था। यहाँ के लोग गुणज्ञ और विनयी थे। वे प्रज्ञावान् और अध्ययनशील थ। यहाँ बौद्ध और बौद्ध-इतर जन मिलजुल कर रहते थे। सघारामो की सख्या करीब सौ थी जिस मे लगभग दो हजार भिक्षु रहते थे। विभिन्न देव-मदिरा की सख्या सौ थी। पाशुपता (शिव के उपासक) की सख्या बहुल थी।

ह्वेनसाग ने लिखा है कि पुराने लेखो के अनुसार उस के समय मे पूर्व मालवा में शीलादित्य नाम का एक प्रज्ञावान राजा हुआ जो बुद्ध का परमभक्त था। जीवनपर्यंत उसने न कभी क्रोध किया और न कभी किसी जीव को आघात पहुँचाया। उस के पचास वर्षों के शासन-काल में वन्य-पशु आपस मे परिचित हो

---

१ Records Beal II, pp 255–259

पर्वत स्थित सघाराम और विहार से तात्पर्य सम्भवतया प्रसिद्ध अजता गुफा मदिरो से है। हाथी सम्भवतया अजता की पच्चीसवी गुफा के सामने थे जो अब कठिनायी से दीख पडते हैं (Cave Temples, Fergusson & Burgess pp 280–347 & Archaeological survey West India Reports, Vol IV pp 43–59)।

करते थे और लोग किसी पशु की हिंसा न करते थे। उसने प्रासाद के पार्श्व में उस ने एक विहार बनवाया था जो सुन्दर और कलापूर्ण था।

प्रतिवर्ष शीलादित्य राजा मोक्ष महापरिषद आहूत करता था। इस अवसर पर वह रत्नाभरण आदि के रूप में प्रभूत दान देता था। यह प्रथा आज भी वहां प्रचलित है।

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में दो सौ ली की दूरी पर ब्राह्मणों का नगर था। प्राचीन काल में यहां का एक ब्राह्मण बहुत ही प्रज्ञावान् और शास्त्रज्ञ हुआ। वह ज्योतिषशास्त्र में भी पारंगत था। उस शुद्ध चरित्र वाले ब्राह्मण की ख्याति सर्वत्र फैल गयी थी। लेकिन वह महादम्भी था और अपने को महेश्वर, वासुदेव, और बुद्ध आदि सबसे ऊपर मानता था। राजा एवं जनता भी उसका सम्मान करते थे। अन्त में पश्चिमी भारत के भदन्त भद्ररुचि ने उसे शास्त्रार्थ में हरा दिया। इस पर वहां के राजा ने उसके दम्भ और असत्य प्रचार के लिये उसे कड़ा दण्ड दिया था।[1]

अटली ('O-CH' A-LI)—इस जनपद का घेरा छः हजार ली था। राजधानी का घेरा लगभग बीस ली था।

अटली राजनगरी को जनरल कनिंघम ने—मुल्तान के पास के अतारी कस्बे से मिलाया है (Ancient Geography of India, p 22s)।

अटली जनपद की आबादी घनी थी। यहां के रत्न-मणि आदि बहुत मूल्यवान थे। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय व्यापार था। यहां कुछ ऐसे वृक्ष होते थे जिनसे सुगन्धि उत्पन्न की जाती थी।

यहां के लोग बौद्ध-इतर थे। देव-मन्दिरों की संख्या हजारों में थी।[2]

कच्छ (K'IE-CH A)—इस जनपद का घेरा तीन हजार ली था। राजनगरी की परिधि लगभग बीस ली थी। आबादी घनी थी। गृह समृद्धिशाली थे। यह प्रदेश मालवा का अंग था, इसलिए इस का पृथक राजा नहीं था।

संघारामों की संख्या लगभग दस थी, जिन में करीब एक हजार भिक्षु रहते थे। देव-मन्दिरों की संख्या दसियों थी।[3]

---

१ Records, Beal II. pp 26 -264.

२ Ibid, p 265

३ Ibid, p 266.

वल्लभी—इस जनपद का घेरा छः हजार ली था। राजनगरी (वल्लभी) की परिधि लगभग तीस ली थी। आबादी बहुत थी। गृह समृद्धिशाली थे। कुछ सौ परिवार करोडपति थे। दूरस्थ देशो की बहुमूल्य वस्तुएँ यहाँ आकर एकत्र होती थी।

संघारामो की संख्या कुछ सौ थी जिन मे करीब छः हजार भिक्षु रहते थे। देव-मन्दिरो की संख्या कई सौ थी। अपने जीवनकाल मे तथागत ने यहा आकर धर्म प्रचार किया था। अत अशोक ने उन सब स्थानो पर स्तूप बनवा दिये थे—जहाँ भगवान बुद्ध निवास किये थे।

राजा क्षत्रिय-वर्ण का था। वह माल्वा के शीलादित्य-राज का भतीजा (या भाणजा) था, और वर्तमान् कन्याकुब्ज के राजा शीलादित्य का दामाद था। उस का नाम ध्रुवपट्ट (ध्रुवभट्ट) था। कुछ समय पूर्व उस ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। वर्ष में एकबार वह 'महासभा' करता था और सात दिन तक श्रमणों को बहुमूल्य रत्नादि, व वस्त्राभरण आदि दान में देता था। वह गुणज्ञ और विद्वानो का आदर करता था।[1]

आनंदपुर—इस जनपद का घेरा दो हजार ली था। राजनगरी (आनंदपुर) लगभग बीस ली थी। गृह समृद्धिशाली थे। यह जनपद भी माल्वा का अंग था।

यहाँ लगभग दस संघाराम थे जिन में करीब एक हजार भिक्षु रहते थे। देव-मन्दिरो की संख्या दसियो थी (Records, Vol II p 268)।

सुराष्ट्र—इस जनपद का घेरा लगभग चार हजार ली था। राजधानी की परिधि लगभग तीस ली थी। राजधानी के पश्चिम माही नदी थी। आबादी बहुल थी। परिवार (गृह) समृद्धिशाली थे। यह वल्लभी के अधीन था।

संघारामो की संख्या लगभग पचास थी जिन में करीब तीन हजार भिक्षु रहते थे। देवमन्दिर सौ के लगभग थे।

यह जनपद समुद्र-तटीय था, इसलिये लोग पश्चिमी समुद्र द्वारा व्यापार से जीविका अर्जन करते थे।

---

१ Watters, Vol II pp 246-247
'रेकर्डस' में बील ने शायद भूल से ध्रुवभट्ट को शीलादित्य-दर्प के लडके का दामाद लिख दिया है—Records Vol II p 267

नगर के समीप उज्जयन्त (yub-Chen-to=उज्जन्त) पर्वत था (सम्भवतया जूनागढ के पास गिरनार पर्वत) जिसके ऊपर एक संघाराम स्थित था।[1]

गुर्ज्जर (=गुजरात)—इस जनपद का घेरा प्राय पाच हजार ली था। इस की राजनगरी की परिधि करीब तीस ली थी (राजनगरी को राजपूताना के बल्मेर (Balmer) से मिलाया गया है)। आबादी बहुल थी और परिवार समृद्ध थे।

संघाराम एक था जिस में लगभग सौ भिक्षु रहते थे। देवमंदिर दसियो थे। यहा का राजा क्षत्रिय-वर्ण का था। वह भगवान-बुद्ध का अनुरक्त और भक्त था।[2]

उज्जयनि (उज्जैन—U-SHE-YEN-NA)—इस जनपद का घेरा करीब छ हजार ली था और राजनगरी की परिधि लगभग तीस ली थी।

जनपद का नाम वस्तुत अवन्ति (मालवा) था और उज्जैयनि उस की राजनगरी थी।

यहाँ की आबादी घनी थी और परिवार समृद्ध थे। संघारामो की सख्या दसियो थी लेकिन सुस्थिति में तीन या पाच ही रह गये थे। भिक्षुओं की सख्या लगभग तीन सौ थी।

देव-मन्दिर दसियो थे। राज ब्राह्मण-वर्ण का था।[3]

चि-कि-तो (Chi-ki-to)—उज्जैन से उत्तर-पूरब एक हजार ली तय करके चीनी यात्री चि-कि-तो जनपद पहुँचा था।

यह जनपद, उस ने लिखा है, घेरे में चार हजार ली था और राजनगरी की परिधि पन्द्रह-सोलह ली थी। भूमि उर्वर थी। फसलें बहुलता से होती थी। सेम और जौ मुख्य उपज थी। फूल-फल भी बहुलता से होते थे।

संघाराम दसियों थे, लेकिन भिक्षुओं की सख्या अल्प थी। देवमन्दिरो की सख्या लगभग दस थी।

---

१ Records Vol II pp 268-269 fn 79

२ Ibid pp 269-270 fn 81

३ Records Vol II pp 270-271

राजा ब्राह्मण-वर्ण का था। वह त्रिरत्नो पर आस्था रखता था और गुणज्ञो को पुरस्कृत करता था। दूर-दूर से विद्वान लोग यहा आया करते थे।[1]

महेश्वरपुर—इस जनपद का घेरा तीन हजार ली था। राजधानी की परिधि लगभग तीस ली थी। लोग मुख्यतया देवो के उपासक (ब्राह्मणधर्मी) थे। देव मन्दिरो की सख्या दसियो थी। पाशुपत धर्म मानने वाले ही अधिक थे।

यहाँ का राजा ब्राह्मण-वर्ण का था। बुद्ध के धम पर वह बहुत कम आस्था रखता था।[2]

सि थ (Sin Tu)—इस जनपद का घेरा सात हजार ली था। राजधानी की परिधि लगभग तीस ली थी।

ह्वेनसाग द्वारा उल्लिखित सिन्ध की राजनगरी का भारतीय नाम विच्छव-पुर या वसमपुर कल्पित किया गया है।[3]

यहा गेहू और प्रियगु बहुलता से होता था। खनिजो मे सोना, चादी और तावा बहुत था।

यहा के साड, भेड, ऊँट, खच्चर आदि जानवरो की नस्ल अच्छी थी। नमक यहाँ कई प्रकार का होता था लाल नमक, सफेद नमक, काला नमक और चट्टानी नमक। यह नमक औषधि में काम आता था।

जनपदवासी सच्चे और शुचि थे। लेकिन झगडालू और बात बदलने वाले भी थे। बुद्ध के धर्म मे उनकी गहन आस्था थी। सघारामा की सख्या कई सौ थी जिन में करीब दस हजार भिक्षु रहते थे। लेकिन वे अधिकाशत प्रमादी और विलास में रत रहने वाले थे। लेकिन जो सच्चे सन्त थे वे पहाडो और जगलो मे अकेले रहा करते थे।

देवमन्दिरो की सख्या लगभग तीस थी। राजा शूद्र-वण का था। वह प्रकृतित शुचि और सरल था और बुद्ध के धम पर आस्था रखता था।

अपने जीवनकाल मे तथागत ने यहाँ धम प्रचार के लिए यात्रायें की

---

१ Ibid , p 271

२ Ibid

३ Ibid p 272 fn 83 Indian Antiquary Vol viii, p 336 f

थी। जब भगवान ने यहाँ जहाँ-जहाँ निवास किया था, अशोक ने उन स्थानों पर स्तूप स्थापित करा दिये थे।[1]

मूलस्थानपुर (मुल्तान)—इस जनपद का घेरा लगभग चार हजार ली था।

राजधानी (मुल्तान) की परिधि करीब तीस ली थी। यह घना बसा था। भूमि समृद्ध और उर्वर थी। निवासी शुचि और सरल थे। वे विद्या के प्रेमी और गुणियों का आदर करने वाले थे।

बौद्ध-धर्म के मानने वाले बहुत कम थे। सघाराम लगभग दस थे। लेकिन ज्यादातर ध्वस्त स्थिति में थे।

देवमन्दिरों की सख्या आठ थी। एक मन्दिर सूर्य (आदित्य) का था जो बहुत ही भव्य और अलकृत था। सूर्यदेव की प्रतिमा पीत स्वर्ण की थी और अप्राप्य रत्न से अलकृत थी। स्त्रियाँ मूर्ति की पूजा करते हुए गीत गाती दीप जलाती और पुष्प व सुगन्ध अर्पित करती थीं। प्रारम्भ से ही यह प्रथा चली आ रही थी। समस्त भारत के राजा और धनी सूर्य को रत्न व मणि अर्पित करने में कभी चूक नहीं करते थे।

इन लोगों (राजा व धनिक) ने वहाँ एक दानशाला (धर्मशाला) बना रखी थी, जिस में निर्धन और बीमारों को पथ्य, पेय और औषधियाँ आदि देकर सहायता पहुँचायी जाती थी।

समस्त देशों से लोग हजारों की सख्या में सूर्यदेव की पूजा करने यहाँ आया करते थे। मन्दिर के चारों ओर सरोवर और फूलों के कुज थे।[2]

परवत (Po-Fa-To)—इस जनपद का घेरा पाच हजार ली था और राजधानी की परिधि लगभग बीस ली थी।

परवत या पर्वत जनपद को पाणिनि ने पजाब व उत्तर-पश्चिम के दामनि आदि जनपदों के साथ उल्लेख किया है (IV 3 93 & Indian Antiquary Vol I p 22)। मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य के सहायकों में शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस्य (पारसीक) और वाह्लीक आदि देशों के राजाओं के साथ पर्वतेश्वर (पर्वत जनपद का राजा) का उल्लेख है (द्वितीय अक), और कुलूत, मलय और कश्मीर, सिन्धु तथा पारसीक राज्य के राजाओं की

१ Ibid p 272

२ Ibid p 274

पर्वत-राज्य का शत्रु कहा गया है (पंचम अंक)। अतः प्रकट है कि पर्वत-जनपद कुलूत, कश्मीर और गांधार जनपद के पास का ही एक पड़ोसी राज्य था।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि पर्वत-जनपद की आबादी बहुल थी। उसकी धान वहां बहुलता से होता था। सेम और गेहूं भी उगाया जाता था। लोग शुचि और सच्चे थे। जनपदवासी बौद्ध और ब्राह्मणधर्मी दोनों ही थे। संघाराम लगभग दस थे जिन में कोई एक हजार भिक्षु रहते थे। अशोक के बनवाये चार स्तूप भी वहां थे। देवमन्दिरों की संख्या लगभग बीस थी।[1]

ओ-तिइन-प' ओ चिलो—ह्वेनसांग ने सिन्धु नदी पर स्थित ओ-तिइन-प'ओ-चिलो नाम के जनपद का उल्लेख किया है, जो सिंध राज्य के अधीन था। इस की राजनगरी में महेश्वर देव (शिव) का एक मंदिर था, जो सुन्दर शिल्पों से अलंकृत था। शिव प्रतिमा अलौकिक शक्ति वाली थी। मन्दिर में पाशुपत साधु निवास करते थे। अपने जीवनकाल में तथागत ने भी धर्म प्रचार के लिए यहाँ की यात्रा की थी, जिस कारण बुद्ध के निवास के स्थानों पर अशोक ने स्तूप बनवाये थे, जिन की संख्या छः थी।

लङ्गल (Long KIE-Lo)—यह जनपद पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण हजारों ली तक विस्तृत था।

कनिंघम के विचार में लङ्गल कच्छ में कोटेश्वर के उत्तर-पश्चिम दो हजार ली की दूरी पर स्थित था, और ह्वेनसांग उल्लेखित उस की राजनगरी का भारतीय नाम शायद शम्भुरीश्वर (sambhurisvara) था।[2]

यह जनपद बहुमूल्य मणियों और रत्नों के लिये प्रसिद्ध था। यह समुद्र-तटीय प्रदेश था। आबादी घनी थी। वहाँ से पश्चिमी-स्त्रियों के राज्य के लिए मार्ग (जलमार्ग) जाता था (पश्चिमी स्त्रियों का देश-ह्वेनसांग ने 'परशिया' (पारसीक) दिया है Records Vol II p 240)।

वहाँ का कोई मुख्य शासक नहीं था। जनपदवासी एक विस्तृत घाटी में रहते थे, और एक दूसरे पर आश्रित न थे। इस प्रदेश पर परसिया का आधिपत्य था।

---

१ Ibid, p 275

२ Ancient Geography of India, p 311

जनपदवासियों में बौद्ध और ब्राह्मणधर्मी दोनों थे। सघारामों की सख्या कुछ सौ थी और भिक्षुओं की सख्या लगभग छ हजार थी। देवमदिर कई सौ थे। पाशुपतों की सख्या बहुत अधिक थी।

राजनगरी में महेश्वरदेव (भगवान् शिव) का एक मदिर था, जो प्रतिमाओं के शिल्प से सुसज्जित था। पाशुपत यहाँ देव-पूजन करते थे।[१]

हर्षचरित और मुख्यतया ह्वेनसाग के विवरण से नगरों के बारे में हमें यथेष्ट सूचनायें प्राप्त होती हैं। लेकिन गाँवों के सम्बन्ध में ह्वेनसाग ने कोई विवरण नहीं दिया है। हर्षचरित में भी गाँवों का विशेष वर्णन तो नहीं है लेकिन उसके सातवें उच्छ्वास में बाण ने विन्ध्य-अटवी के वनग्राम का जो सुरम्य और सुविस्तृत वर्णन किया है, उसमें ग्राम्य-जीवन का पूरा रगीन चित्र अपनी सम्पूर्ण विविधता के साथ हमारी आँखों के सामने इस तरह दीख पडता है मानो हम स्वय भ्रमण-विचरण करते हुए उसे देख रहे हों।

बहिन राज्यश्री की खोज में विन्ध्याटवी में प्रवेश करने पर सम्राट् हर्ष वहाँ जिस वन-ग्राम में रात विश्राम के लिए रुके थे उसको शब्दों में चित्राकित करते हुए बाण ने लिखा है—

विन्ध्याटवी में प्रवेश करने के बाद देव हर्ष ने दूर ही से अटवियों (वनवासी) के कुटुम्बों के गृहों से युक्त वनग्राम देखा।

जगली धान के खलिहानों में साठी (साठ दिन में तैयार होने वाला धान) के जलते हुये भूसे के ढेरों के धुएँ से वनप्रदेश धूसरित (धूमिल) हो रहा था।

वहीं पर सूखे विशाल वट-वृक्ष के चारों ओर गायों के लिये सूखी लकडियों से आवेष्टित बाडा बना हुआ था। वहीं पर व्याघ्र (बाघ) द्वारा बछडों (बछडो) के मारे जाने से रोषित होकर गोपालकों ने बाघ को फँसाने के यत्र (व्याघ्रयन्त्र =जाल) लगा रखे थे।

अयन्त्रित (नियत्रण से रहित) वनपालों ने जगलों का अतिक्रमण करके लकडी काटने वाले ग्रामीणों से हठपूर्वक कुठार छीन लिये थे।

तरुओं (पेडों) के गहन खण्ड में देवी चामुण्डा का मण्डप (मन्दिर) बना था।

---

१ Records Vol, p 277

वनग्राम के चारो तरफ जगल ही जगल था। अत वनवासी कुटुम्ब का भरण (पालने) करने के लिए आकुल रहते थे, और कुद्दाल से जमीन को खोदकर कृषियोग्य खेत के भाग तैयार कर लेते थे। खेत के खण्ड छोटे-छोटे और विरल (कही-कही) थे। क्षेत्र (भूमि) कास-घास से भरी थी। काली मिट्टी *(कृष्णमृत्तिका) लोहे की तरह कठिन (कठोर) थी। कुद्दाल ही से उनकी खेती* होती थी (कुद्दालप्रायकृषिभि)।

स्थान-स्थान पर काटे गये पेडो के ठूठो मे पत्ते निकल आये थे। घने श्यामाक (सांवा) के खेतो मे अल्म्बुस (घास) और कोकिलाम (छुई मुई) के क्षुपो (झाडो) के साफ न किये जाने के कारण पहुँचना दुरूह था। तालमखाने के छोटे-छोटे द्रुमो (पौधो) के कारण भी चलने में कठिनायी होती थी। मार्ग पर आने-जाने वाले कम थे, इसलिए पगडण्डियाँ साफ नही दीखने में आती थी।

खेतो के पास बने मचो से सूचित होता था कि वे वन-पशुओ के उपद्रवों के कारण खडे किये गए थे *(सूच्यमानश्वापदोपद्रव)*।

दिशि-दिशि (जगह-जगह) जगल के प्रवेश मार्गों पर मार्ग के द्रुमो (पेडो) के नीचे पथिको के लिए प्याऊ-स्थान (पानी पीने के स्थान) बने हुए थे। पथिक वहाँ पहुँच कर पत्तो से पाँवा की धूल झाडकर छाया मे विश्राम करते थे।

नये खोदे गये कूपो (कुँओ) को अटवी-सुलभ माल के कुसुमो के स्तवको (गुच्छो) से सजा कर उन्हें कँटीले नागफनियो से घेर दिया गया था। और वही पर प्याऊ के लिए घास-फूस से कुटीर बना दी गयी थी। पथिको ने सत्तू खाकर वहा जो सकोरे फेंक दिए थे उन पर जगल की मक्खियाँ (कुटिल कीट) मँडरा रही थी। प्याऊ-स्थान के आस-पास पथिको ने जम्बूफल (जामुन) खाकर उनकी जो गुठलियाँ इधर-उधर फेंक दी थी उनसे भूमि रगबिरगी हो रही थी। धूलि-कदम्ब के फूलो के गुच्छो से भरी टहनियाँ तोडकर धूल में फेंकी हुयी थी।

काष्ट-मचो (काष्ठमञ्चिका) पर पानी से भरी बुदकिया से चित्रित मिट्टी की गगरियो (कण्टकितकर्करीचक्राक्रान्त) तृषा शान्त करने के लिए रखी थी। बालू की शीतल कलसियों में पानी पडने से जब वे रिसती थी तो उन्हें देखकर ही पथिको की थकावट (प्याम) दूर हो जाती थी।

पानी को शीतल करने के लिए विशाल अलिञ्जर-घडे जल-द्रुम सेवाल से लपेट दिये जाने से श्यामल लगते थे। जल निकाल कर रिक्त हुए उदक-कुम्भ

में पाटल (लाल) शक्कर रख दी गयी थी जो इस तरह उबक फैला रही थी (इस शक्कर से यात्रियों को शर्बत बनाकर पीने को दिया जाता था)।[1]

कुछ घड़ों के मुख गेहूँ के तिनकों (नालियों) से ढँके थे, और पानी को सुवासित करने के लिए उन पर पाटल (गुलाब) के फूल रखे थे—

'घटमुखघटितकुशप्रहारपाटलपुष्पपुटानाम्'

प्याऊ-कुटी के भीतर काठ के स्तम्भों (खम्भों) के सिरे पर सहकार-जाल के फलों की टहनियाँ लटका दी गयी थी जो पत्तों को हरा रखने और फलों को सूखने न देने के लिए उन्हें पानी में तर रखा गया था। प्याऊ पर विश्राम के लिए निरन्तर आने वाले यात्रियों के झुण्ड पानी पीते और चले जाते थे।

एक ओर प्रपाओं (पानशाला) से ग्रीष्म की उष्णता शीतल पड़ रही थी तो दूसरी तरफ दारु के समूह (लकड़ी के ढेरों) को जलाकर अंगार बनाने वाले व्योकार (लोहार) दाह (जलन) पैदा कर रहे थे—

'अन्यत्र दाहनिष्ठलिताङ्गारनिकरमहद्दाहिनि व्योकारे।'

चारों ओर सर्वत्र पहाड़ी प्रदेश के वासी (विषमवासिन्) निवास करते थे। वे लकड़ियाँ बटोरने के लिए (काष्ठग्रहार्थ) वन में प्रवेश कर रहे थे और पास के ग्रामीण गृहस्थों के घर पर अपना पाथेय (खाने का सामान) वहाँ के वृद्धों की देखरेख में सौंप दिए थे। कुठारों से लकड़ी काटने का कठिन श्रम करने के लिए उन्होंने अपने शरीर पर तेल की मालिश कर रखी थी। कठोर कुठार (भारी कुल्हाड़े) उनके स्कन्धों (कन्धों) पर रखे थे और प्रातराश (कलेवा) की पोटली उनके कण्ठ (गले) से लटक रही थी (कठोरकुठारकण्ठलम्बमानप्रातराशपुटैः)। चोरों के डर से उन्होंने फटे-पुराने वस्त्र पहिन रखे थे। काले रंग के बेंत की डिहरी-लड़ियों से बँधी पानी से भरी सँकरे मुँह की लम्बी गगरियाँ (घंट) जिन के मुख पल्लवों (पत्तों) से आवृत (मुँदे) थे, उनकी ग्रीवा से ग्रथित (गले में बँधी लटक रही) थी। उनके आगे बैलों की जोड़ियाँ चल रही थीं (लकड़ी लादकर लाने के लिए)।

---

१ 'In the water jars which were emptied of their contents and then dried, coarse suger candy of brown colour was filled and being used for making syrups for the thirsty—' The Deeds of Harsha, p. 215.

गाँव के उपान्त के जगलो में अनेक तरह के व्याध (शिकारी) घूम रहे थे। वनपशुओ का शिकार करने वाले व्याध (श्वपाक) वनग्राम के आसपास के जगलो में विचर रहे थे। वे हाथो मे जानवरो के स्नायुओ (नसो) मे वने फन्दे डालने वाली डोरियाँ और जाल लिए थे। वे जालो की गड्डियाँ और डोरियो से बुने फन्दो को वनपशुओ का आखेट करने के लिए बनायी गयी टट्टियो से बाधे हुए थे। कुछ शाकुनिक वहेलिए (चिडियो का शिकार करने वाले) श्येन (बाज), चकोर और कपिञ्जल आदि पक्षियो को सगृहीत करने के लिए पिंजरो को लेकर इधर-उधर फिर रहे थे। और उनके लडके (पाशिक शिशु) कन्धो पर वीतम जाल (पक्षिओ को फाँसने का जाल), जो उनके वास्पाशिक आभूषण से उलझ-पुलझ रहे थे, लटकाये घूम-फिर रहे थे। वहेलियो के छोकरो का झुण्ड पेडो की टहनियो या लताओ की डंटियो पर लासा लिप्त किए गौरइयो को फाँसने की इच्छा से इधर-उधर फुदक रहे थे। कुछ मृगया (आखेट) के शौकीन पक्षियो को पकडने का अभ्यास कर रहे थे, और घास में छिपे तित्तिरो के फडफडाने से भयभीत हुये अपने कुत्तो को पुचकार रहे थे।

कुछ ग्रामीण पुराने चक्रवाक के कण्ठ की तरह कापाय (लाल) रग की शेघु (सेंहुड) के वल्कलो (छालो) का गट्ठा लिए थे। कुछ के पास गेरु के जैसे लाल ताजा तोडे हुए धातकी-कुसुमो (धाय के फूलो) की अनेक वोरियाँ थी, और कई ग्रामीणजन रुई, अलसी और सन के गट्ठो का भार लिए थे। कुछ मधुमक्खियो का मधु (मधुनो माक्षिकस्य), मयूरो के पख, घना किया मधुच्छिट (लाक्षा = Wax), कुछ छाल रहित खदिर-काष्ठ (कत्थे की लकडी),, जिन पर लामजुक घास (खस की जटायें) चू रही थी, कुछ कुष्ठ (कूठ—एक प्रकार का पौधा), और कुछ कठोर केसरियो (पुराने सिंहो) की अयाल के जैसे पीले (लोध्र) के भार सिरो पर उठाये जा रहे थे।

गाँव की स्त्रियाँ (ग्रामेयका) विविध प्रकार के वन के फलो को पिटको (टोकरियाँ) में भरकर (विविधवनफलपूरितपिटक) उन्हें वेचने की चिन्ता में व्यग्र हो जल्दी-जल्दी चलती हुयी पास के गाँवो को जा रही थी।

कही पुष्ट और तरुण वैलो से युक्त छोटी-छोटी वाहिनियो अथवा गाडियो में पुराने कूडे की ढेरो खाद भरकर ले जायी जा रही थी। उनमें जुते वैल धूल से धूसरित थे। शकटो (गाडियो) के चक्रो (पहियो) की चीत्कार (चरचराहट) *के साथ हलवाह-लडके (सैरिको = हालिक, आक्रन्दकार) रोष भरे स्वरों (आवाज)* में वैलो को डग भरने के लिए ललकार रहे थे। जो क्षेत्र (खेत) दुर्वल हो गए थे अर्थात् उर्वर नहीं रह गये थे, उनमें खाद (कूडा-कर्कट) डाली जा रही थी।

गना के लहलहाते खेतों के बाड़ा से गाव हरियाले लगते थे। गन्नों के उगते अकुरो अथवा पत्ता को कुतरने वाले खरगोशों को भगाने के लिए खेतों में जगली भैंसा के ककाल अकुश की तरह रोप दिए गये थे। खेती के रखवाले जब गन्ने में छिपे हरिणा पर ढेलों को हांकने का डण्डा फेंकते थे तो हरिण छलांग लगाकर बांसों की बाड़ से निकल भागते थे।

विस्तीर्ण गन्ने के विटपों (शाखा = पौधा) को बड़े प्रयत्न से पोषा (प्रभूता) गया था।

वनग्राम के अटविको (वनवासियों) के कुटुम्बों के गृह दूर-दूर थे। गृहों के चारो ओर मरकत जैसे स्निग्ध और हरित स्नुहा के पौधा (स्नुहानुगावृक्ष = समन्त-दुग्धी गण्डीरी सेहुण्डो वज्रकन्दक —भाष्यकार, = सेंहुड) की बाड़ लगी थी (स्नुहा-वाटवेष्टित)। निकट ही कार्मुक (धनुषा) को बनाने के काम में आने वाले बांसों के विटप उग रहे थे, जहा करञ्जा की कटीली झाड़ियों के कारण प्रवेश कठिन था—

'कार्मुककर्मण्यवंशविटपसंकटे, कण्टकितकरञ्जराजिदुष्प्रवेशे।'

वन-कुटुम्बियों की गृहवाटिकाएं एरण्ड (उरुबूक), वचा (उग्रगन्ध वाला पौधा), वङ्गक (बैंगन), सुरसा (तुलसी के पौधे), सूरण (सूरनकन्द = जमीकन्द), शिग्रु (शिग्रु सौभाञ्जन —कृष्णगन्धा सुबमजाख्य शिग्रुक'—भाष्यकार, सहिजन), ग्रन्थिपर्ण ('सुगन्धिकन्दविशेष'—भाष्यकार), गवधु धान (तृणधान्यभेद —भाष्यकार) के गुल्मा या पौधों से भरी थीं। आरोपित (गाड़े गये) काष्ठ की बल्लियों पर काष्ठालुकलता (लौकी की बेल) फैल कर छाया दे रही थी।

गृह के पास निष्कुटा या उपवना का होना, हर्षचरित से सामान्य प्रचलन प्रतीत होता है। बाण ने द्वितीय उच्छ्वास में भी निष्कुटा का उल्लेख किया है (निष्कुटा स्वगृहारामा, भाष्यकार, पृ० १३७)।

मण्डलाकार बदरी (बेर) कुजों के मण्डप तले खादिर-कीला (खैर के खूँटा) पर छोटे बछड़े बँधे थे। कुक्कुटों (मुर्गों) के बांग देने से पता चलता था कि घर कहाँ-कहा पर बने (सन्निवेश) हैं।

घर के आगन में अगस्त्य-वृक्ष ('अगस्तिमुनितरु'—भाष्यकार, अगस्त्य-वृक्ष) के नीचे पक्षियों के लिए चारा खाने की पक्षिपूपिका ('पक्षिपूपिका पक्षाणा वेदवल्लानि भाण्डभेद' भाष्यकार) और पानी के लिए वापिया (तड़ाग = हौदियां) बनी थीं, और आगन पाटल (लाल) बदरी (बेर) के बिखरे फलों से पटा हुआ था (विकीर्णबदरपाटलपटनं)।

घर की भित्तियाँ (दीवारें) वेणु (बाँस) के फट्टो (पोरो), नरकुल के पत्तो और सरकडा को जोडकर बनायी गयी थी। गोरोचन और किंशुक (पलाश) के फूलो से रचित बल्वज घास के बने मण्डपो (मढवो) के नीचे कोयले (अगारो) के ढेर रखे थे। घरो में शाल्मली (सेमल) की तूल या रुई (तूल = कर्पास — भाष्यकार) बहुलता से सचय कर रखी थी, तथा नलशालि ('पद्ममूल-पद्मकद' = भाष्यकार) कमल की जडें, खाण्ड, शक्कर, कुमुद (कमल) के बीज, वेणु (बाँस), तडुल (चावल), और तमाल के बीज सग्रह करके रखे थे।

चटाइयाँ, काश्मर्य (गम्भीरी कृष्णमृत्तिका = भाष्यकार) को सुखाने में काम लाने से भस्ममलिन (मटमैली) हो रही थी। राजादन (खिरनी) और मदन-फल (मैनफल) सुखा कर रख दिये गये थे। मधुक फल का आसव (महुए की शराब) प्राय सब घरो मे यथेष्टता से थी। प्रत्येक घर में थालो में कुसुम्भ, कुम्भ और गडकूसूल के फूल लगे थे।

राजमाष (उडद), खीरा, ककडी (कर्कटिका), कोहडा और लौकी के बीजो से घर पूर्ण थे।

घरो में वनविडाल (जगली बिल्ली) (मालुधान, कर्कटिकादय, प्रसिद्धा मालुधाना मालुकावधाख्या प्राणिभेदा कर्कट = (कोई प्राणी)—भाष्यकार, थामस और कॉवेल ने मालुधान को सर्प कहा है—(maludhana snakes—Hc C & T p 229), नकुल (नेवला) और शालिजात आदि पशुओ के बच्चे पाले हुए थे।[1]

नगरों और ग्रामों का स्वरूप—ह्वेनसाग के विवरणानुसार नगर और गाँव दीवारो से घिरे होते थे। सडकें और गलियाँ तग अथवा सँकरी थी और रास्ते घुमावदार थे। मुख्य सडकें गदी थी और सडको के दोनो तरफ दुकानें लगी होती थी।

हर्षचरित में हाट अथवा बाजार (जहाँ दुकानें लगती थी) को 'आपण' और विक्रय-वस्तुओं को 'पण्य' कहा गया है—'अप्रसारितापणपण्यम्' (पचम उच्छ्वास, पृ० २६२)। बाण ने बाजार की गलियो का भी उल्लेख किया है, जहाँ पर दुकानदार अपने 'पण्य' का विक्रय किया करते थे—'विक्रयवीथीमिव-

---

१ हर्षचरित-सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४०६-४१२
Hc C T pp. 225-229.

पण्यपल्लव्य' (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३३, 'the bazaar street of the wares, of Dharma-Hc C & T p 14)। दुकानों की पंक्तियों का भी बाण ने उल्लेख किया है—विपणिवीथ्य =वणिक्क्रयपदव्य , माल्यकार, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२०)।

चीनी यात्री ने बताया है कि कसाई, मछुवाहे, नट, चाण्डाल (फांसी देने वाले), और भंगी आदि नगर के बाहर रहते थे। नगर के भीतर आते-जाते समय उन्हें सड़क के बाईं तरफ चलना होता था। उनके घर नीची दीवारों से घिरे होते थे। उनके निवास-गृह नगर के उपान्त में थे।

नगर की दीवारें मुख्यतया ईटा की बनी होती थी। दीवार के शीर्ष पर काष्ठ या बांस के अट्टाल (बुर्ज) बने होते थे।

बाण की कादम्बरी में बड़े नगर के चारों ओर पानी की परिखा (खाई) का उल्लेख है।

ह्वेनसाग को यहा के नगरो के मकान चीन के जैसे लगे थे। मकानो के बरामदे व प्रकोष्ठ बहुधा लकडी व बांस के बनते थे और उन्हें चूने व गारे से लिप्त कर दिया जाता था। दीवारें चूने और शुद्धता के लिए गाय के गोबर से सनी मिट्टी से पुती होती थी। विभिन्न ऋतुओ में नगरवासी घरो (प्रागण) में फूल बिखेर दिया करते थे (गढवाल में अभी भी पूरे चैत मास भर छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियाँ प्रात सूर्योदय से पूर्व नगर के सब घरों में जाकर फूल बिखेर आते है)।

संघारामों का निर्माण अद्भुत कौशल के साथ किया जाता था। संघाराम के चारो कोण पर तीन-मंजिली अट्टालिकायें बनायी जाती थी। शहतीर व छज्जो आदि को विभिन्न आकारो से कलापूर्ण ढग से सज्जित किया जाता था। द्वार, गवाक्ष (खिड़किया), और नीची दीवालो को पूर्णतया चित्रित किया जाता था। भिक्षुओ के कक्ष भीतर से सज्जित और बाहर से सामान्य होते थे। भवन के मध्य में उत्तुग और विस्तृत मण्डप या बाह्यकोष्ठ (Hall) होता था। द्वार का मुख पूरब की तरफ होता था, और राजकीय सिंहासन भी पूर्वाभिमुख रखा जाता था।

घरों में बैठने व विश्राम करने के लिये चटाइयाँ प्रयुक्त होती थी। राजपरिवार के लोग, श्रेष्ठ राजपुरुष और सामान्य अधिकारी विभिन्न प्रकार से सज्जित चटाइयाँ प्रयुक्त करते थे, किन्तु होती सब एक नाप की थी।

वर्तमान सम्राट् (देव हर्ष) का तख्त (throne) आकार में विशाल और उत्तुंग था और उसे सिंहासन (Lion-Throne) कहा जाता था। वह महीन वस्त्र से आच्छादित था और पाँवदान रत्नों से सज्जित था। अभिजात वर्ग के लोग अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर चित्रित और सज्जित पीठों (Seats) को काम में लाते थे (Ibid, pp 74-75)।

ह्वेनसांग वर्णित देवहर्ष के सिंहासन का स्वरूप, बाण के विवरण में सादृश्य रखता है। बाण जब सम्राट् से मिलने भुक्तास्थानमण्डप में गया था तो देवहर्ष को उसने मुक्ताशैल की शिलाओं से निर्मित पट्टशयन (= सिंहासन, मुक्ताशैलशिला-पट्टशयने) पर आसीन देखा था। इस सिंहासन के पाद (पाये) उज्वल हाथी दाँत के बने थे (दन्तपाण्डुरपादे)। सिंहासन की आभा शशिमय (चन्द्रमा की जैसी शीतल ज्योत्स्ना से पूर्ण) थी, और उनका पाद-पीठ मणियों से युक्त (मणिपादपीठ) था (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११९-१२०)।

राजप्रासाद—हर्षचरित के विवरण से प्रकट है कि राजप्रासाद अत्यन्त भव्य, विशाल और सुसज्जित था। राजप्रासाद को राजकुल, राजभवन व राजमंदिर कहा जाता था। राजद्वार के दोनों पार्श्व में कई एक कमरे होते थे जिन्हें द्वारप्रकोष्ठ (अलिन्द) कहा जाता था। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर अलिन्द में बैठकर सुवर्णकार आभूषण बनाने में जुटे थे। प्रासाद प्रतोली (पौरी), प्राकार (दीवार से घिरा) और शिखरों से युक्त होता था। मांगलिक अवसरों पर (जैसे राज्यश्री के विवाह के समय) प्रासाद (महल) की दीवालें आदि कुशल चित्रकारों द्वारा मांगलिक-चित्रों से चित्रित कर दी जाती थी —'चतुरचित्रकारचक्रवाललिख्यमानमङ्गल्यालेख्यम्'। राजमन्दिर के कोष्ठों का फर्श बाण ने सिन्दूरी रंग से निबद्ध (बनाया गया) बताया है (—सिन्दूरीकुट्टिमभूमीश्च) चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४३।

राजकुल या राजमन्दिर कई कक्षों में बँटा होता था जैसे आस्थानमण्डप (बाहरी मंडप जहाँ सम्राट् सबसे मिलते थे = आम दरबार), और भुक्तास्थान-मण्डप (भीतरी मण्डप, जहाँ विशिष्ट व्यक्तियों से मिला जाता था = दरबार खास), यहाँ पर, तीन ड्योढ़ियों को पार कर बाण सम्राट् हर्ष से मिला था। भुक्तास्थानमण्डप के पास ही, तृतीय कक्ष में 'धवलगृह' (अंतःपुर) था जहाँ सम्राट् विश्राम करते व सोते थे—(हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १०३ और ११८ तथा पंचम उच्छ्वास, पृ० २६६)। राजप्रासाद के ऊपर सौध (कोठा) होता था और उसमें जाने के लिए आरोहिणी (सीढ़ी) बनी होती थी।

राजप्रासाद के भवनों की भित्तियां (दीवारें) मणियुक्त होती थीं और स्तम्भ माणिक्य के होते थे (मणिभित्ति 'माणिक्यस्तम्भ चतुर्थ उच्छ्वास पृ० २१३)। चित्र-भवन को 'चित्रगृह' कहा जाता था। चित्रगृह की भित्तियों पर सुन्दर चित्र बने होते थे (वही, पृ० २५४)।

समुन्नत कृषि और समृद्ध व्यापार—बाण और ह्वेनसांग ने भारतीय जनपदों, नगरों व ग्रामों का जो विवरण प्रस्तुत किया है उससे प्रकट है कि भारत तब समुन्नत-कृषि और प्रोन्नत व्यापार के परिणाम से समृद्ध और सम्पत्तिशाली था और देशवासी सामान्यतः धन एवं धान्य के अभावों से मुक्त, श्री एवं सम्पदा से युक्त थे।

कृषि राष्ट्र का प्रथम मुख्य उद्योग था, और उसके बाद उद्योगों में दूसरा स्थान व्यापार व उद्योग-धन्धों का था। कृषि-उद्योग की प्रमुखता का ही कारण था कि सुदूर प्राचीनकाल से भारतीय स्मृतिकारों व राजशास्त्रियों ने कृषि की वृद्धि के प्रति 'राजा' को सदा सजग और सचेष्ट रहने का निर्देशन दिया है। कौटिल्य ने भूमि से उत्पन्न होने वाली फसलों अथवा कृषि-कर्म को 'सीता' नाम दिया है, और कृषि के राज्याधिकारीको सीताध्यक्ष कहा है। 'सीता' परम्परागत नाम है। सीता भगवान् राम की अर्द्धांगिनी अथवा शक्ति है। कौटिल्य ने 'कृषि' को 'सीता' संज्ञा देकर प्रकटतः यह इंगित किया है कि राष्ट्र (पृथिवी) जो राम है उसकी शक्ति सीता है। निष्कर्षतः राष्ट्र 'सीता' की समृद्धि पर ही आश्रित होता है।

यही कारण है कि कौटिल्य ने कृषि (सीता) की अनवरत सफलता के लिये केवल वर्षा पर निर्भर न रहकर सिंचाई की व्यवस्था के हेतु नदियों को बांधकर 'सेतु' बनाने का निर्देश दिया है, जिससे नहरें निकाल कर वर्षा के अभाव में भी खेतों को सींच कर अन्न उत्पन्न किया जा सके। कौटिल्य के शब्दों में—

'सेतुबन्धः सस्यानां योनिः'—(अधिकरण ७, अध्याय १४)।

अपने महामन्त्री कौटिल्य के इस निर्देशन का प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने पूरी तरह पालन किया था और उसके समय में सौराष्ट्र के गिरिनार पर्वत पर तीन नदियों को बांधकर एक 'महासेतु' अथवा 'कासार' का निर्माण किया गया, जिसका नाम 'सुदर्शन-झील' था। दूसरी शताब्दी ई० सन् के मध्य में इस सुदर्शन-झील का कुछ भाग भग्न हुआ और तब सौराष्ट्र के गणपति महाक्षत्रप रुद्रदामन ने काफी धन व्यय कर के उसकी मरम्मत करवायी थी

(Epigraphia Indica, Vol VIII)। पाँचवी शताब्दी के मध्य के आसपास गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्त के समय में पुन सुदर्शन-झील के बाँध का कुछ हिस्सा टूट-गया था और उस समय गिरनार के सुयोग्य पौर-व्यावहारिक (नगरपाल) ने सुदर्शन के खण्डित भाग को अनवरत परिश्रम और यथेष्ट धन लगाकर उसे यथाशीघ्र यथावत् कर दिया था (C I I Vol III pp 63-64)।

यह विवरण इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मौर्य और गुप्तो के समय में जिस तरह राज्य 'कृषि' की समुन्नति के लिये सिंचाई पर ध्यान देते रहे वह परम्परा आगे निर्बाध रूप से उनके बाद भी अविच्छिन्न रही। यही कारण है कि पुष्यभूतिया के समय भी भारत की 'कृषि', जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, समुन्नत स्थिति में थी। बाण ने हर्षचरित मे श्रीकण्ठ जनपद का वर्णन् करते हुए वहा की धान और गन्ने आदि की लहलहाती फसलो का वर्णन् करते हुये, रहट (घटी-यन्त्र=Persian wheel) से सीची गयी जीरा (जीरक) के हरे-भरे खेतो (फसलो) का भी उल्लेख किया है। बाण ने यह भी कहा है कि श्रीकण्ठ जनपद विष्णु की नाभि के जैसे अनेक जलाशयो से परिपूर्ण था (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६० और १६२)। जलाशयो के सन्दर्भ में विष्णु की नाभि से उपमा दिया जाना बहुत अर्थपूर्ण है। विष्णु की नाभि के कमल से जिस प्रकार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वहाँ के जलाशय जीव-सृष्टि के मूलाधार कृषि अथवा सीता को उत्पन्न करने वाले थे। सामान्य शब्दो में वहाँ के जलाशयो से कृषि की सवृद्धि के हेतु फसलों को सीचने के लिये पर्याप्त जल प्राप्त होता था।[1]

---

१ देव हर्ष के युग में खेती की समुन्नति पर प्रकाश डालते हुए श्री पनिक्कर लिखते हैं—"Agriculture was then, as now, the chief source of India's wealth India was perhaps the best irrigated country at that time, records show that even in the time of Mauryas, kings took great pains to have cannals dug and dams constructed"—Shri Harsha, p 59 f

इसी सन्दर्भ में श्री मुखर्जी लिखते हैं—'Agriculture, the main industry of the country, was in the hands of the sudras As means of irrigation Bana refers to what he calls 'tulayntra' or water pumps'—(Harsha, p 171)

फल-फूल व फसलें

ह्वेनसांग ने लिखा है कि विभिन्न प्रकार की जलवायु और विभिन्न किस्म की भूमि होने के कारण भारत में अनेक प्रकार की फसलें होती हैं। फूलों और फलों के पौधे व वृक्ष भी नाना प्रकार के हैं और नाम भी उनके विभिन्न हैं।

ह्वेनसांग ने सब प्रकार के फलों-फूलों का नाम गिनाना कठिन बतलाते हुए विशेष लोकप्रिय फलों के नाम ये दिए हैं—आम्रा (आवला), मधुकफल, भद्र-फल (बदर), कपित्थ (कैथ), उदुम्बर (गूलर), मोन्छा (केला), नारिकेल और पनस-फल आदि।

नासपाती, प्लम, आड़ू, खुबानी और अंगूर आदि कश्मीर के फल हैं और वहाँ से लाकर सर्वत्र उगाये जाते हैं। अनार और सन्तरा भी सर्वत्र पैदा किया जाता है।

बाण ने श्रीकण्ठ जनपद में पैदा होने वाले फलों में अखरोट, अंगूर, अनार, नारिकेल (नारियल), पिण्डखजूर व आरुक आदि का उल्लेख किया है। इस जनपद के गावों के कण्ठ (समीप की भूमि), बाण ने लिखा है, शाक-कन्द और केलों के पौधों से श्यामलित (सावले) थे (शाककन्दलश्यामलितग्रामोपकण्ठकाश्य-पीपृष्ट)। वहाँ के वनों के जलाशय ऊँचे (तुग), अर्जुन वृक्षों की पंक्तियों (पाली) से आवृत (घिरे) थे, और वहाँ के प्रदेश केतकीवनों के पराग से पीले लगते थे—धवलधूलिमुचा केतकीवनाना रजोभि पाण्डुरीकृतं (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६०–१६१)।

विन्ध्याटवी के वनग्राम के विवरण में अनेक तरह की फसलों (अनाज आदि), फलों-फूलों व सब्जियों आदि का उल्लेख पहले किया जा चुका है। शोभा छाया वाले वृक्षों में अगस्त्य के वृक्षों और फलों में राजादन (खिरनी), मदनफल (मैनफल), और मधुका (महुआ) का वहाँ बाण ने उल्लेख किया है। मधुका से आसव व मद्य तैयार किया जाता था—

'राजादनमदनफलस्फीतैर्मधूकासवमद्य' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ४११)।

खेती के प्रकार पर प्रकाश डालते हुए ह्वेनसांग ने लिखा है कि कृषकवर्ग भूमि को जोत व निरा कर तैयार करते थे और मौसम के अनुसार फसलें बोते व काटते थे। कृषिकार्य पूरा करने के पश्चात् कुछ समय वे विश्राम में बिताते थे।

फसलो मे ह्वेनसाग ने धान और गेहूँ को मुख्य पैदावार बताया है। अदरख, सरसो, तरबूज, कोहड़ा, कुन्द (कन्द) भी उगाये जाते थे। प्याज और लहसुन कम पैदा किया जाता था, जो इनको खाते थे उन्हें नगर की दीवार से बाहर रहना पडता था।[१]

समृद्ध व्यापार—कृषि के बाद दूसरा प्रमुख उद्योग आन्तरिक तथा विदेशो से होने वाला व्यापार था। व्यापार अर्थ (धन=श्री एव सम्पदा) का बडा स्रोत था। देश के भीतर व्यापारियो के लिए एक जनपद से दूसरे जनपद को माल पहुँचाने के लिए 'वणिक्पथ' बने थे और नदियो से भी नावो द्वारा व्यापार हुआ करता था। महाराज प्रभाकरवर्धन ने ऊँची-नीची भूमि को समतल कर विस्तृत मार्ग बनवाकर पृथिवी को अनेक भागो में विभक्त कर दिया था—अर्थात् सर्वत्र सेना के अभियान हेतु दड-यात्रापथ बना दिए गए थे। प्रकट है कि इन पथो अथवा मार्गों के बन जाने से व्यापारियो को भी व्यापारिक यात्रायें करना सुगम हो गया था—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २०४), और नदियो के मार्ग से भी आन्तरिक व्यापार हुआ करता था, इसका ह्वेनसाग के आधार पर पूर्व उल्लेख किया जा चुका है—(Watters, Vol I p 176)।

सुदूर प्राचीन काल से सामुद्रिक मार्ग द्वारा भी भारत का बाहरी देशो के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। पूर्वीय, पश्चिमी तथा दक्षिणी समुद्र के तटो के नौकाश्रयो से व्यापारी-जहाज जाया-आया करते थे। पश्चिमी उदधि का मुख्य नौकाश्रय (बन्दरगाह जहाँ नौकाएँ अथवा जहाज उतरा करते थे = उत्तरणस्थान) भृगुकच्छ (भारुकच्छ = भडौच) था, और पूरब के मुख्य नौकाश्रय ताम्रलिप्ति (बगाल) और चरित्रनगर (उडीसा) थे। फाह्यान ताम्रलिप्ति से ही लका के लिए जहाज से रवाना हुआ था। चौदह दिन रात-दिन निरन्तर यात्रा करने के पश्चात् जहाज लका पहुँचा था।[२]

---

१ 'Among the products of the ground, rice and corn (wheat) are most plentiful With respect to edible herbs and plants, we may name ginger and mustard, melons and pumpkins, kunda, and others Onions and garlic are little grown, (and people who eat them are ostracised).—Records, Beal Vol I p 88 and Watters, Vol I pp 177–178

२ A Record of Buddhistic kingdoms, James Legge p 100.

सुदूर दक्षिण में काञ्ची अथवा काञ्जीवरम और नागपट्टनम् मुख्य नौकाश्रय थे। दक्षिण-समुद्र को पारकर यहीं से यात्री व व्यापारी आदि बाह्य देशों की यात्रा पर जाते थे। काञ्ची से पोत द्वारा लंका की यात्रा में तीन दिन लगते थे, और नागपट्टनम् से दो दिनों में ही जहाज लंका पहुँच जाते थे (Records Beal II, p 228 fn 118 और p 233 fn 131)।

स्थल तथा समुद्री मार्ग से भारत का पश्चिमी व मध्यएशिया तथा पश्चिमी जगत् (यूनान व रोम) एवं भारतीय महासागर के द्वीपों आदि के साथ व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क प्राचीन काल[1] से लेकर देव हर्ष के समय सातवीं शताब्दी में भी अविच्छिन्न रूप से बना रहा।

बाण के हर्षचरित से प्रकट होता है कि देव हर्ष के समय में दक्षिणी-समुद्र के अष्टादश द्वीप (अठारह द्वीप) भारत के बृहत्तर अंग माने जाते थे। इसीलिए मालवराज के विरुद्ध अकेले अभियान पर जाते समय परमभट्टारक राज्यवर्धन ने अपने छोटे भाई देव हर्ष को राजधानी में रुके रहने की सलाह देते हुए उन्हें यह कहकर आश्वस्त किया था कि 'हरिण को मारने के लिए सिंहों के झुण्ड का जाना लज्जास्पद है, और फिर तुम्हारे विक्रम के लिए—

---

१ पश्चिमी जगत् और भारत के बीच सम्पर्क पर रॉलिन्सन ने अपनी पुस्तक 'Intercourse Between India and The Western world' में सुस्पष्ट विवरण उपस्थित किया है।

केनेडी (Kennedy) ने दर्शाया है कि भारत का पश्चिमी जगत् के साथ ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी से समुद्री-मार्ग से व्यापार हुआ करता था (J R. A S, 1898 pp 250 ff)।

डा० आर० सी० मजूमदार के अनुसार भारत का पश्चिमी-एशिया के साथ ई० पू० चौदहवीं शताब्दी से ही व्यापारिक सम्बन्ध था (The Age of Imperial unity, p 613)।

सुदूर प्राचीन-काल में मोहनजोदड़ो भारत का महत्त्वशाली नौकाश्रय था, जहाँ से भारतीय व्यापारी उर (Ur), किश (Kish) तथा मिस्र तक पहुँचा करते थे (Ibid p 611)।

यूनानी प्रदेशों तथा रोम से भी भारत का प्राचीन काल में व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क था और यह व्यापारिक सम्बन्ध छठी शताब्दी ई० सन् तक समृद्ध स्थिति में बना रहा (Ibid pp 615 ff & p 624)।

'अपि च तवाष्टादशद्वीपाष्टमङ्गलकमालिनी मेदिन्यस्त्येव विक्रमस्य विषय' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२६)—अट्ठारह द्वीपों की अष्टमंगलक माला वाली मेदिनी विषय है ही।'

मेदिनी (अर्थात् पृथिवी) से यहाँ पर अभिप्राय भारत देश से है (कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में देश (भारत) को पृथिवी कहा है, 'देश पृथिवी—अधिकरण ९, अध्याय १) और दक्षिणी समुद्र के अठारह द्वीप उसकी अष्टमंगलक माला अथवा अंग थे, जिन पर विजय स्थापित करना भारत के सार्वभौम विजेता का राजधर्म *और विक्रम का विषय हो गया था।*

अतः देव हर्ष ने अपने भाई राज्यवर्धन के हत्यारे गौडाधिप के विरुद्ध अभियान पर जाते समय भारत के समस्त राजाओं को 'करद' बनने का शासन प्रेषित करने के साथ 'द्वीपान्तर' तक विचरण करने की भी घोषणा की थी (द्वीपान्तर = इण्डोनीसिया के द्वीप, षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३४४)।

दक्षिण समुद्र के द्वीप गुप्तों के समय से ही भारतवर्ष के अंग माने जाने लगे थे, जिस कारण, भारत का नाम, जैसा कि प्रोफेसर अग्रवाल ने इंगित किया है, कुमारी द्वीप हो गया था। गुप्तयुगीन साहित्य के आधार पर अठारह द्वीपों के नामों में नीचे अंकित द्वीप सम्मिलित थे—

(१) कुमारी द्वीप (= भारत, हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक)।
(२) सिंहल द्वीप (लंका)।
(३) नाग द्वीप (निकोबार)।
(४) इन्द्र-द्युम्न द्वीप (अण्डमान)।
(५) कटाह द्वीप (केदह—मलय द्वीपकल्प Malay Peninsula)।
(६) मलय द्वीप
(७) सुवर्ण-द्वीप (सुमात्रा)।
(८) यव द्वीप (जावा)।
(९) वारुशक द्वीप (बरोस = Baros Island)।
(१०) वारुण द्वीप (बोर्नियो)।
(११) पर्णयुपायन द्वीप (फिलिपाईन)।
(१२) चमद्वीप (कर्दरङ्ग)
(१३) कर्पुरद्वीप (सम्भवतया उत्तम कपूर उत्पादन के कारण बोर्नियो का ही यह नाम था)।

(१४) कम्ब द्वीप (कम्बोडिया)।

(१५) वालिद्वीप।

ये सब द्वीप मिलकर 'द्वीपान्तर' नाम से विख्यात थे।[1]

देवहर्ष के ताम्बूल (पान) की लाली से युक्त सिंदूरी अधर बाण ने उस मुद्रा के समान बताया है जिसके द्वारा वे विभिन्न द्वीपों (द्वीपान्तर) को अपने अनुरागियों (राजभक्तों) को (जागीर में) दे रहे थे (मुद्रया हि ससिन्दूरया विलम्यते—भाष्यकार, दान में दी जाने वाली वस्तुयें प्राचीन काल में सिन्दूर से मुद्रित करके दी जाती थी)।[2] बाण का यह उल्लेख इस बात का और पुष्ट प्रमाण है कि 'द्वीपान्तर' भारत देश के ही अंग थे, और इसीलिए भारतीय सम्राट् उन्हें अपने अनुरक्तों को अर्पित करने का अधिकारी था। भारत के अंग होने से ही, बाण ने बाल्यकाल में ही दोनों भाइयों (राज्य और हर्ष) का यश द्वीपान्तर में प्रकाशित होने का उल्लेख किया है—(द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशता जग्मतु, ४ उच्छ्वास, पृ० २३४)।

देव हर्ष के समय में दक्षिणी समुद्र के मार्ग से सिंहल और इन्डोनीसिया आदि 'द्वीपान्तरों' के साथ भारतवर्ष का व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध घना और दृढ़ था, यह बाण, स्वयं श्रीहर्ष, ह्वेनसांग और इत्सिंग के विवरणों से प्रत्यक्ष है।

बाण ने हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में महाकवि व्यास की स्तुति करते हुये कहा है कि उस महान् कवि ने सरस्वती (नदी) से पवित्र भारतवर्ष के समान अपनी सरस्वती (वाणी) से महाभारत ग्रन्थ का निर्माण किया, जिसकी कथा तीनों जगत् में व्याप्त है—

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥ ३॥

. ... ..

कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्॥ ९॥

इस तथ्य से प्रकट है कि बाण के समय में महाभारत की कथा भारतवर्ष से बाहर तीनों जगत् अर्थात् द्वीपान्तरों में भी व्याप्त हो गयी थी।

चीनी यात्री इत्सिंग से इस तथ्य की पुष्टि होती है। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह चीनी यात्री सुमात्रा (श्री भोज) और जावा गया था। उसने

---

१ The Deeds of Harsha, pp 147–148

२ Hc C & T p 204 हर्षचरित—सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७०

अपने विवरण में जावा-द्वीप का नाम 'कलिंग' दिया है। प्रकट है कि 'कलिंग' नाम भारत से जाकर वहाँ बसने वालो ने ही जावा को प्रदान किया था। उसके विवरण से यह भी प्रकट है कि श्री भोज अथवा सुमात्रा उस समय भारतीय शास्त्रो और दर्शन का प्रमुख केन्द्र था और उस (इत्सिग) ने स्वय सस्कृत और पाली का वहाँ रुककर अध्ययन किया था। इत्सिग के विवरणानुसार वहाँ वे सभी शास्त्र व विद्याएँ पढाई जाती थी जिनका भारत (मध्यदेश) में अध्ययन-मनन होता था।

देव हर्ष के समय से बहुत पहले से ही जावा मे भारत मे ब्राह्मण और बौद्धो दोनो ने वहाँ जाकर अपने-अपने धर्मों का प्रचार-प्रसार किया था। जावा में पाँचवी शताब्दी के सस्कृत भाषा मे वैष्णव-लेख मिले है। और ई० सन् ६५६ के सुमात्रा के अभिलेख में जावा के एक राजा का नाम आदित्यधर्म मिलता है। राजा के इस नाम से प्रकट है कि वह भारतीय मूल का था और सम्भवतया 'आदित्य' का अनुरक्त भक्त था। इत्सिग के विवरण से यह भी मालूम होता है कि दक्षिणी समुद्र के द्वीपो के अनेक राजा व नायक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।[1]

जावा के ऐतिहासिक विवरणो में उल्लेख है कि भारत से क्षत्रिय (योद्धा), चिकित्सक, लेखक, शिल्पी और कृषक आदि वर्गों के पाँच हजार भारतीय जावा पहुँचे थे और फिर ई० सन् ६०३ में छ बडे और सौ छोटे पोतों में भरकर पाषाण और धातु पर काम करने वाले लगभग दो हजार शिल्पी वहाँ गये थे। श्री मुखर्जी का यह कथन तथ्यसगत है कि जावा के सुप्रसिद्ध बोरोबुदूर (Borobudur) और प्रमबनम (Prambanam) के भारतीय शैली के मदिर भारत के शिल्पियो की ही कृतियाँ है।[2]

लका का सिंहल-द्वीप नाम भी भारतीय मूल का है। दीपवश के अनुसार लाट (गुजरात) के सिंहपुरा के योद्धा सिंह के पुत्र विजय ने लका को यह नाम दिया था। ह्वेनसाग के विवरणानुसार लका पूर्वकाल में 'रत्नद्वीप' कहलाता था और सिंहल नाम भारत से वहाँ जाकर बसने और राज्य स्थापित करने वाले दक्षिणी भारत के एक राजा की पुत्री के लडके सिंह (सिंह को पकडने वाला) के नाम पर पडा था।[3] यह भी कहा जाता है कि सिंहल भारत के एक साहसिक

---

१ Itsing Trans Takakusu

२ Harsha, p 179

३ Records, Beal II p 236 and ff and p 240 fn 11

श्रेष्ठी (व्यापारी) का नाम था, जिन ने लङ्का में अपना राजवंश स्थापित किया था। उन के पिता का नाम 'सिंह' था और उसी के नाम पर लङ्का-द्वीप 'सिंह-राज्य' या सिंहल कहलाया।[1]

सिंहल के साथ सुदूर प्राचीनकाल से प्रचलित भारत का सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध देव हर्ष के समय भी अविच्छिन्न रहा। बौद्ध-स्रोतों के अनुसार लङ्का में बौद्धधर्म का प्रथम प्रचार-प्रसार सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा ने किया था।

सम्राट हर्ष की नाटिका रत्नावली से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी के व्यापारी दक्षिण समुद्र को पारकर व्यापार के लिए सिंहल-द्वीप आया-जाया करते थे। नाटिका में सिंहल की राजकुमारी (रत्नावली) को कौशाम्बी के महाराज उदयन से परिणय हेतु पोत द्वारा भारत लाये जाने का उल्लेख है। संयोग से राजकुमारी को लाने वाला जहाज तूफान में टूट गया और सिंहल-राजकुमारी काष्ठ के एक चौड़े तख्ते के सहारे तिरने लगी। तभी सिंहल से वापस लौटते हुए कौशाम्बी के व्यापारी की निगाह बहती हुयी राजकुमारी पर पड़ी। व्यापारी ने राजकुमारी को उस सङ्कट से बचा लिया और अपने साथ कौशाम्बी ले आया। राजकुमारी की बहुमूल्य 'रत्नमाला' के अलङ्कार से उसे अभिजात-कुल की कन्या जानकर व्यापारी ने उसे कौशाम्बी राज के मन्त्री यौगन्धरायण को सौंप दिया—और अन्तत सिंहलराजकुमारी यथाविधि महाराज से विवाह दी गयी थी—

> सिंहलेश्वरदुहितुः समुद्रे प्रवहणभङ्गनिमग्नाया फलकासादनं क्व च कौशाम्बीयेन वणिजा सिंहलेभ्यः प्रत्यागच्छता तदवस्थायाः सम्भावनं रत्नमाला-चिह्नाया प्रत्यभिज्ञानादिहानयनं च (प्रथम अङ्क)।

दक्षिणी समुद्री के मार्ग से देव हर्ष के समय में चीन से भी सम्पर्क बना रहा। 'लाइफ' के विवरणानुसार सम्राट शीलादित्य ने ह्वेनसांग से कहा था कि यदि वह दक्षिणी-समुद्र के मार्ग से चीन वापस जाना चाहे तो राज-परिचारकों को उन के साथ कर दिया जायेगा।[2]

---

१ The Travels of Fa-Hien, J Legge p 100 fn 5

२ Life p 188

सम्राट हर्ष ने ह्वेनसाग के माध्यम से चीन-राज्य मे सम्पर्क स्थापित कर अपने दूत भी दक्षिणी समुद्र के मार्ग से चीन भेजे थे।[१]

समुद्र की अपेक्षा स्थलमार्ग से चीन के साथ सुदूरप्राचीन काल से भारत का घना सम्बन्ध था जो सातवी शताब्दी मे भी बना रहा। हर्षचरित में बाण ने लिखा है कि पाण्डव सव्यसाची (अर्जुन) ने राजसूय यज्ञ के हेतु सम्पत्ति के लिए चीन देश का अतिक्रमण (अथवा चीन पर आक्रमण) किया था—

'पाण्डव सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसम्पदे' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८०)।

[इस प्रसग के साथ महाभारत का यह सन्दर्भ प्रेक्षणीय है—आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत-अनुगीता पर्व मे उल्लेख है कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव सदल्बल हिमालय में राजसूय-यज्ञ के लिए धन प्राप्त करने को अनेकानेक सरोवरो, सरिताओ, वनो, उपवनो तथा पर्वत को लाघकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मरुत का उत्तम द्रव्य सचित था—(श्लोक १-६-अध्याय ६४) वहाँ से जो धन प्राप्त हुआ था वह सोलह करोड आठ लाख और चौबीस हजार भार सुवर्ण था](वही ६५ श्लोक २०)।

बील ने भी इगित किया है कि प्राचीनकाल से ही चीन अथवा चीन के पूर्वीय सीमा के जनपदो तथा उत्तरी भारत के बीच सास्कृतिक एव व्यापारिक घना सम्बन्ध बना हुआ था। यही कारण था कि चीनी यात्री ह्वेनसाग को स्थल-मार्ग से आने-जाने भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमा के बाहर के देशो में अनेक ऐसे स्थान मिले थे जो भारतीय धर्म (बौद्ध तथा ब्राह्मण आदि सम्प्रदाय), सस्कृति और व्यापार के केन्द्र थे।

ओ कि नि (O-ki ni = Akni or Agni) **अथवा यनकि** (yen-ki)—इस जनपद का वर्णन करते हुए ह्वेनसाग ने कहा है कि राजनगरी यन कि का घेरा

---

१ Watters, Vol I p 351

'Through Hiuen T'sang Harsha established diplomatic relations with China, several embassies being exchanged'—The shorter Cambridge History of India, Allan p 107

श्री मुखर्जी—Sea voyages were common We read of a Brahmin envoy sent by Harsha to China in A D 641—Harsha, p 178

छ सात ली[1] था। यहाँ दस से अधिक बौद्ध-विहार थे, जिन में दो हजार हीनयानी भिक्षु रहते थे। सूत्रों और विनय के सिद्धान्तों के अनुशीलन में वे भारत का अनुकरण करते थे और भारतीय ग्रन्थों से ही उन का अध्ययन भी करते थे। उन की लिपि भी थोड़े अन्तर के साथ भारतीय प्रकार की थी।[2]

अरन्यविहार यहा के विशाल-विहारों में स्थान रखता था। ई० सन ५८५ में भारत का महान बौद्ध पण्डित धर्मगुप्त चीन जाते समय इसी विहार में ठहरा था।[3]

कनिष्क (दूसरी शताब्दी ई० सन) के समकालीन और राजकवि अश्वघोष ने एक गाथा का उल्लेख करते हुए कहा है कि चीन के सम्राट का एक राजकुमार अपनी जन्मी आखों की चिकित्सा के लिए भारत आया था।[4] इस तथ्य से प्रकट है कि चीन का भारत के बीच धर्म और व्यापार के नाते ही नहीं, यहाँ की उन्नत चिकित्सा से लाभ उठाने के लिए भी आना-जाना होता था।

प्राचीनकाल में बल्ख—भारतीय-धर्म व संस्कृति का केन्द्र होने से 'कनिष्ठ राजगृह' नाम से प्रसिद्ध था। यहा पर लगभग सौ विहार थे जिन में तीन हजार भिक्षु रहते थे। इस प्रकार मगध के राजगृह की तरह बल्ख बौद्ध विहारों, भगवान बुद्ध की रत्नाभरणों से युक्त प्रतिमा और बुद्ध के अवशेषों आदि के सग्रहों से भरा-पूरा था।[5]

गज (Gaz) में लगभग दस बौद्ध-विहार थे जिन में दो सौ भिक्षु रहते थे। बामियान (Bamiyan) भी बौद्ध-धर्म का केन्द्र स्थान था जहाँ दस विहार

---

१ यन-कि नगर को वर्तमान करशहर (*Kara-shahr*) से मिलाया जाता है जो तेनगिज (Tenghiz) अथवा बगरश (Bagarash) झील के पास स्थित है (Records Vol. I, Beal p 17 fn 52)।

डा० स्वेन हेडिन (Dr Sven Hedin) ने लिखा है कि करशहर (काला नगर) यथार्थ ही मध्यएशिया के समस्त नगरों में सब से गन्दा है। फिर भी यह एक बड़ा नगर है और मध्यएशिया में चीनी तुर्किस्तान की मुख्य व्यापार-मण्डी है—(Through Asia, p 859 & Watters Vol I p 47 fn 2)।

२ Records Vol I, Beal p 18

३ Watters Vol I, p 53

४ Records, Beal p 57 fn 202

५ Life (Julien), p 64 Records Vol I.

थे जिन में एक हजार भिक्षु रहते थे। यहा की राजनगरी के उत्तर-पूरब मे एक पर्वत पर भगवान बुद्ध की लगभग एक सौ चालीस-पचास फीट ऊँची सुवर्ण वर्ण की प्रतिमा थी जिस के प्रभापूर्ण रत्नो से आँखें चौंधिया जाती थी। व्यापार का भी बामियान केन्द्र स्थान था।[१]

भारतीय धर्म, सस्कृति और व्यापार के साथ-साथ उत्तर-पश्चिम सीमान्त के बाह्य प्रदेशा मे साहसिक भारतीयो ने अपने राजवश भी स्थापित किए थे, जिस तरह दक्षिणी-समुद्र को पारकर जावा-सुमात्रा आदि द्वीपो मे भारतीय-राजवश स्थापित हुये।

कपिसा—जैसा कि ह्वेनसाग से ज्ञात है, बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मों का केन्द्र था। यहा लगभग सौ विहार थे जिन में छ हजार भिक्षु रहते थे, और देवमन्दिरो की सख्या दस थी। वहाँ के राजा को उस ने क्षत्रिय-वर्ण का बताया है।[२] चीनी यात्री के इस उल्लेख से प्रकट है कि भारत के क्षत्रिय-कुल के किसी साहसिक पुरुष ने वहाँ पहुँच कर अपना राज्य स्थापित कर दिया था।

हर्षचरित और मुख्यतया ह्वेनसाग से भारतीय नगरा और जनपदा की प्रभूत समृद्धि का जो विवरण हमें प्राप्त होता है उस का मुख्य कारण समुन्नत कृषि से अधिक भारत का स्थल और जल मार्ग द्वारा बाहरी देशो से प्रोन्नत व्यापार था।

हर्षचरित मे चीन-चोलक (सप्तम उच्छ्वास), चीनाशुक (चीन का बना रेशम—'चीनाशुक सुकुमार' (प्रथम, पचम और अष्टम उच्छ्वास, पृ० ६४ २९१ ४३३) और कार्दरङ्ग-चर्मों (कादरङ्ग द्वीप की बनी ढालें = कादरङ्गचर्मणा कार्दरङ्गदेशभवाना—भाष्यकार) का उल्लेख है।

---

१ Records, Beal p 49–51

२ कपिसा जनपद जुलिएन के अनुसार सम्भवतया कोहिस्तान के सीमान्त पर पञ्जशिर (Panjshir) और तगाओ (Tagao) की घाटी में पडता था और राजनगरी शायद निजरओ (Nijrao) या तगाओ की घाटी में स्थित थी—(Records, Beal p 54 fn 190)।

बौद्धो के अलावा कपिसा मे देवमन्दिरो में निग्रन्थ (दिगम्बर जैन), पाशुपत और कपालधारिण सम्प्रदाय के लगभग एक हजार साधु निवास करते थे (Ibid, p 55 fn 197)।

स्पष्ट है कि चीन-चोलक (यह राजकीय पोशाक थी,[1] जो कञ्चुक (भीतरी कोट) के ऊपर 'ओवर कोट' की तरह पहिना जाता था) और चीनांशुक चीन से आयात होते थे और कार्दरङ्ग-चर्म (अथवा ढालें, सप्तम उच्छ्वास) दक्षिण समुद्र के पार इण्डोनेशिया के किसी द्वीप से आयात किये जाते थे।[2]

बाहरी देशों से 'अश्वों' के आयात किए जाने का हर्षचरित में स्पष्ट इंगित है। सप्तम उच्छ्वास में उत्तरापथ देश के उत्तुङ्ग तुरगों (घोड़ों) तथा काम्बोज राष्ट्र के वाजियों (अश्वों) का हर्ष की अश्वसेना के सन्दर्भ में उल्लेख है। उत्तर देश के अश्व पवन-चाल में बहुत तेज होते थे लेकिन उन की पीठ हिलती नहीं थी (निश्चल रहती थी), जिस कारण उन पर आरूढ आरोही सुखपूर्वक सवारी करते थे।

बाण ने राजवल्लभ तुरङ्गों की मन्दुरा (अश्वशाला) में जिन विभिन्न देशों के अश्व देखे थे उन के नाम इस तरह गिना दिए हैं—वनायुजी (वनायु देश), काम्बोजी (काम्बोज के), आरट्टजी (आरट्ट देश के), भारद्वाजी (भारद्वाज देश के), सैन्धव (सिन्धु देशजं), और पारसीकी (पारसीक या ईरान) (द्वितीय उच्छ्वास)।

प्रकट है कि अश्व-सेना के हेतु तमाम इन देशों से अश्व क्रय किए जाते थे जो देश युद्धोपयोगी अश्वों के लिए सुप्रसिद्ध और सुपरिचित थे। यह भी सहज

---

१ 'Probably it was an over coat worn over all other outer drapery In the statue of emperor Kanishka we find that he is wearing a Kanchuka coat and over it a Chinacholaka as the upper dress, which has an open collar and buttonless front portion over the chest'—The Deeds of Harsha , pp 184–185

२ मञ्जुश्रीमूलकल्प (भाग दो, पृ० ३२२) में इण्डोनेशिया के नारिकेल, वारुक (सुमात्रा के पास बरोस), नग्नद्वीप (निकोबार), बलिद्वीप (बाली) और यव द्वीप (जावा) के साथ कर्पूरद्वीप का भी उल्लेख है—The Deeds of *Harsha , p 190 fn 1.*

सिल्वा लेवी और प्रबोधचन्द्र-बागची ने कार्दरंग को इण्डोनेशिया के द्वीपों के समूह का एक द्वीप बताया है जो चर्मरङ्ग नाम से भी प्रख्यात था (Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India, p 106)।

अनुमान किया जा सकता है कि विभिन्न देशों के अन्यान्य व्यापारियों की भाँति अश्व के व्यापारी स्वयं भी विक्रय के लिए अश्वों को लेकर भारत पहुँचा करते थे।[१]

हर्षचरित और ह्वेनसाग के विवरणों से ज्ञात होता है कि भारत के व्यापारी द्वीपों से अपने पण्य (बिक्री की वस्तुओं) द्वारा रत्न अर्जित कर भारत लाया करते थे। बाण ने सारे द्वीपों से अपने गुणों के लिए प्रशंसित रत्नराशि अर्जित करने वाले पुरुष (व्यापारी) का उल्लेख किया है।[२] दूसरे स्थल पर बाण ने सेनापति सिंहनाद की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कहा है कि 'अब्भ्रमण' (समुद्र-यात्रा) द्वारा श्री (सम्पदा-लक्ष्मी) को खींच लाने में वह मन्दराचल को भी मन्द कर देने (शिथिल कर देने) वाला था—

> 'अब्भ्रमणेनानादरश्रीसमाकर्षणविभ्रमेण मन्दरमपि मन्दयन्निव' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३४)।

ह्वेनसाग ने भी भारतीय व्यापार व व्यापारियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे अपने पण्य के बदले में समुद्र के द्वीपों से विभिन्न प्रकार के अमूल्य रत्नों व मणियों को अर्जित किया करते हैं। उस ने भारत में उत्पन्न होने वाले खनिजों में मुख्यतया सुवर्ण, चाँदी और ताँबा (काँसा ?) आदि धातुओं के नाम गिनाये हैं जिन की यहाँ प्रचुरता थी।[३]

---

१ कौटिल्य ने काम्बोज, सिन्धु, अरट्ट और वनायु देशों के अश्वों को उत्तम श्रेणी का, वाह्लीक, पापेय, सौवीर और तैतल देश के अश्वों को मध्यम श्रेणी का और शेष (अन्यान्य) देशों के अश्वों को साधारण (अवरा) बताया है—

> 'प्रयोग्यानामुत्तमा काम्बोजसैन्धवारट्टजवानायुजा। मध्यमा वाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतला। शेषा प्रत्यवरा'—(अधिकरण २, अध्याय ३०)।

२ 'द्वीपोपगीतगुणमपि समुपार्जितरत्नराशिसारमपि। पीन (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२७)।

३ 'Gold and silver, teou-shih (native copper, bronze), white jade, fire pearls (or amber तृणमणि), are the natural products of the country, there are besides these abundance of rare gems and various kinds of precious stones of different names, which are collected from the Islands of the Sea

द्वीपों से अपने पण्य के बदले में भारतीय व्यापारियों द्वारा रत्नो और मणियो का अर्जन करने का जो विवरण बाण और ह्वेनसाग ने दिया है, उस से प्रकट है कि भारत के उद्योग-धन्धे तब यथेष्ट रूप से प्रोन्नत थे और फलत भारत में विक्रय के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएँ तब बाहरी देशो एव द्वीपो को निर्यात होती थी।

हर्षचरित में भारत की अनेक विशिष्ट वस्तुओं का उल्लेख है जैसे—रत्नो से जडे विभिन्न लक्षणो वाले आभूषण, चूडामणि (शिर का आभूषण), क्षीरसमुद्र के जैसे धवल हार (सम्भवतया मुक्ताओ के), शरत कालीन चन्द्रमा के जैसे कान्ति वाले क्षौम वस्त्र, बेंत की करण्डिया (टोकरिया), सीप, शख आदि के बने चषक (मधुपान का पात्र), पक्षियों के बाल या रोएँ से भर कर बनाये गये तकिये, बेंत के बने आसन, काला अगरु और उस से बनाया गया तेल, चदन, कपूर, कस्तूरी, लवग (लौंग), जस्ते की कलसिया आदि।[1]

हर्षचरित में अनेक प्रकार के सूती व रेशमी-वस्त्रो का भी यत्र-तत्र उल्लेख है। जैसे अशुक (महीन रेशमी वस्त्र—अशुक चीन से भी भारत आता था जिसे 'चीनाशुक' कहते थे)—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६४ और अष्टम उच्छ्वास पृ० ४३३, 'चीनाशुकप्रपटी पयापरी'—नवम उच्छ्वास, पृ० २११), मुक्ताशुक (भाष्यकार के अनुसार यह वस्त्र मालवा में बनता था—मुक्ताम्प्रमशुक मालवदेशजमुत्तरीयम्, वही पृ० ४३४), नाम का रेशमी वस्त्र शायद मोतियों से जडा होता था[2] नेत्र नामक सुकुमार (कोमल) रेशमी वस्त्र, स्तवरक[3] (वस्त्रभेद—भाष्यकार, सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६७–३६८)। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर बाण ने लिखा है मण्डप स्तवरक वस्त्रों से छाये थे और स्तम्भ नेत्रपटो (रेशमी वस्त्रो) से वेष्टित थे (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४५), बादर (कपास के

These they exchange for other goods, and in fact they always barter in their commercial transactions—Records Vol I pp 89–90 fn 33 and Watters Vol I p 178

१ सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८७-३८८

२ The Deeds of Harsha p 232

३ प्रोफेसर अग्रवाल का अनुमान है कि स्तवरक वस्त्र ईरान में बनता था और वहाँ से भारत में उस का निर्यात होता था—Ibid, p, 184

सूत्री वस्त्र), दुकूल, लालातन्तुज (रेशमी वस्त्र, 'लालातन्तुजं कौशेयं'—भाष्यकार) आदि (वही), तथा मृगरोम से बने वस्त्र (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६२)।

ह्वेनसाग ने भी भारतीय वस्त्रों में कौशेय (जगली रेशम के कीडो से उत्पन्न), क्षौम (शाण या पटसन = hemp), हन (कोमल ऊन का वस्त्र), और होलालि (यह वस्त्र किसी जगली जानवर की ऊन या बालो से निर्मित किया जाता था)। यह ऊन बहुत सुन्दर और कोमल होती थी। उसे आसानी से काता जा सकता था और वस्त्र भी सरलता से निर्मित होता था। इस ऊन का वस्त्र बहुत मूल्यवान माना जाता था[1] (= सभवतया यह वस्त्र बाण द्वारा उल्लिखित 'मृगरोम' से निर्मित वस्त्र था)।

वस्त्रादि उद्योगो का उन्नति का एक मुख्य कारण था, सभी प्रकार के उद्योगो, व शिल्पियो का श्रेणियो मे गठित रहना। प्रत्येक उद्योग अथवा शिल्प की श्रेणिया अपने व्यवसाय को उन्नत करने के लिए सचेष्ट रहा करती थी। ह्वेनसाग ने अनेक 'मिश्रित जातियो' का उल्लेख किया है। वॉटरस के अनुसार वास्तव में शिल्पियो और कमकारो की श्रेणियो व समुदायो (निकाया) को ही ह्वेनसाग ने 'मिश्रित-जाति' कहा है। इन में बुनकरो, चर्मकार, शिकारी, मछुवाहे आदि शामिल थे।[2] बाण ने—'निकाया' (समूह या श्रेणी) का उल्लेख किया है (अनेकनाकनायकनिकायकामिनी—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३३)।

हर्षचरित मे बाण ने राजकुमारी राज्यश्री के विवाह के अवसर पर राजप्रासाद को सज्जित व चित्रित करने एव विवाह के लिए वेदिका बनवाने के लिए देश के कोने-कोने से 'शिल्पियो' व स्थापतियो (स्थापत्य कला के जानकर मिस्त्री लोग) के समुदाय अथवा श्रेणियो का आमत्रित किये जाने—सकलदशादिदयमानशिल्पिसार्थागमनम्, तथा वेदिका का निर्माण करने वाले सूत्रधारो (सूत्रधारै

१ Watters, Vol I p 148 और Reconrds Beal Vol I p 75

२ 'There are alss the mixed Castes, numerocous Claos formed by groups of people accorging to their kinds'—ह्वेनसाग के इस कथन पर टिप्पणी करते हुए वॉटरस लिखते हैं—The "mixed Castes" are properly not "Castes", but guilds and groups of low Craftsmen and workmen'—(Vol I pp 168–170)

स्थापित्रि —माघ्यवार) का सफेद फूलों, चन्दन व वस्त्रों से सत्कार किये जाने का वर्णन किया है—

'सितकुसुमविलेपनवसनसत्कृतं सूत्रधारं (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४२)।

बाण ने स्वर्णकारों के अध्यक्ष (हैरिक) सिन्धुषेण का भी उल्लेख किया है (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ७४)।

भारतीय समाज—जातियां —

भारतीय समाज के चार वर्णों का उल्लेख करते हुए ह्वेनसांग ने कहा है कि पहला वर्ण ब्राह्मणों (शुचि जीवन-यापन करने वाले "purely living") का था। वे अपने सिद्धान्तों का अनुकरण करने वाले एव सन्तोषी और धर्म-कर्म का पालन के साथ अनुसरण करने वाले थे (Watters Vol I p 168)।

ब्राह्मणों को, ह्वेनसांग ने लिखा है, सभी वर्णों और जातियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था और उन का देश में बहुत सम्मान था (Ibid p, 140)।

ब्राह्मणों के सन्दर्भ में ह्वेनसांग के कथन को मानों पुष्ट करते हुए बाण ने लिखा है कि देव हर्ष अपने को ब्राह्मणों का भृत्य मानता था।[1]

वर्णों में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था, जो राजाओं की जाति थी। अनेक पीढ़ियों से क्षत्रिय राज्य करते रहे हैं और उनके राज्य का ध्येय अनुकम्पा और औदार्य (कल्याण कार्य) रहा है (Ibid p 151)।

तीसरा वर्ण वैश्यों का था। ये व्यापारी थे और देश-विदेश में अपने पण्य द्वारा लाभ (धन) अर्जित करते थे।

चौथा वर्ण शूद्रों का था। वे कृषिकार्य में बड़े उद्यम के साथ रत रहा करते थे।

प्रत्येक वर्ण के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते थे। पिता और माता से सम्बन्धित कुलों के लोग परस्पर विवाह नहीं करते थे। स्त्रियां दूसरा विवाह न करती थीं (Ibid p 168)।

वर्णों के विभिन्न आचार और विवाह आदि पर प्रतिबन्ध होते हुए भी समाज के विभिन्न वर्णों व वर्गों के बीच पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध अ-प्रतिबन्धित था। विन्ध्याटवी में आटविक-प्रदेश (जंगली प्रदेश) के राजा शरभकेतु का

---

१ 'कर्मकर इति विप्रे'—द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२९

लडका व्याघ्रकेतु, शबर सेनापति भूकम्प के भानजे शबर युवक निर्घात को लेकर देव हर्ष से मिला था। निर्घात ने क्षिति-तल (भूमि पर) पर सिर टेक कर सम्राट को प्रणाम किया था और तीतर व खरहा (शशा) भेंट में अर्पित किया था। सम्राट ने शबर-युवक की भेंट का सम्मान किया था और स्वयं आदर के साथ उसे 'अङ्ग' (=भाई, थॉमस-कावेल न 'महाशय' अर्थ लिया है) सम्बोधित करते हुए अपनी बहिन के बारे में उस से पूछताछ की थी।[1] राज्यश्री से भेंट होने तक निर्घात सम्राट के साथ ही रहा और अन्त में जब सम्राट बहिन को खोज निकालने के बाद विन्ध्याटवी से लौटने लगे तो उन्होंने वसन (वस्त्र), अलकार (आभूषण) आदि से निर्घात को परितुष्ट कर विदा किया था।[2]

बाण स्वयं वेदज्ञ ब्राह्मणों के उच्चकुल के थे, लेकिन उस के बाल साथियों में हम पारशव भ्राता चन्द्रसेन और मातृसेन (ब्राह्मण पिता और शूद्रमाता की सन्तान पारशव कहे जाते थे), जाङ्गुलिक (गारुढी-विष उतारने वाले) मयूरक, तम्बोली (पान वाला) चंडक, ढोल (मृदंग) बजाने वाला जीमूत, कलाद (स्वर्ण-

---

१ 'निर्घातस्तु क्षितितलनिहितमौलि प्रणाममकरोत्। उपनिन्ये च तित्तिरिणा सह शशोपायनम्'।

अवनिपतिस्तु (सम्राट हर्ष) सम्मानयन्स्वयमेव तमप्राक्षीत्—'अङ्ग! अभिज्ञा यूयमस्य सर्वस्योद्देशस्य? विहारशीलाश्च दिवसप्वेतेषु भवन्त? सेनापतेर्वान्यस्य वा तदनुजीविन कस्यचिदुदाररूपा नारी न गता भवेद्दर्शनगोचरम्?'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१६)।

'Nirghata laid his head on the ground and made his obesiance and offered the patridge and hare as his present

The king respectfully asked him, "sir, you are acquainted with all this region, you love wandering at this season has a noble lady come within the general's sight or that of any of his attendants?"—(Hc C & T, p 232)

२ 'वसनालकारादिप्रदानपरितोषित विसृज्य निर्घातम्' अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४६०)।

कार = सुनार) चामीकर, हैरिक (स्वर्णकारों का अध्यक्ष = 'स्वर्णकार कलाद मुष्टिकरास्यन्धमहरि हैरिक = भाण्डकार) लिप्यकार, मिट्टी के खिलौने बनाने वाला कुमारदत्त, सैरन्ध्री, (प्रसाधिका, शृंगार करने वाली) कुरङ्गिका, संवाहिका (पैर दबाने वाली) केरलिका, नर्तकी हरिणी, पाराशर सन्यासी सुमति, क्षपणक (जैन-साधु) वीरदेव, शैव वक्रघोष, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष, मस्करी (परिव्राजक) ताम्र-चूड आदि के नाम उल्लिखित पाते हैं।[1] प्रकट है कि ये भिन्न विभिन्न जातियों, कर्मों (पेशों) और धर्मों के लोग थे—लेकिन सब साथ ही रहते थे।

स्त्रियों का स्थान—हर्षचरित से विदित होता है कि स्त्री-शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाता था। बाण ने राज्यश्री के सन्दर्भ में कहा है कि वह नृत्य और गीत आदि सकल-कलाओं में विदग्ध अथवा प्रवीण हो गयी थी—'राज्यश्री-रपि नृत्तगीतादिषु विदग्धासु'—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २३९)।

स्त्रियों को नृत्य, गान और चित्रकला की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। देव हर्ष के जन्म के अवसर पर राजमहिषियाँ भी, बाण लिखता है, बाहुपाशों को प्रसारित (फैला) कर नृत्य में कूद पड़ी थी— प्रसारितबाहुपाशा राजमहिष्य प्रारब्धनृत्ता विरेजुः' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२७)।

राज्यश्री के विवाह के अवसर पर, बाण ने सामन्त राजाओं की रूपवती पत्नी स्त्रियों द्वारा सुनने में मधुर (श्रुतिसुभगानि मङ्गलानि गायन्तीः) मंगल गीत गाये जाने तथा चित्र के आलेखन (बनाने) में कुशल कुछ राज-रानियों द्वारा धवलित (सफेद) कलशों और वर्चवर्ती मिट्टी की शरावजिरा (सुराहियों) पर पुष्प-लता आदि चित्रित किये जाने का उल्लेख किया है (वहीं पृ० २४३–२४४)।

सम्राट हर्ष की नाटिका रत्नावली में नायिका सागरिका (= रत्नावली) समुद्गक (रंगों की पटी), चित्रफलक (चित्र बनाने का फलक या पट), और तूलिका के साथ कदलीगृह में अपने प्रिय महाराज उदयन का चित्र बनाती दर्शायी गयी है (द्वितीय अङ्क)। प्रियदर्शिका नाटिका में राजा रानी को, सेविका प्रियदर्शिका को गीत, नृत्य और वाद्यों में शिक्षित करने का दायित्व सौंपते हुए दर्शाया गया है। देव हर्ष की नाटिकाओं में चित्र बनाने व सीखने के स्थान को 'चित्रशाला' और गायन के शिक्षण-केन्द्र को 'गान्धर्वशाला' कहा गया है।

इन कलाओं के साथ-साथ स्त्रियों को शास्त्रों (धर्म और दर्शन) की शिक्षा भी दी जाती थी। विन्ध्याटवी में निवास करने वाले श्रमणाचार्य दिवाकर-

---

1 प्रथम उच्छ्वास, पृ० ७४–७५।

मित्र को सम्राट ने इस आग्रह के साथ अपने साथ चलने को सहमत किया था कि वे धार्मिक कथाओ और कुशल उत्पन्न करने वाले उपदेशो, शील एव उपशम देने वाली शिक्षाओ तथा तथागत के दर्शन (धर्म के सिद्धान्त) से उनकी बहिन राज्यश्री को प्रतिबोधित (समझाते) करते रहेंगे—

> 'कथाभिश्च धर्म्याभि, कुशलप्रतिबोधविधायिभिरुपदेशैश्च दूरापसारितरजोभि, शीलोपशमदायिनीभिश्च देशनाभि, क्लेशप्रहाणहेतुभूतैश्च तथागतदर्शनै, अस्मात्पार्श्वोपयायिनीमेव प्रतिबोध्यमानामिच्छामि'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४५९)।

'लाईफ' मे उल्लेख है कि ह्वेनसाग जब सम्राट हर्ष के समक्ष धर्म पर व्याख्यान कर रहा था तो राज्यश्री अपने भाई के पास ही बैठी थी। यह उल्लेख राज्यश्री की धर्म-दर्शन मे रुचि और विदग्धता दर्शाने के साथ, इस बात का भी प्रमाण उपस्थित करता है कि उस समय स्त्रियो मे पर्दा की प्रथा नही थी। यह प्रथा भारत में वस्तुत मुस्लिम-शासको के समय में प्रचलित हुयी।

वैसे आचारवश कुलीन स्त्रियाँ घर से बाहर विचरण करने पर मुखावरण के लिए वदन पर अवगुण्ठनजालिका धारण किया करती थी—

मुखावरण कुलस्त्रीजनाचारो जालिका, (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६७-१६८)।

स्त्रियो का विवाह 'बाल-पन' मे आठ-नौ वर्ष की उम्र मे ही हो जाता था। राज्यश्री का विवाह सयानी होने से पूर्व ही हो गया था। स्त्री का विवाह, जैसा ह्वेनसाग ने कहा है, एक ही बार होता था। पति के मरने पर स्त्री विधवा का जीवन बिताती थी। कभी-कभी उच्चकुल की स्त्रियाँ पति के मरने पर अपने वियोग के दुःख का अन्त करने के लिए सती भी हो जाती थी। महाराज प्रभाकरवर्धन की मृत्यु आसन्न देख महारानी-यशोमति दुःख से आकुल होकर पति के मरने से पूर्व ही चितारोहण कर गयी थी। पति ग्रहवर्मा के मार दिये जाने के बाद राज्यश्री कान्यकुब्ज मे विन्ध्याटवी म जाकर अपने दुःखो का अन्त करने के लिए चिता में जलने को उद्यत हो चली थी, किन्तु तभी सौभाग्य से देव हर्ष आचार्य दिवाकरमित्र के साथ वहाँ पहुँच गये और राज्यश्री को चितारोहण से रोक दिया गया। गुप्तो के समय के एक अभिलेख के अनुसार, जिस की तिथि ई० सन् ५१० में पडती है, सम्राट् भानुगुप्त के सेनापति गोपराज के युद्ध मे मारे जाने पर उस की रूपवती सती स्त्री चिता में आरूढ हो स्वर्ग सिधार गयी थी। सती होने के इन सन्दर्भो से यह निष्कर्ष नही निकलता कि उस समय सती-प्रथा धार्मिक आस्था

के रूप में प्रचलित थी, जैसा हम भारत में मध्ययुग से अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में बंद किये जाने से पूर्व तक उस का प्रचलन पाते हैं। छठी-सातवीं शताब्दी के ऊपर उल्लिखित 'सती' के उदाहरण 'प्रथा' के नहीं स्वेच्छा के फल थे। हर्षचरित में उल्लेख है कि देव हर्ष ने जब अपनी माता यशोमती से निवेदन किया था—कि माँ तुम भी मुझ मंद-पुण्य वाले को त्याग रही हो। प्रसन्न हो, इस विचार को निवृत्त (छोड़) कर दो—'अम्ब ! त्वमपि मा मन्दपुण्य त्यजसि ? प्रसीद, निवर्तस्व'(पंचम उच्छ्वास, पृ० २८७), तो माता ने अनेक तरह से अपने प्रिय कुमार को समझाने के बाद अन्त में अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करते हुए कहा था—'मैं अविधवा रह कर ही मरना चाहती हूँ। विधवा रति की तरह मैं जले हुए पति के शोक में निरर्थक प्रलाप नहीं करना चाहती। तुम्हारे पिता की पादधूलि की तरह आकाश में उनके गमन को पहले ही सूचित करती हुयी सुर-अनुरागिणी देवाङ्गनाओं के आदर का पात्र बनूँगी। मरने से अधिक साहस का काम मेरा इस समय जीवित रहना है। कैलाश जैसे जीवेश्वर (पति) जब प्रयाण (मरने को ही) कर रहे हैं तो तुच्छ तृण के टुकड़े के जैसे जीवन के लिए लोभ की बात कहाँ घटती है ?—

> 'भर्तुमविधवैव वाञ्छामि। न च शक्नोमि दग्धस्य स्वभर्तुरार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकान्प्रलापान्कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलिरिव प्रथमं गगन-गमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि सुरानुरागिणीनां सुराङ्गनानाम्। मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम्। कैलासकल्पे प्रवसति जीवेश्वरे जरत्तृणलवलघीयसि जीविते लोभ इति क्व घटते ?—(पंचम उच्छ्वास, पृ०, २९१–२९२)।

राज्यश्री भी पति और पिता-माता एवं भाइयों के वियोग से आकुल-व्याकुल होकर ही चिता-रोहण को उद्यत हुयी थी, धार्मिक-प्रथा के बंधन या अनुशासन से नहीं। यदि सती-प्रथा ने तब धार्मिक-चलन का रूप ले लिया होता तो महारानी यशोमती पति के मरने के बाद ही उनके शव के साथ चितारोहण करती और राज्यश्री भी कान्यकुब्ज के कारागार से निकलने के तुरन्त बाद ही सती हो गयी होती। विन्ध्याटवी में एक बौद्ध-भिक्षु से अचानक भेंट होने पर राज्यश्री की सखियों में शोक से विह्वल एक स्त्री ने राजकुमारी (राज्यश्री) के अग्नि-प्रवेश की इच्छा का कारण बतलाते हुए उन से अनुरोध किया था कि इस का परित्राण कीजिये (ऐसा करने से रोकिये)—

'यत्र इय न स्वामिनीमरणेन पितुरभावेन भर्तुः प्रवासेन च भ्रातुः भ्रंशेन

च शोपस्य बान्धववर्गस्यातिमृदुहृदयतयानपत्यतया च निरवलम्बना, परिभवेन च नीचारातिकृतेन, प्रकृतिमनस्विनी, (अग्निं प्रविशति) 'परित्रायताम्'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४३८)।

इस उद्धरण से प्रकट है कि राज्यश्री स्वामी के विनाश, पिता के मरण, बधुओ के प्रवास (बिछुडने), निरावलम्ब (पुत्र न होने से), और शत्रु द्वारा किये गये पराभव से जनित दुख के कारण ही अग्नि में जलकर अपने दुखो का अन्त करने के लिये उद्यत हुयी थी—धार्मिक-प्रथा के कारण नही, जो तब उस समय तक सामान्य रूप से प्रचलन मे नही थी। इसीलिए अपने भाई को अपनी स्थिति का सवाद देने के लिए राज्यश्री ने प्रलाप करते हुए कहा था कि 'हे वायु जल्दी जाकर देवी के दाह (जलने) की बात सबके दुखो को हरने वाले देव हर्ष को पहुँचा दे और भाई को आया न देख, वे शोक को सबोधित करते हुए बोली थी—अत्यन्त निर्दयी श्वपाक (चाडाल) शोक तेरी कामना पूरी हो। दुख देने वाले वियोग के राक्षस, तू अब सतुष्ट हो (क्योकि भाई के न पहुँचने से वह अग्नि प्रवेश करने वाली है)—

'सवादय द्रुत देवीदाह देवाय दुखितजनार्तिहराय हर्षाय। नितान्तनिघृक शोकश्वपाक, सकामोऽसि। दुखदायिन्वियोगराक्षस, सन्तुष्टोऽसि' (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४४१)।

अत जब देव हर्ष आचार्य दिवाकरमित्र के साथ वहिन राज्यश्री के पास पहुँचे, तो राज्यश्री ने चितारोहण का विचार त्याग कर अपने मन का दुख प्रकट करते हुए कहा था कि 'स्त्रियो का पति और पुत्र ही अवलम्ब होता है' और इन दोनो से हीन के लिए दुख में जलते हुए जीना केवल धृष्टता है (व्यर्थ है), किन्तु—"आर्यागमनेन च कृतोऽपि प्रतिहतो मरणप्रयत्न"—आर्य के आगमन से मरने का प्रयत्न निष्फल हो गया (वही, पृ० ४५३)। प्रकट है कि राज्यश्री दुखाग्नि से त्राण पाने के लिए ही चिता मे जल मरना चाहती थी। सती होने की प्रथा के कारण नही।

स्त्री पुरुषों के वस्त्रालकार और प्रसाधन —ह्वेनसाग ने लिखा है कि भारतीयो के नीचे व उपर से पहिनने के वस्त्र काटे-सिले नही जाते थे। वे धवल (सफेद) वस्त्र पसन्द करते है, रगे और चित्रित नही। पुरुष नीचे तक एक परिधान पहिनते थे और कमर घेरकर (पेटी की तरह) एक वस्त्र हाथ की काँखो तक लपेट लेते थे और दाहिना कन्धा नगा रखते थे।

स्त्रियाँ एक लम्बा परिधान (कञ्चुक) धारण करती थीं जो स्कन्धों से लेकर टखनों तक लटका हुआ भूमि स्पर्श करता था। माथे पर के बालों को गाँठ कर छोटा-सा जूड़ा बना दिया जाता था, बाकी बाल खुले व लटके रहते थे।

बाण के अनुसार सिर पर आँवले का तेल लगाया जाता था—'तैलाम-लकमसृणितमौलि'—(तृतीय उच्छ्वास, पृ० १८५)।

पुरुषों में कोई मूँछ कटवा देते थे, और कुछ अन्य विभिन्न प्रकारों (रिवाजों = fashions या customs) का प्रयोग करते थे। सिर पर लोग उष्णीश (crowns) व पुष्पमाला और वदन पर रत्नों के हार धारण करते थे (Watters, Vol I p 148 और Records Vol p 75)।

हर्षचरित में बाण ने भी स्त्री-पुरुषों के वस्त्राभरणों का जो वर्णन किया है वह चीनी-यात्री के विवरण से साम्य रखता है।

बाण ने प्रथम उच्छ्वास में युवक दधीच और उस के सुभट सैनिकों का वर्णन करते हुए कहा है कि सुभट युवक कञ्चुक (लबादा) पहिने थे और सिर पर चादर की उत्तरीय (पगड़ी) बाँधे थे, कमर में दोहरे कपड़े की पट्टी बँधी थी तथा बायें हाथ की कलाई में वे सुवर्ण के कड़े पहिने थे—

वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३६-३७)।

इन सुभटों के नायक दधीच, सिर से नितम्बों तक लटकी मालती के कुसुमों की माला पहिने था। उस के घुँघराले बालों के गुच्छे बकुल (मौलसिरी) की कलियों की मनोहर मुण्डमाला से सज्जित थे। उस के सिर पर की शिखण्ड-खण्डिका (शिरोभूषण = भाष्यकार) पद्मराग मणि से जड़ी थी। कानों में उस के 'त्रिकण्टक-आभरण' था (वही, पृ० ३९—तीन रत्नों से—दो मोती और बीच में पन्ने से जटकर, बनाया गया कर्णाभूषण = रत्नत्रितयेन कृत त्रिकोणकण्टकाख्य कर्णाभरणम्—भाष्यकार)।

दधीच के साथ का वृद्ध पुरुष सफेद कञ्चुक (वारबाण) धारण किये था और सिर पर दुकूल-पट्टिका बाँधे था (धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टित-मौलि—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४३)।

हर्षचरित में बाण के पुस्तकवाचक सुदृष्टि को पुण्ड्र देश के बने पीत रेशम के दो परिधान धारण किए दर्शाया गया है (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १४५)।

बाण ने पुरुषों के युगल-वस्त्रों का नाम 'अधोवस्त्र' और 'उत्तरीय-वस्त्र' दिया है। कञ्चुक व वारबाण तो लम्बा कोट जैसा परिधान था जिसे सैनिक,

अभियान के अवसर पर धारण करते थे। वैसे सामान्यत पुरुष धोती (अधोवस्त्र) और चादर (उत्तरीय) धारण किया करते थे। साधारण लोगो के युगल-वस्त्र सामान्य और राज-पुरुषो व श्रेष्ठियो आदि के मूल्यवान होते थे।

देव हर्ष के परिधान का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि वे नेत्र-सूत्र-रेशम का अधोवस्त्र (धोती) पहिने थे जो उन के नितम्बो से लगा था। यह अधोवस्त्र अमृत के फेन के समान उज्ज्वल कान्ति वाला, वासुकि (नाग) की केंचुल के सदृश महीन और उन की मेखला (= रशना-करधनी) की मणियो से विकीर्ण होनेवाली मयूखो (किरणो) से खचित था।

ऊपर से धारण किया देव हर्ष का उत्तरीय (चादर) अतनु (झीना-महीन) तारा (तारा सूत्रबिन्दव) के जैसे सूत्रबिन्दुओ से कढा था (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२३–१२४)।[१]

---

१ 'He (Harsha) shone, like the mountain Mandara with Vasuki's skin, with his lower garment which was radiant with shot silk threads, clinging closely to his loins, ornamented with the rays of the jewels of his girdle, and white like a mass of ambrosial foam,—while he appeared girt with his thin upper garment spangled with worked stars—Hc C & T p 59

धोती (अधोवस्त्र) पहिनने के तरीके पर भी बाण ने प्रकाश डाला है। दधीच की धोती का वर्णन करते हुए हर्षचरित में कहा गया है कि 'वह हारीत पक्षी की तरह नीले (हरिता नीलेन—भाष्यकार) रग का कसकर बँधा हुआ अधोवस्त्र पहिने था, जो उसकी कमर को मध्य भाग से विभाजित कर रहा था, सामने की ओर नाभि से कुछ नीचे उस का एक कोना कमनीय ढग से खोसा था, धोती (अधोवस्त्र) का कच्छ भाग (पीछे का छोर) पीछे की ओर पल्ला खोसने के बाद भी थोडा ऊपर निकला था—सामने की तरफ धोती के पल्लो के छोर पैरो पर इस तरह लटक रहे थे कि दोनो ओर शरीर को मोडने पर दाहिनी जाँघ का त्रि-भाग (⅓ भाग) दीख पड जाता था—

'पुरस्तादीषदधोनाभिनिहितैककोणकमनीयेन पृष्ठत कक्ष्याधिकदीर्घ-पल्लवेनोभयत सवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपी-

दिग्विजय के अभियान के अवसर पर पूजा-अर्चन के समय भी देव हर्ष राजहंसमिथुन के चिह्नों से अंकित दुकूल वस्त्रों का जोड़ा (अधोवस्त्र और उत्तरीय) धारण किए थे—

'परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणी सदृशे दुकूले' (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३६०)।

वस्त्रों के साथ बाण ने सम्राट के आभरणों आदि का वर्णन करते हुए लिखा है कि देव हर्ष की ग्रीवा को परिवलित (परिवेष्टित = घेरे) करता हुआ मुक्ताओं का हार दण्ड कन्धों पर लटक रहा था जिस के मुक्ताओं से निःसृत किरणें उन के वक्षस्थल को प्रावृत किए हुए थीं (किरणें फैलकर उन के वक्ष पर छिटक रही थीं)—

हारदण्डेन परिवलितकन्धरम्। हारमुक्ताफलानां किरणनिकरेण प्रावृत-वक्षःस्थलम्।

चूडामणि की अरुण किरणों से उन का विशाल ललाट लोहित हो रहा था।

उन के कानों में मणियुक्त कुण्डल (कर्णाभरण) थे।

उन के सिर के केश की लटों को वेष्टित (घेरती) करती हुई उत्फुल्ल (खिले) मालती-पुष्पों की माला उनके मस्तक की परिधि अथवा प्रभामण्डल लगती थी—

'उत्फुल्लमालतीमयेन मुखशशिपरिवेषमण्डलेन परिकलित मुण्डमालागुणेन केशान्तम्'।

उन के सिर का शिरस्त्राण (शिरोभूषण=उष्णीष) मोती और मरकत मणि से सज्जित था (हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १०४–१२७)।

दर्शितनाभिरत्नानसा विलग्नमानतनुदरमध्यभागम्'—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४०)।

'His '(दधीच) slim waist was marked off by a tight-*drawn lower garment of Harita green, of which one cor*-ner was gracefully set in front a little below the navel and the hem hung over the girdle behind, and which on both sides was so girt *up as to display a third of his* thigh'—(Hc C & T. pp 17–18)

सातवें उच्छ्वास में बाण ने उल्लेख किया है कि दिग्विजय के लिए अभियान करने के अवसर पर देव हर्ष कानों में मरकत के कर्णाभरण, हाथ के प्रकोष्ठ (कलाई) में मंगलमय प्रतिसर या कङ्कण (प्रतिसर कङ्कणम्—भाष्यकार), और सिर पर शिव के चिह्नस्वरूप शशिकला के सदृश श्वेत-कुसुमों की मुण्ड-माला—'परमेश्वरचिह्नभूता शशिकलामिव कल्पयित्वा सितकुसुममुण्टमालिका शिरसि'—धारण किये थे (पृ० ३६०)।[1]

हर्षचरित के विवरण से प्रकट है कि राजाओं व विशिष्ट पुरुषों का उष्णीश अथवा शिखण्ड खण्डिका (शिरोभूषण) मूल्यवान रेशमी वस्त्र 'अंशुक' का होता था जिस पर मोती, मरकत व पद्मराग मणियां जड़ी रहती थीं। सामान्य पुरुषों की पगड़ी अथवा शिरोभूषण दुकूलपट्टिका अथवा सामान्य वस्त्र (चादर) की होती थी।

केशों पर लपेट कर धारण की जाने वाली मुण्टमालाएँ अनेक तरह के सुन्दर एवं सुगन्धित फूलों से तैयार की जाती थीं—जैसे मालती के फूल, बकुल (मौलसिरी) के कुड्मल (कलियों) और मल्लिका के कुसुम आदि। महाराज ग्रहवर्मन विवाह के अवसर पर मल्लिका के फूलों की माला धारण किए थे—'उत्फुल्ल-मल्लिकामुण्टमाला'—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४९)।

पुरुषों के आभरणों में हर्षचरित में हाथ के कड़े, हार, व कर्ण के आभरणों तथा रशना (करधनी) आदि का उल्लेख है।

सम्राट हर्ष के कर्णावतस (बालियाँ) मणियुक्त, और मरकत के थे। दधीच का कर्णाभरण मध्य में पन्ना जड़ा हुआ दो मुक्ताओं का था जिसे 'त्रिकण्टक' कहा गया है। सम्राट के महाप्रतिहार दौवारिक पारियात्र के कान के कुण्डल मणियों के थे—मणिकुण्डलाभ्या—(द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १०५)।

कुमार भण्डि के कर्ण-कुण्डल (बालियाँ) इन्द्रनीलमणि और त्रिकण्टक में पिरोई मुक्ताओं से युक्त था। हर्षचरित के विवरण से प्रतीत होता है 'त्रिकण्टक' बालियाँ पुरुष और स्त्रियाँ दोनों को विशेष रुचिकर थी। बाण ने राजरानियों के कानों में डोलती हुयी त्रिगलो वाली त्रिकटक बालियों का उल्लेख किया है

---

१ The king (देवहर्ष) had put on two seemly robes of bark silk *marked with pairs of flamingos, formed about his* head a chaplet of white flowers to be, like the moon's digit, a sign of the supreme (परमेश्वर=शिव)'—Ibid p 197

('विरलकम्बु स्तनस्थालिनी मैत्र मूरा—नाम्बरार—चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० ३२)।

आटविक (जंगली) युवक 'शबर' का वर्णन करते हुए बाण ने उस के कान का आभरण सुग्गे के पंख का और कलाई का कड़ा गोरोचमणि से जड़े रांगा का बताया है (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४२४)।

ऊपर दिए गये विवरण से प्रकट है कि कान, हाथ और गले में आभरण पहिनने का पुरुषों में भी आम रिवाज था, यद्यपि श्रेष्ठ और सामान्य पुरुषों के आभरण उन की स्थिति के अनुरूप बहुमूल्य व साधारण होते थे।

ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि क्षत्रिय और ब्राह्मण के परिधान शुचि और सुरुचिपूर्ण होते थे और वे सरल व मितव्ययिता का जीवन यापन करते थे। राजा और मन्त्री विभिन्न प्रकार के परिधान और आभरण धारण करते थे। बालों को वे फूलों से सजाते थे और रत्नों से जड़ा उष्णीष पहिना करते थे। वे कड़े और हार धारण करते थे।

सम्पन्न श्रेष्ठी सोने के कड़े पहिनते थे। इन में अधिकांश नंगे पैर चलते थे, पाहन (sandals) कोई-कोई प्रयुक्त करते थे। दांतों को वे लाल या काले रंग से रंग देते थे। बालों को बाँधकर जूड़ा बना देते थे और कान छिदवा देते थे (बालियां पहिनने के लिए), और नाक में आभूषण धारण करते थे।[1]

---

[1] The Kshattriyas and the Brahmans are cleanly and wholesome in their dress, and they live in a homely and frugal way. The King of the country and the great ministers wear garments and ornaments different in their character. They use flowers for decorating their hair, with gem-decked caps, they ornament themselves with bracelets and necklaces.

There are rich merchants who deal exclusively in gold trinkets (use only bracelets), and so on. They mostly go bare-footed, few wear sandals. They stain their teeth red or black, they bind up their hair and pierce their ears, they ornament their noses. Such is their appearance—(Records, Vol. I p 76)

ह्वेनसाग की तरह बाण ने भी पुरुषों की दाढ़ी-मूँछ के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकारो का उल्लेख किया है। हर्षचरित में दधीच के साथ के वृद्ध पुरुष के दाढ़ी-मूँछ साफ सुथरे कटे बताया गया है (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४३), और वृद्ध सेनापति सिंहनाद के पुष्ट शरीर का वर्णन करते हुये कहा गया है कि उस का भीम सदृश मुख (भीमेन मुखेन) के स्थूल गलगुच्छे उस के कपोलों पर छाये हुए थे, और उस की लम्बी झालरदार दाढ़ी (कूचकलाप) नाभि तक लटक रही थी (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३३२–३३४)।

स्त्रियों के वस्त्राभूषण और प्रसाधन

ह्वेनसाग ने स्त्रियो का परिधान कधो से लेकर पैरो के टखनो से नीचे भूमि तक लटकने वाला बताया है। हर्षचरित में स्त्रियो के परिधान का विवरण इस से साम्य रखता है। बाण ने मालती के परिधान, अलकार और प्रसाधन का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसका सारा शरीर धवल (सफेद) नेत्र नाम के रेशमी वस्त्र अशुक के, जो साप की केंचुल की तरह महीन था, कचुक से ढँका था और उसका दूसरा वस्त्र कुसुभी रग का पाटल (लाल) लहँगा पुलकमणि की जैसी बुदकियो मे अथवा रग-विरगी बुन्दकियो से चित्रित था—

> कञ्चुकेन तिरोहिततनुलता कुसुम्भरागपाटल पुलकबन्धचित्र चण्डातक-मन्त स्फुट—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५६)।

स्थाण्वीश्वर की स्त्रियाँ भी, बाण ने लिखा है, 'कञ्चुक' (कञ्चुकिन्यश्च) पहिना करती थी (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६६)। बाण ने अन्यत्र स्त्रियो के दोनो ओर के कधो से उत्तरीय अर्थात् चादर के झूलने का उल्लेख किया है—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२६)—और प्रथम उच्छ्वास में सरस्वती को दुकूल-वल्कल के उत्तरीय के अचल से हृदय को ढँकते हुये वर्णन किया है (हृदयमुत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन सछादयन्ती—पृ० ६०)।

प्रकट है कि स्त्रियाँ सामान्य रूप मे तीन परिधान—कञ्चुक, लहँगा और उत्तरीय धारण किया करती थी।

स्त्रियाँ अश्व की सवारियाँ भी करती थी और घर से बाहर विचरण करने जाने पर मुख पर अवगुण्ठन रखती थी। बाण ने प्रथम उच्छ्वास मे मालती को अतिमुक्तक (माधवी) के फूलो के स्तवको (गुच्छा) के जैसे कान्ति वाले, आयाल्युक्त ऊँचे तुरग (अश्व) पर रकाब पर नूपुर से युक्त चरण रखे ऐसे आरूढ़ बताया है जैसे गौरी (पार्वती) सिंह पर सवार रहती है—

स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तबकमिव मदार्द्रे महति मृगमदाविव गौरी तुरगमे स्थिता, सर्वोल्लसुगंधदारोपितचरणयुगलस्य (पृ० ५५-५६)।[1]

मालती का, बाण ने लिखा है, आधा वदन (मुख) नीले अंशुक (रेशम) की जाली से अवरुद्ध (ढँका) था (नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धार्धवदना—वही पृ० ५७)। अन्यत्र बाण ने राज्यश्री के मुख पर अरुण-अंशुक (लाल रेशम) के अवगुण्ठन का उल्लेख किया है (अरुणांशुकावगुण्ठितमुखी चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २५१)। यह अवगुण्ठन 'स्त्रियों' के आचार एवं शृंगार के रूप में लिया जाना चाहिए, पर्दा-प्रथा के लक्षण के रूप में नहीं। मालती बाहर घूमते समय अंशुक-जालिका धारण किये थी और राज्यश्री वधू-वेश में अवगुण्ठनमुखी थी।

हर्षचरित से प्रकट है कि स्त्रियाँ सिर, गले, कान, कलाई व कमर में अनेक प्रकार के भूषणालङ्कार धारण किया करती थीं। मालती के भूषणों का वर्णन करते हुये बाण ने लिखा है वह कटिप्रदेश (कमर) में घुँघरु वाली करधनी या मेखला पहिने थी,[2] गले में आँवले के जैसे बड़े मुक्ताओं का हार पहिने थी (हारेणामलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन), उस के वक्ष के कुच-कलशों (पीन स्तनों) पर रत्नों की प्रालम्ब माला लटक रही थी (कुचपूर्णकलशयोरुपरि रत्नप्रालम्ब-मालिका), उसके एक हाथ के प्रकोष्ठ (कलाई) में मरकत (रत्नों) से जड़े मकर-(ग्राह)-मुखी सोने का कड़ा था (प्रकोष्ठनिविष्टस्यैकस्य हाटककटकस्य मरकत-मकरवेदिकासनाथस्य), बायें कान में उस के नीलिमा से रँगा नीला दन्तपत्र था (नीलीरागनिहितनीलिम्ना दन्तपत्रेण), दोनों कान में बकुल-फल (मौलसिरी) के जैसे लम्बोतरे तीन मुक्ताओं (मोतियों) की बालिकाएँ ('बालिका कर्णाभरणेऽलङ्कार' भाष्यकार = बालियाँ) थीं, दाहिने कान में केतकी का नुकीला पत्ता (टाना) लटक रहा था, और सिर पर वह चूड़ामणि मकरिका पहिने थी (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५६–५८)।

---

१ प्रोफेसर अग्रवाल ने इंगित किया है कि पैरों के लिये रकाब की व्यवस्था केवल स्त्री-अश्वारोहियों के लिए रहती थी, और शिल्प में भी स्त्रियों को ही रकाबों में पैर टिकाये चित्रित किया गया है—The Deeds of Harsha, *pp 27–28*)

२ रसनया शिञ्जानजघनस्थलया—(शिञ्जान शब्दायमानम्—भाष्यकार, भाव यह है कि उस की रचना में घूँघर लगे थे जो चलने पर शब्द करते थे—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५६)।

स्थाण्वीश्वर की स्त्रियो का वर्णन करते हुये बाण ने, लाल मणियों के आभूपणो (पद्मरागिण्यश्च), तमालपत्र के कर्णावतस व कुण्डल, इन्द्रनीलमणि के नूपुरो आदि का उल्लेख किया है (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६६–१६८)। कान के पल्लव अवतम (भूषण) का बाण ने सरस्वती के सन्दर्भ मे भी उल्लेख किया है (अवतसपल्लवेन—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६०)। कर्णपूर के रूप मे कुसुमो को भी प्रयुक्त किया जाता था (गिरीपकुसुमस्तवककर्णपूरै —चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२७)। अन्यत्र भी हर्षचरित मे स्त्रियो के हार, कर्णोत्पल (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० १२८), पत्र अथवा पल्लव सयुक्त कुण्डल (पत्रकुण्डला), त्रिकण्टक-बालियाँ, मुक्ता की बालियाँ, मरकत के कर्णाभरण, नुपुर व हसक नुपुर (हसका नूपुरा =भाष्यकार), और स्वर्ण की करधनी (काञ्चन-काञ्ची) आदि का उल्लेख है (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१३–२२४–२२५–२५२)।

प्रसाधन-सामग्री—ललाट, केश, अधर, पैर के तलवो आदि को सजाने व मुख को सुवासित करने के लिए हर्षचरित में प्रसाधन-सामग्री का बहुलता से उल्लेख है।

मालती का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है, उस के माथे पर तमाल की भाति श्यामल कस्तूरी की गध मे सुवासित तिलक-बिन्दु (तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलक-बिन्दुना = तिलक-बिंदी) था, शिर के सीमन्त (माँग) मे ललाट पर चटुला तिलक नाम की मणि लटक रही थी, बालो का जूडा ढीला होने से पीठ पर लटका ऐसा लगता था मानो नील चँवर झूल रहा हो (पृष्ठप्रेङ्खनादरमयमनशिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावचूलिनीव), पाँव आलते से रजित थे (पिण्डलाक्तकेन), तलवो मे कुकुम लगा था। उसके पैरो के टखनो की लालकान्ति दोनो ओर प्रसारित (फैल) हो रही थी—

'कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितै',

मालती के साथ उस के पीछे एक बडे (महाप्रमाण) अश्व पर आरूढ ताम्बूल-करण्डक (करण्ड = कण्डी या टोकरी) वाहिनी भी साथ चल रही—ताम्बूल अथवा पान से अधरो को पाटल (लाल) किया जाता था (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५६–५९)। अन्यत्र बाण ने सम्राट हर्ष के अधरो का उल्लेख करते हुए कहा है कि उन का ओष्ठ ताम्बूल मे सिंदूर (सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३७०) की जैसी गहरी लाली से युक्त था पान से लाल अधरो का अन्यत्र भी उल्लेख है—ताम्बूलदिग्धरागान्धकाराधरप्रभापटपाटल (पचम उच्छ्वास, पृ० २८५)।

प्रसाधन की ये सामग्रियाँ उस समय सभी वर्ग की स्त्रियों में प्रचलित थीं। देव हर्ष के जन्मोत्सव पर नृत्य करने वाली राजरानियों व अन्य स्त्रियों के पैरों से आलता गिरने के कारण, बाण लिखता है, भूमि रागमयी की भांति अरुण (लाल) हो गयी थी—

पादालक्तकैररुणिता रागमयीव—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२७)।

पैरों पर आलता और माथे (ललाट) पर सिंदूर-रंग सौभाग्यवती स्त्रियों का मांगलिक प्रसाधन था। ललाट पर चंदन का टीका भी लगाया जाता था (चन्दनललाटकाभि, वहीं पृ० २२२)। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर सामन्तों की जो सती-साध्वी स्त्रियाँ उत्सव में भाग लेने आयी थीं सुन्दर परिधान पहिने और ललाट पर सिन्दूर-रज लगाये थीं—(सिन्दूररजोराजिविराजितललाटा—वहीं, पृ० २४४)। ललाट पर सिन्दूर एवं चन्दन आदि का टीका या तिलक लगाना प्रसाधन ही नहीं, मांगलिक भी माना जाता था (वहीं पृ० २२२–२२४)।

प्रसाधनों में मुखवास स्त्री तथा पुरुष दोनों समान रूप से प्रयुक्त करते थे। मुख से सुगन्धियुक्त सांस निकले, इस के लिए स्त्री-पुरुष सहकार (सुगन्ध-द्रव्य—आयकार), कक्कोल, लवङ्ग और पारिजात के परिमल से बना सुगन्धि-चूर्ण मुखवास के लिए काम में लाते थे। दधीच के मुख से उन्हीं सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध निःसृत होने का बाण ने उल्लेख किया है—

अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलमुचा मुखेन, (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३९)।

इस मुखवास के कारण ही बाण ने स्थाण्वीश्वर की स्त्रियों के मुख से सुगन्धित श्वासों से आकृष्ट भौरों का उल्लेख किया है—सुरभिनिःश्वासाकृष्ट मधुकरकुल (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६७)।

सहकार, कपूर और पारिजात के वनों में चरने तथा आम, चंपक, लवंग, इलायची आदि का उपभोग करने से, बाण ने लिखा है, सम्राट के हाथी दंतान्त के मदजल से चारों ओर सुगन्ध फैल रही थी (द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११२–११३)।

सम्राट हर्ष का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है, इन के मुख से मदिरा, अमृत और पारिजात से सुगन्धित श्वासें निःसृत होकर सर्वत्र फैल रही थीं—मदिरामृतपारिजातगन्धगर्भेण सरितमकरन्दकुसुमा (वहीं, पृ० १२५)।

स्थाण्वीश्वर की पवित्र वदनवाली (धवल दातो से पवित्र मुखवाली) स्त्रियो के मुख से भी मदिरा की सुगन्ध भरी श्वासें प्रवाहित होने का बाण ने उल्लेख किया है—

धवलद्विजशुचिवदनामदिरामोदिश्वसनाश्च—(द्विजैर्दन्तैः । शुचिवदना मदिरा-वन्मदिरयैव वा। आमोदी श्वसनो मुखमारुतो यासा,—भाष्यकार, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १६६)।[१]

हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास मे बाण ने सुगन्धित द्रव्यो से भरी लाल थैलियो (पारिजातपरिमलानि पाटलानि पाटल्कानि) और सिन्दूरपात्रो (सिन्होरो) का उल्लेख किया है (पृ० २२१) और आगे राज्यश्री के निश्वास के परिमल से भौरा के आकृष्ट होने का वर्णन दिया है—निश्वासपरिमलाकृष्टमधुकरकुला (पृ० २५१)।

मुख की तरह शरीर को सुवासित करने के लिए स्नान करने के पानी, और शिर पर पहिनने की कुसुमो की माला पर स्नानीय (सुगन्धित) चूर्ण मिला या छिडक दिया जाता था (स्नानीयचूर्णावकीर्णकुसुमा सुमनस्रज, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२१)।

सुवासित करने के लिए शरीर के अगो को कस्तूरी, कपूर और चन्दन से चर्चित कर दिया जाता था। दधीच की रूपाकृति का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि उस के भुजयुगल (दोनो हाथ) कस्तूरी के पक से बनी पत्ररेखाओ से भासित (चमक) थे—

'आमोदिनमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्',

उस का वक्ष कर्पूर (कपूर) के मुट्ठियों भरे (= विपुल) चूर्ण से धूसरित था—कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपाण्डुलेनेव (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ३९)।

वारविलासिनियों (पण्यविलासिन्य) के प्रसग में भी हर्षचरित में उन्हें मुष्टि-प्रमाण (भरकर) कर्पूर की धूल से ऐसा धूसरित बताया गया है मानो वे यौवन के लिये स्वेच्छा से सचरण करने की गलियाँ हो।[२]

---

१ 'Their faces are brilliant with white teeth (or with faces pure as Brahmans), yet is their breath perfumed with the fragrance of wine (Hc C & T pp 82–83 fn 1)

२ 'मुष्टिप्रकीर्यमाणकर्पूरपटवासपासुला मनोरथसचरणरथ्या इव यौवनस्य'—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२५)।

दधीच के वर्णन में कहा गया है कि चन्दन के चार (मुदर) चन्द्रमा (अंगों = भागों) में उस के वक्ष (जाँघ) की कान्ति निखर उठी थी—

'या चन्दन धवलकम्बूरुरकान्ति' (प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४०)।

आगे बाण ने मालती के साथ की ताम्बूल-वाहिनी के वर्णन का वर्णन करते हुए उस की देह चन्द्रमा के समान बताते हुए कहा है कि उस की साँसों में बकुलमुगन्धि (मौलसिरी के पुष्प की गन्ध) निकल रही थी— बकुलमुगन्धिनि श्वसितेन चन्द्रकावदातदेहया (वही, पृ० ..)। प्रकट है कि बकुल के परिमल के चूर्ण से उस ने अपने बदन का सुवासित कर रखा था।

कुसुमों के परिमल के अनुराग के कारण ही बाण ने गान्धर्वी का पुष्पों की गन्ध में ऐसी मनोहर कहा है मानो वह काम के हृदय में निरत (निकली) हो—'कुसुमामोदमनोहारिणी कामहृदयादिव निर्गताम्' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१२)।

प्रकट है कि कुसुमों के आमोद के कारण ही बाण ने गान्धर्वी की प्रभा, लावण्य, मद और माधुर्य के साथ "सौरभ" गुण से भी युक्त कहा है—

'प्रभालावण्यमदसौरभमाधुर्य' (वही, पृ० २१२)।

पुष्पों के परिमल से बनाये गये अंगराग के चूर्ण को ही शायद बाण ने 'कुङ्कुमवृष्टि' कहा है। उस ने लिखा है कि वारविलासिनियाँ कुङ्कुम में सने अङ्गों के कारण कश्मीर की किशोरियों (नववधुओं) की तरह सजा रही थीं (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २२४)।

सती होने के लिए प्रस्तुत यशोमति के अङ्गराग का उल्लेख करते हुए बाण ने लिखा है, उस (यशोमति) के अंगों में कुङ्कुम का सरस अंगराग ऐसा लगता था मानो जलने के लिए चिता की अग्नि उसे कवलित कर रही थी—

'सरसकुङ्कुमाङ्गरागतया कवलितामिव चिताग्निना चिताचिह्नता' (पंचम उच्छ्वास, पृ० २८६)।

ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि भारतीय चन्दन और केसर (कुङ्कुम) जैसे सुगन्धित द्रव्यों का चूर्ण अपने शरीर पर मला करते हैं।[1]

---

[1] ...'they smear their bodies with scented unguents such as sandal and saffron'—Watters, Vol I p 152 Records, Beal Vol. I p 77

विवाह पद्धति—हर्षचरित में बाण ने राज्यश्री और मौखरी-राज ग्रहवर्मा के प्रणय प्रकरण में कन्यादान के प्रसंग से लेकर वर-वधू के सोहगरात हेतु वासगृह तक प्रविष्ट होने तक का वर्णन दिया है। यह विवरण भारतीय विवाह-पद्धति का मनोहर और यथार्थ चित्र उपस्थित करता है।

मौखरी-राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा ने राज्यश्री से विवाह करने का प्रस्ताव अपने प्रधान दूत-पुरुष के हाथ महाराज प्रभाकरवर्धन के पास भेजा था। महाराज ने इस प्रस्ताव की चर्चा पहले अपनी महारानी यशोमति से की, और उन की सहमति के बाद राज्यश्री का ग्रहवर्मा से विवाह करने का अपना निश्चय अपने दोनों पुत्रों (राज्यवर्धन और हर्षवर्धन) को बताया। इस के बाद महाराज ने समस्त राजकुल की उपस्थिति में ग्रहवर्मा के दूत-पुरुष के हाथ पर कन्यादान का जल गिराया—

'सर्वराजकुलसमक्षं दुहितृदानजलमपातयत्'—(चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४१–२४२)।

विवाह के दिन समीप आने पर सजेधजे सब लोगों को पान के बीड़े, सुगन्धि और फूल बांटे गये। राजप्रासाद को सुधारस (चूने) से धवलित और मांगलिक चिन्हों से सज्जित किया गया।

सफेद-फूल चन्दन के लेप और वसनों से सत्कृत (आदर प्राप्त) सूत्रधारों (मिस्त्रियों) ने (विधि अनुसार) सूत से नाप-जोख कर विवाह की वेदी निर्मित की—

'सितकुसुमविलेपनवसनसत्कृतैः सूत्रधारैरादीयमानविवाहवेदीसूत्रपातम्' —(वही पृ० २४२)।

विवाह की वेदी के खम्भों को आरोपित (खड़ा) किया गया। खम्भों को आतपण (आतपण पिष्टम्=भाप्यरार) की गीली पीठी से थापा (या छापा) गया, और अलता के रंग से रंगे पाटलवस्त्रों से आच्छादित कर उन के शिखरों को आम व अशोक के पल्लवों से सजा दिया गया—

आतर्पणहस्तान्विन्यस्तालक्तकपाटलाश्च चूताशोकपल्लवलाञ्छितशिखरानुद्वाहवितर्दिकास्तम्भानुत्तम्भयद्भिः' (वही पृ० २४३)।

सौभाग्यवती स्त्रियां द्वारा, जो सुन्दर वेश धारण किये और सिंदूर लगाये थीं, वर-वधू के गात्र-नाम ले-लेकर मंगल गीत गाये जाने लगे। चित्रकारी में कुशल स्त्रियाँ विवाह के काम में प्रयुक्त होने वाले धवल कलशों और शीतल-धाराजिरों (बिना पकायी मिट्टी के बासन=सुराहियां) को फूल-पत्तियों से चित्रित करने में

जुट गयी, कुछ स्त्रियां बांस की करण्डिया (टोकरियों) के लिए रुई के रंगे गुल्ले में धागे तैयार करने में लगी थीं ताकि टोकरी के छिद्र भर (पूरे) जाय, कुछ ब्याह के कामों के लिए ऊन की लच्छियां रंगने में लगी थीं, कुछ बलाशना (औषधि पुष्प) के रस (घृत) में कुङ्कुम (केसर=saffron) मिलाकर उबटन तैयार कर रही थीं। रजक कपड़े रंग रहे थे। विवाह के अवसर पर बने मण्डप स्तबक वस्त्रों से और स्तम्भ चित्रित नेत्र वस्त्रों (सुकुमार रेशम=जाफ) से आच्छादित कर दिये गए थे।

विवाह के लिए निश्चित लग्न पर जामाता ग्रहवर्मा नक्षत्रमाला नामक आभरण से सुसज्जित हथिनी पर चढ़कर आया। उस के आगे चारण ताल के साथ गायन कर रहे थे। वर ग्रहवर्मा का सिर मल्लिका की मुण्डमाला से आवेष्टित था और ललाट पर कुसुम-शेखर था।

वर की आवानी के लिए महाराज प्रभाकरवर्धन दोनों राजकुमारों के साथ पैदल द्वार पर पहुँचे। नमन करते हुए ग्रहवर्मा को महाराज ने भुजाएँ फैलाकर आलिंगन किया—'प्रसारितभुजो गाढमालिलिङ्ग', फिर क्रम से—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन गले मिले और तब महाराज जामाता का हाथ पकड़ कर उन्हें भीतर ले गये—हस्ते गृहीत्वाभ्यन्तर निन्ये।

लग्न का समय पहुँचने पर जामाता ने अन्तःपुर के कौतुक-गृह (विवाह उत्सव स्थान) में प्रवेश किया। वहाँ उस ने सखियों और स्वजन स्त्रियों से घिरी वधू राज्यश्री को देखा। वधू लाल अंशुक का घूँघट काढ़े थी। कोहबर में पहुँचकर परिहास में स्त्रियों ने जामाता ग्रहवर्मा को जो-जो करने को कहा वही उसने किया। फिर ग्रहवर्मा वधू का हाथ पकड़े बाहर निकला और वेदिका के पास पहुँचा। वेदी के चारों ओर पास में पांचमुखी चांदी के कलश रखे थे और मङ्गलार्थ फल हाथ में लिए मिट्टी की मूर्तियां स्थित थीं।

वेदिका पर अग्नि प्रज्वलित कर दी गयी थी, और समीप ही हरे-हरे लम्बे कुश रखे थे। नये सूपों में रखे शमी के हरे पत्तों और लाजों (लावा) से वेदी हँस सी रही थी—(शमीपलाशमिश्रलाजहासिनी वेदीम्)।

अश्मारोहण के लिए शिल, कृष्ण मृगचर्म, घृत, सुवा और समिधाएँ वेदी पर रखी थीं।

ग्रहवर्मा वधू राज्यश्री के साथ वेदी पर चढ़े और लाल लिपटों से प्रज्वलित अग्नि के पास आये। हवन के पश्चात् अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा

(भावरें) की, और-अग्नि में लाजाञ्जलियाँ (लाजा की अञ्जलियाँ) गिरायी—'पात्यमाने च लाजाञ्जालौ'।

विवाह की विधि सम्पन्न होने पर जामाता ग्रहवर्मा ने वधू राज्यश्री के साथ सास-श्वसुर को प्रणाम किया—

'परिसमापितवैवाहिक क्रियाकलापस्तु जामाता वध्वा सम प्रणनाम श्वशुरौ,

और तब वास-गृह (शयन-कक्ष) में प्रविष्ट हुए जिस के द्वारों के पार्श्वों (द्वारपक्ष, पक्ष पार्श्वम्—भाष्यकार) पर प्रीति और रति के चित्र बने थे। वासगृह मंगलप्रदीपों से प्रकाशित था। गृह के एक ओर (भित्ति) रक्ताशोक के नीचे धनुष-बाण लिए तिरछी ऐंची मिचमिचाती आँखों से निशाना साधे कामदेव (प्रीति और रति का पति) का चित्र बना था। वासगृह में शयन-पट (पलग) बिछा था जो धवलपट या चादर से ढँका था (आस्तीर्णेन शयनेन शोभमानम्) और सिरहाने तकिया रखा था।

मंगल अथवा कल्याणार्थ शयन-पट के एक पार्श्व में काञ्चन की (पानी भरी) झारी थी और दूसरे पार्श्व में हाथीदाँत की डिबिया हाथ में लिए कनकपुतली (कनकपुत्रिकया) थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी अवतार लिए कमलदण्ड (दण्डपुण्डरीक) हाथ में उठाये खड़ी हो। शयन (पलंग) के शिरोभाग पर कुमुदो (कमल पुष्पों) से शोभित रजत (चाँदी) का निद्राकलश (night bowl) विराज रहा (रखा) था, मानो चन्द्रमा कुसुमायुध (कुसुमों के देवता=कामदेव) का सहयोगी बनने को वहाँ आ गया हो—

> शयनशिरोभागस्थितेन च कृतकुमुदशोभेन कुसुमायुधसाहाय्यकायागतेन शशिनेव निद्राकलशेन राजतेन विराजमानं'—('At the bed's head stood a night bowl of silver bedecked with lotuses, like the moon come to join company with the flowery god' Hc C & T p 131)

वासगृह में मुख फेरे सोयी (पराङ्मुख प्रसुप्ताया) नववधू (राज्यश्री) के मुख के प्रतिबिम्बों को मणिभित्तियों में लगे दर्पणों में देखते हुए वर (ग्रहवर्मा) ने रात बिता दी। दर्पणों में झलकते वे प्रतिबिम्ब मानो कुलदेवियाँ थी जो मणि के गवाक्षों (Jewelled loopholes) से कौतूहलवश प्रणयियों (वर-वधू) के प्रथम आलाप (पहली मुलाकात की बातें) सुनने वहाँ चली आयी थी—

तत्र च ह्रीताया नववधुकाया पराङ्मुखप्रसुप्ताया मणिभित्तिदर्पणेषु

मुखप्रतिबिम्बानि प्रथमालापाकर्णनकौतुकागतगृहदेवतानननानीव मणिगवाक्षकेषु वीक्षमाण'

जामाता ग्रहवर्मा दस दिन तक अपनी नयी माता (सास) के हृदय पर अपने शील की अमृतवर्षा करता रहा (शीलेनामृतमिव स्वश्रूहृदये वर्षन्ननिनवामिनवोपचारैरुपपुनरुक्तान्यानन्दमयानि दश दिनानि), और तब दहेज सामग्री के साथ सब के हृदयों को भी साथ लेकर महाराज से किसी तरह विदा ले उस ने वधू के साथ अपने देश के लिए प्रस्थान किया—

'सम्वलान्यादाय हृदयानि सर्वलोकस्य कथंकथमपि विसर्जितो नृपेण वध्वा सह स्वदेशमगमदिति'।[1]

स्त्रियों का विवाह जैसा कि ह्वेनसाग ने उल्लेख किया है, एक ही बार होता था। इसीलिए हर्षचरित में गजसाधनाधिकृत सामन्त महाराज स्कन्दगुप्त की स्वामिभक्ति का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि कुलाङ्गना के समान एक ही पति में निश्चल भक्ति रखनेवाली के समान उसे अपने प्रभु (देवहर्ष) का प्रसाद (प्रसन्नता) प्राप्त था—एकभर्तृभक्तिनिश्चला कुलाङ्गनामिव प्रभुप्रसादभूमिमारूढ (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५०)।

भारतीय भोज्य-पदार्थ—ह्वेनसाग ने लिखा है कि दूध, घी (मक्खन), शक्कर, खाँड, सरसों का तेल और गेहूँ की रोटियाँ आदि सामान्यत भारतीयों के पेय और खाद्य पदार्थ हैं।

मछली, हिरण और भेंड आदि का मास ताजा ही खाया जाता है। साढ, गदर्भ, हाथी, अश्व, सुअर, कुत्ता, लोमडी, भेडिया, सिंह बन्दर आदि का मास वर्जित है। जो इन का मास खाते थे उन्हें निकृष्ट समझा जाता और उन्हें नगर के बाहर रहना होता था।[2]

व्यक्तिगत शुचिता का भारतीय, ह्वेनसाग ने लिखा है, बहुत ध्यान रखते हैं। भोजन पर बैठने से पूर्व वे नहा-धो लेते हैं और भोजन के बाद बचा हुआ खाना दुबारा नही खाया जाता। एक दूसरे की थाली को वे स्पर्श नहीं करते।

---

१ हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २४०–२५५ Hc C & T, pp 122–131

२ Records , Beal Vol I p 89, Watters , Vol I p 178

भोजन के लिए प्रयुक्त काष्ठ या मिट्टी का बर्तन उपयोग करने के बाद फेंक (नष्ट) दिया जाता था। रजत, सुवर्ण, ताम्र और लोहे के बर्तन प्रत्येक बार भोजन करने के बाद अच्छी तरह से धो पोंछ लिए जाते थे।

भोजन के बाद सींक से दांतों को साफ किया जाता था और हाथ-मुँह धो लिया जाता था और मुँह हाथ धोने तक वे एक-दूसरे को नही छूते थे (Records Vol I p 77 Watters Vol I 152)।

भोजन हाथ से किया जाता था। वे चम्मच आदि का प्रयोग नही करते थे। केवल बीमारी की अवस्था में खाने के लिए ताँबे के चम्मचों का प्रयोग किया जाता था (Watters, Vol I p 178 and Records Vol I, p 89)।

राजा के स्नान करने के अवसर पर वाद्ययन्त्रों के साथ गायन होता था। लाइफ के विवरण से हमें यह भी ज्ञात है कि शीलादित्य-राज (देवहर्ष) जब यात्रा पर गमन करते थे तो हर कदम पर आगे आगे वादक वृन्दों का समूह सुवर्णमण्डित ढोल पर चोट दिया करता अर्थात् डंका बजाया करता था (Life p 173)। देवताओं की पूजा अर्चना करने से पूर्व भारतीय नहा-धो (पवित्र होने के लिए) लेते थे।[१] हर बार लघु-शंका (पेशाब) के बाद भी वे प्रक्षालन (धोना) कर लिया करते थे (they always wash after urinating—Watters Vol I p 152)।

पारस्परिक अभिवादन के प्रकार—ह्वेनसांग ने भारतीयों के अभिवादनों के प्रकारों का भी विस्तार में वर्णन किया है। उस के अभिवादनों का विवरण इस प्रकार है —

(1) कुशल-क्षेम के साथ अभिवादन
(2) सश्रद्धा मस्तक झुकाकर प्रणाम
(3) शरीर झुका कर हाथों को मस्तक पर जोड़कर प्रणाम
(4) वक्ष पर हाथ बाँध कर मस्तक झुकाना
(5) एक घुटने को झुकाकर प्रणाम

---

१ 'When the king washes they strike the drums and sing hymns to the sound of musical instruments Before offering their religious service and petitions, they wash and bathe themselves'

Records Vol I p 77 and Watters Vol I p 152

(6) दोनों घुटनों पर झुककर प्रणाम
(7) भूमि पर हाथ-पांव टेक कर अभिवादन
(8) घुटनों पर झुककर कोहनी और मस्तक भूमि पर टेक कर (पांचों अंग से भूमि को स्पर्श कर) अभिवादन
(9) भूमि पर (पाँचों अंगों से) पसर कर—साष्टांग दण्डवत्

राजा को प्रणाम करते समय अभिवादन कर्ता उसके पांव और टखनों का भी स्पर्श करता था।

अभिजात वर्ग के लोग जिनका अभिवादन किया जाता था, अभिवादन करने वाले से मधुर वाणी में बात करता, और उसके सिर व पीठ को थपथपा देता था।

बौद्ध भिक्षु अभिवादन करने वाले को केवल स्वस्ति वचन कहते थे।

केवल घुटनों के बल झुककर ही पूजा (दिव्य अर्चना) नहीं की जाती। बल्कि पूज्य (देवता व पूजनीय चैत्यस्तूप आदि) की एक या तीन बार अथवा जितनी बार की किसी ने मनौती मान रखी हो उतनी बार प्रदक्षिणा की जाती है।[1]

आदरणीयों, गुरु, आचार्य आदि के प्रति विनय प्रदर्शन, हर्षचरित में प्रभावशाली अथवा महान् लोगों का 'अलंकार' कहा गया है और विनय के सामने रत्नाभूषणों को मात्र शिलाभार—

'अल्कारो हि परमार्थतः प्रभवता प्रश्रयातिशय, रत्नादिकस्तु शिला-भार'—(अष्टम उच्छ्वास पृ० ४२७)।

हर्षचरित में उल्लेख है कि परमशैव तपस्वी भैरवाचार्य का एक सन्यासी शिष्य जब महाराज पुष्यभूति से भेंट करने पहुँचा तो राजा ने आदर के वचनों के साथ उसका स्वागत किया और उसे आसन पर आसीन (बैठाने) करने के बाद उससे बातें की थीं—

---

१ Kneeling is not the only way of doing worship Many circumambulate any object of reverential service, making one circuit or three circuits, or as many as they wish if they have a special request in mind—Watters, Vol I p 173

'क्षितिपतिरप्युगतमुचितेन चैनमादरेणान्वग्रहीत् आसीन च प्रप्रच्छ'—(तृतीय उच्छ्वास पृ० १७३),

और सन्यासी ने राजा को सादर 'महाभाग' कह कर सम्बोधित किया।

आचार्य एव तपस्वी को विनय के साथ राजा 'भगवान्' या 'भगवन्' कह-कर सम्बोधित करते थे। आचार्य भैरवाचार्य जब राजा से मिले तो उन्होंने गम्भीर वाणी में 'स्वस्ति' शब्द से राजा का अभिवादन किया था—

'गङ्गाप्रवाहह्रादगम्भीरया गिरा स्वस्तिश दमकरोत्'—

और राजा ने आचार्य को दूर से (देखने पर) ही झुक कर प्रणाम किया था—'दूरावनत प्रणामभिनव चकार',

आचार्य ने जब महाराज पुष्यभूति को अपने व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठने को कहा था तो उन्होंने विनयपूर्वक उत्तर दिया था कि गुरु के समान ही यह (गुरु का) आसन माननीय एव उल्लघन के योग्य नही है, और तब अपने परिजन द्वारा लाये वस्त्र (आसन) पर ही आसीन हुये थे—

'माननीय च गुरुवन्नोरलङ्घनमहति गुरोरासनम्',

और आचार्य भैरवाचार्य जब महाराज पुष्यभूति से मिलने राजकुल पहुँचे थे तो महाराज ने विनय प्रदर्शित करते हुये—अन्त पुर, परिजन और कोष सहित अपने आपको उन्हे अर्पित किया था—

तस्मै च राजा सान्त पुर सपरिजन सकोपमात्मान निवेदितवान् (वही, पृ० १७९–१८१)।

देव हर्ष भी जब विंध्याटवी में आचार्य दिवाकरमित्र से मिले थे, तो उन्होने उन्हे भगवान् और भदन्द शब्दो से सबोधित किया और विनयपूर्वक आचार्य के आसन पर बैठना स्वीकार नही किया था और उनके सामने भूमि पर ही विराजे थे, और विनय प्रकट करते हुए कहा था कि 'मुझे आसन आदि देने का उपचार मुझे पृथक् करने के समान है—

'परकरणमिवासनादिदानोपचारचेष्टितम्। क्षिताववोपाविशत'—(अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४२६–४२७)।

आचार्य, सन्यासी व भिक्षु आदि राजा को 'तात्', 'धीमन्' व 'महाभाग' जैसे शब्दो से अभिवादन करते थे (तृतीय उच्छ्वास, पृ० १८० और अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४३०–४३१)।

हर्षचरित के विवरणानुसार छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष अभिवादन के लिए जिन विभिन्न प्रकार के सम्बोधनों का प्रयोग करते थे वे इस प्रकार हैं—भद्र[1] (माननीय पुरुषों को), आयुष्मन् (गुरु शिष्य के लिए या बड़ा अपने से छोटे के लिए), महानुभाव (अभिजात वर्गीय पुरुष के लिए), महानुभावा व भद्रे, (कुलीन स्त्री के लिए), सामान्य स्त्रियों के लिए—

> आयुष्मति, कल्याणिनि, पुण्यमति, आर्ये[2] (वृद्धाओं के लिए), आदि अभिनन्दन के शब्द थे (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४२६–४३७)।

कुलीन पुरुष को आर्य और कुलीन स्त्रियों को 'आर्या' शब्द से अभिवादित किया जाता था—(आर्य, करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना—आर्य ज्वरस्य ही आराधना करने पर आर्या प्रसन्न होगी—प्रथम उच्छ्वास, पृ० ४९–५०)।

कुमार हर्ष अपने ज्येष्ठ भ्राता को 'आर्य' शब्द से सम्बोधित करते थे, और राज्यवर्धन अपने छोटे भाई को 'आयुष्मन्' शब्द से—(षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३१८–३२४)।

राजा एवं राजपुरुषों के समकक्ष पुरुष का अभिवादन पूजावचन 'देवानाप्रिय' (देवानांप्रियस्त्वेति पूजावचनम्—भाष्यकार) शब्द से किया जाता था। प्रथम उच्छ्वास (पृ० ४५) में दधीच को और अष्टम उच्छ्वास (पृ० ४२८) में देव हर्ष को इसी पूजावचन से सम्बोधित किया गया है।

बड़ों और सम्माननीय छोटों को तात शब्द से सबोधित किया जाता था। बाण के चचेरे छोटे भाई ने 'तात बाण'—(तृतीय उच्छ्वास पृ० १४९) कहा है और भैरवाचार्य ने राजा को 'तात' (वही, पृ० १८४) तथा वृद्ध ब्राह्मण गम्भीर ने युवक ग्रहवर्मा को 'तात' कहकर ही सम्बोधित किया है (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २५०)।

राजा अपनी रानी को 'देवि' शब्द से और रानी अपने पति को 'आर्यपुत्र' शब्द से अभिनदित करती थी—(चतुर्थ उच्छ्वास में महाराज ने महारानी यशोमति को 'देवि' और महारानी ने अपने पति को 'आर्यपुत्र' शब्द से सम्बोधित किया है—पृ० २४०–२४१)।

---

१ देव हर्ष ने राजपुत्रों को 'भद्र' शब्द से सबोधित किया है—(पचम उच्छ्वास, पृ० २३७)।

२ यशोमति ने कात्यायनिका को 'आर्ये' कहा है—(वही पृ० २८५)।

राजा का 'देव' शब्द से अभिवादन किया जाता था। राजकुमारो को भी राजपुरुष आदि 'देव' शब्द से ही सम्बोधित करते थे। चामर डुलाने वाले पुरुष ने महाराज प्रभाकरवर्धन की बीमारी की स्थिति कुमार हर्ष पर प्रकट करते समय उन्हें 'देव' सम्बोधित कर धैर्य धारण करने को कहा था—'देव ! धैर्यमवलम्बस्व'—(पचम उच्छ्‌वास, पृ० २७५)। सामन्तराजाओ के पुत्रो को देव हर्ष ने 'भद्र' शब्द से सम्बोधित किया था (भद्रा —पचम उच्छ्‌वास, पृ० २७७–२७८)। प्रतीत होता है कि स्वामीकुल के राजा व कुमार अपने सामन्तो व उनके पुत्रो को अभिवादन में देव के स्थान पर 'भद्र' कहते थे।

राजकुल के निकटस्थ पुरुषों को आदरार्थ 'सखा' (मित्र) सम्बोधित किया जाता था। कुमार हर्ष ने वैद्यकुमार रसायन से पिता की बीमारी के सबध में प्रश्न करते समय उसे 'सखे रसायन' सम्बोधित किया था (वही, पृ० २७६)।

रानियाँ भी अपनी प्रिय परिचारिकाओ को 'सखी' कहती थी। यशोमति ने स्वर्गारोहण (सती होने के) के अवसर पर विदा होते समय अपनी प्रिय परिचारिका मलयवती को 'प्रिय सखी' और अन्य सभी को 'सख्य' (सखियो) सम्बोधित करके कहा था—'क्षन्तव्या प्रणयकलहा' (सहेलियो, प्रेम के कलह को क्षमा करना—पचम उच्छ्‌वास पृ० २८५)।

सखियाँ व परिचारिकाएँ राज्ञी एव सेव्या को 'स्वामिनी' शब्द से सम्बोधित करती थी, और सेवक-राजपुरुष अपने भर्ता को 'स्वामी' शब्द से सम्बोधित करते थे। देव हर्ष के भाई कृष्ण के परिचारक मेखलक ने बाण को पत्र थमाते हुये कहा था कि स्वामी ने यह लेख माननीय आपको भेजा है—

> 'एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेख प्रहित' (द्वितीय उच्छ्‌वास, पृ० ९०)।

विंध्याटवी में एक बौद्ध भिक्षु से राज्यश्री के सन्दर्भ में बात करते हुये साथ की एक प्रौढा कुलीन स्त्री ने उसे अपनी 'मनस्विनी स्वामिनी' कहा था (अष्टम उच्छ्‌वास, पृ० ४३८)।

सामान्य जनो को बडे लोग 'अङ्ग' शब्द से सम्बोधित करते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् शोकविह्वल देव हर्ष जब अपने भाई के लौटने की प्रतीक्षा में थे तो उन्होने राजप्रासाद में दूर से आये एक व्यक्ति से पूछा था—'अङ्ग, कहो क्या आर्य पधार चुके ?'—

> 'अङ्ग ! कथय ! किमार्य प्राप्त ' (षष्ठ उच्छ्‌वास, पृ० ३०८)।

विन्ध्याटवी में निर्घात को भी देव हर्ष ने 'जन्नु' शब्द से सम्बोधित किया था (अष्टम उच्छ्वास, पृ० ४१६)।

बड़े-छोटों के परस्पर अभिवादन व स्नेह प्रदान के प्रकारों को प्रकाशित करते हुये हर्षचरित में कहा गया है कि सम्राट् हर्ष से भेंट करने के पश्चात् जब बाण अपने गांव पहुँचे तो—'बाण ने क्रम से कुछ का अभिवादन किया और कुछ से अभिवादित हुआ किसी ने उसका सिर का चुम्बन लिया (बड़ों ने) और किसी का उसने सिर सूंघा (छोटों का), किसी ने उसका आलिंगन किया (बड़ों ने), और किसी से वह स्वयं गले मिला (छोटों से) कुछ ने आशीर्वाद देकर उस पर अनुग्रह किया, और कुछ को उसने आशीष देकर अनुगृहीत किया—तथा गुरुजनों के बैठने पर नव परिजनों द्वारा लाये आसन पर स्वयं बैठा—

> 'क्रमेण च काश्चिदभिवादयमानः कैश्चिदभिवाद्यमानः, कैश्चिच्छिरसि चुम्ब्यमानः, कांश्चिन्मूर्ध्नि समाजिघ्रन्, कैश्चिदालिङ्ग्यमानः, कांश्चिदालिङ्गन्, अन्यैराशिषानुगृह्यमाणः पराननुगृह्णन् सम्भ्रान्तपरिजनोपनीतं चासनमासीनेषु गुरुषु भेजे—(तृतीय उच्छ्वास, पृ० १४३)।

पिता की मृत्यु के बाद जब राज्यवर्धन हूणों के विरुद्ध अभियान पूरा कर लौटे थे तो उन्होंने दूर से ही अपनी दीर्घ भुजाओं को फैला कर अपने छोटे भाई देव हर्ष को गले लगा उन के वक्ष, कण्ठ, स्कन्ध और कपोल स्पर्श किये थे—

> 'सुदूरप्रसारितेन दीर्घेण दोर्दण्डद्वयेन गृहीत्वा कण्ठे वक्षसि पुनः कण्ठे पुनः स्कन्धयोः पुनः कपोलोदरे निधाय—' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३११–३१२)।

स्वर्गारोहण के लिए सरस्वती तीर जाते समय स्नेहकातर माता यशोमती ने, बाण लिखता है, कुलीनताप्रिय देशकाल के आचार का अभिनन्दन करते हुए पुत्र (देव हर्ष) का आलिंगन कर सिर सूंघा और तब पैदल ही अन्तःपुर से गमन किया था—

> 'अभिनन्दति हि स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम्। देव्यपि यशोमतिः परिष्वज्य समाघ्राय च शिरसि निर्गत्य चरणाभ्यामेव चान्तःपुर—'(पंचम उच्छ्वास, पृ० २९२)।

प्रणाम के प्रकार—हर्षचरित में प्रणाम के प्रकारों का भी उल्लेख है।

सरस्वती और सावित्री की सखी मालती जब दधीच को मिलकर उन के पास पहुँची तो उस ने दूर से ही झुक कर प्रणाम किया था, और दधीच के

अभिवादन के सदेश को शिर पर अजलि टेक नमस्कार करते हुये सूचित किया था—

> 'दुरादेवानतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत । अकथयच्च दधीचसदिष्ट शिरसि निहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्'—(प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६०)।[1]

मालव राजकुमार माधवगुप्त और कुमारगुप्त जब सम्राट प्रभाकरवर्धन से मिले तो दोनो ने उन्हें अपने चारो अगो और शिर से पृथिवी का स्पर्श कर नमस्कार किया था और राजकुमारो का अनुचर नियुक्त किये जाने पर राज्यवर्धन और हर्षवर्धन को मेदिनी की ओर शिर झुकाकर प्रणाम किया था—

> 'चतुर्भिरङ्गैरुत्तमाङ्गेन च गा स्पृशन्तौ नमश्चक्रतु । 'मेदिनीदोलायमानमौलिभ्यामुत्थाय राज्यवर्धनहर्षौ प्रणमेतु'—चतुर्थ उच्छ्वास, पृ०२३८–२३९)।

जामाता ग्रहवर्मा का ताम्बूलदायक पारिजातक जब महाराज प्रभाकरवधन से भेंट करने आया था तो उस ने बाहुओ को पसार कर देर तक पृथिवी पर सिर झुकाकर (प्रणाम कर) और फिर उठकर निवेदन उपस्थित किया था—

> 'प्रसार्य च बाहू वसुन्धराया निधाय मूर्धानमुत्थाय' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २८७)।

गजसेनापति स्कन्दगुप्त जब देव हर्ष से मिलने गया था तो उस ने दूर से ही अपने दोनो कर-कमलो का अवलम्बन लेकर मस्तक से मही (भूमि) का स्पर्श कर प्रणाम किया था—

> दूरादेव चोभयकरकमलावलम्बित स्पृशन्मौलिना महीतल नमस्कारमकरोत् (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३५०)।

प्राग्ज्योतिषेश्वर का दूत जब सम्राट हर्ष से भेंट करने उपस्थित हुआ था तो उसने दूर ही से अपने पाँचो अगो से आँगन या भूमि का आलिंगन करते हुए सम्राट को प्रणाम किया था—

> आरादेव पञ्चाङ्गालिङ्गिताङ्गन प्रणाममकरोत्—(सप्तम उच्छ्वास, पृ० ३८२)।

---

१ ' with hands humbly laid upon her head announced the respectful greeting wherewith Dadhica had charged her—(Hc pp 25–26)

भारतीयों का व्यक्तित्व—ह्वेनसांग ने सामान्य भारतीयों के व्यक्तित्व व चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि सामान्यतया भारतीय-जन यद्यपि शीघ्र कुपित होने वाले और अधीर स्वभाव के होते हैं, लेकिन उन की नैतिकता विशुद्ध है। वे सच्चे और सरल होते हैं। अधर्म से वे कुछ ग्रहण नहीं करते, और दूसरों को दान-प्रदान करने में औचित्य से अधिक उदार हैं। न्याय-नीति के सम्बन्ध में वे चाल नहीं चलते और न्याय-निष्ठ होते हैं। वे दूसरे जन्मों में पाप के प्रतिफलों से डरते हैं (अर्थात् अपने जीवन में पाप-कर्म से डरते हैं ताकि दूसरे जन्मों में उन्हें उस का फल न भोगना पड़े), और संसार की वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं (=माया समझते हैं)। व्यवहार में वे धोखा और छल नहीं करते, अपने वचनों और प्रतिज्ञाओं पर वे दृढ़ रहते हैं।[1]

---

१ 'With respect to the ordinary people, although they are naturally light-minded, yet they are upright and honourable In money matters they are without craft, and in administering justice they are considerate They dread the retribution of another state of existence, and make light of the things of the present world They are not deceitful or treacherous in their conduct, and are faithful in their oaths and promises'—(Records, Beal Vol I p 83)

ह्वेनसांग के इस विवरण को वाटर्स ने थोड़ी भिन्नता के साथ दिया है—'They are of hasty and irresolute tempraments, but of pure principles They will not take anything wrongfully, and they yield more than fairness requires They fear the retribution for sins in other lives, and make light of what conduct produces in this life They do not practice deceit and they keep their sworn obligations'—(Watters, Vol I, p 171)

परिशिष्ट

अभिलेख

यशोधर्मन का मन्दसोर शिलालेख

तिथि वि० स० ५८९

१ सिद्धम् [*।।]

स जयति जगतां पतिः पिनाकी

स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्त-कान्तिः ।

द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती

तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥१॥

स्वयम्भूर्भूतानां स्थिति-लय-(समु*)-

२ त्पत्ति-विधिषु

प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये ।

पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता

स शम्भूर्भूयांसि प्रतिदिशतु भद्राणि भव(ताम्*) ॥२॥

फणा-मणि-गुरुभार(क्रा)-

३ न्ति-दूरावनम्रं

स्थगयति रुचमिन्दोर्म्मण्डलं यस्य मूर्ध्नाम् (।*)

स शिरसि विनिबध्नन्रन्ध्रिणीमस्थिमालां

सृजतु भव-सृजो वः क्लेश-भङ्गं भुजङ्गः ॥३॥

षष्ट्या सहस्रैः सगरात्मजानां

खात[*]

४ स्व-तुल्या स्वमादधानः ।

अस्योदपानाधिपतेश्चिराय

यशांसि पायात्पयसां विधाता ॥४॥

अथ जयति जनेन्द्रः श्री-यशोधर्म्म-नामा

प्रमद-वनमिवान्तः शत्रु-सैन्यं विगाह्य (।*)

व्रा-

५ किसलय-भङ्गैर्यो(ऽ★)ङ्गभूषा विधत्ते
तरुण-तरु-लतावद्वीर-कीर्त्तीर्विनाम्य ॥५॥
आजौ जितो विजयते जगतीम्पुनश्च
श्री विष्णुवर्द्धन नराधिपति स एव।
प्रख्यात औलिकर-लाञ्छन आत्म-
६ वंशो
श
येनोदितोदित-पद गमितो गरीय ॥६॥
प्राचो नृपान्सुबृहतश्च बहूनुदीच
साम्ना युधा च वशगा प्रविधाय येन (।★)
नामापर जगति कान्तमदो दुराप
राजाधिराज-परमे-
७ श्वर इत्युदूढम् ॥७॥
स्निग्ध-श्यामाम्बुदाभे स्थगित दिनकृतो यज्वनामाज्य-धूम्रै-
रम्भोमेघ्य मघोनावधिषु विदधता गाढ-सम्पन्न-सस्या ।
सहर्षाद्वाणिनीना कर-रभस-हृतो-
८ द्यानचूताङ्कुराग्रा
राजन्वन्ती रमन्ते भुज-विजित-भुवा भूरयो येन देशा ॥८॥
यस्यो केतुभिरुन्मद-द्विप-कर-व्याविद्ध-लोध्र-द्रुमै-
रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनि-नदद्विन्ध्याद्रि-रन्ध्रैर्ब्बलै (।★)
वाले-
९ य च्छवि-धूमरेण रजसा मन्दाड सलक्ष्यते
शु
पर्यावृत्त-शिखण्डि-चन्द्रक इव ध्याम रवेमण्डलम् ॥९॥
तस्य प्रभोर्व्वंटकृता नृपाणा
श
पादाश्रयाद्विश्रुत-पुण्य-कीर्ति ।
भृत्य स्व-नैभृत्य जिता-
१० रि-पट
क
आसीद्वसीयान्किल षष्ठिदत्त ॥१०॥
हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्ग-नम्र प्रवाह
शशभृत इव रेवा-वारि-राशि प्रथीयान् (।★)

परमनिगमनीय गुद्धिनानन्दवानो
यत उदितन्मारि-
११ न्मन्दायते नीमानाम् ॥१२॥
ठन्मानुकूल कुन्दान्कल्दा-
त्नुत प्रवृत्तो यगना प्रवृत्ति ।
हरेरिवाट वन्नि वराह
य
वराहदाम यनुग्रहन्ति ॥१२॥
मुहुरिनिर्विपमिन्नुन्न न्दनूल
१२. वराधा
न्दितिमरावभङ्गा न्धेयसीनादवानन् (।*)
गुर्लन्त्रिवरमिवादेम्नन्कुन्न स्वान-भूया
रविरिव रविकीर्ति मुप्रकान्न व्यरत्त ॥१३॥
विप्रता गुप्तनप्रति स्मार्त धर्मोचित सताम् (।*)
य
न वितन्वा-
१३ दिता येन क्नावनि कुर्गनता ॥१४॥
घृत-वीदीनिति-न्वान्दान्दहिर्भुज इवाम्बरान् (।*)
नानुगा तत साव्वी तनमान्नीनतीजनन् ॥१५॥
नावद्दीप इवासौन्दनम शान्यवन्तनु ।
आन्-
१४ न्दन वान्यवानान्दवानामिवोद्धव ॥१६॥
वहुनदनिविविचैघा नह्वरे (ऽ*)न्वर्थनामी
विदुर इव विदूर प्रेक्षया प्रेक्षनाम ।
वचन-रचन-बन्धे सस्कृत-प्राकृते य
कविभिरुदि-
१५ तन्या गीयते गोरमिन्न ॥१७॥
प्रतिदिन-दृगनुगान्त्वा यन्य वौद्धेन वास्ता
न निधि दनु दवीयो वाम्यदृष्ट परिस्थाम् (।*)
पदमुदयि दयालो(ऽ*)न्नुर सम्य चानू-
त्व मदमन्यदत्तो नाम
१६ वि (प्र) न्द्रजानाम् ॥१८॥

विन्ध्यस्यावन्ध्य-कर्म्मा शिखर-तट पतत्पाण्डु-रेवाम्बुराशे-
र्गो-लाङ्गूलै सहेल-प्लुति-नमित-तरो पारियात्रस्य चाद्रे ।
आ सिन्धोरन्तराल निज-शुचि सचिवाढ्या-

१७ सितानेक-देश

राजस्थानीय-वृत्या सुरगुरुरिव यो वर्ण्णिना भूतये(ऽ*)पात् ॥१९॥
विहित सकल-वर्णासङ्कर शान्त डिम्ब
कृत इव कृतमेतद्येन राज्य निराधि ।
स धुरमयमिदानी

१८ दोषकुम्भस्य सूनु-

गुरु वहति तद्वा धर्म्मतो धम्मदोष ॥२०॥
स्व सुखमनभिवाञ्छन्दुर्गमे(ऽ*)ध्वन्यमग्ना
धुरमतिगुरुभारा यो दधद्भर्त्तुरर्थे ।
वहति नृपति-वेष केवल लक्ष्म-मात्र

१९ वलिनमिव विलम्ब कम्बल वाहुलेय ॥२१॥
उपहित हित रक्षामण्डना जाति रत्नै
र्भुज इव पृथुलामस्तस्य दक्ष कनीयान् (।*)
महदिदमुदपान खानयामास बिभ्र-

२० च्छ्रुति हृदय नितान्तानन्दि निर्द्दोष नामा ॥२२॥
सुखाश्रेय च्छाय परिणति-हित-स्वादु-फलद
गजेन्द्रेणारुग्ण द्रुममिव कृतान्तेन वलिना ।
पितुर्य्य प्रोद्दिश्य प्रियमभयदत्त पृ-

२१ थु-धिया

प्रथीयस्तेनेद कुशलमिह कर्म्मोपरचित ॥२३॥
पञ्चसु शतेषु शरदा यातेष्वेकान्ननवति सहितेषु ।
मालव-गण स्थिति वशात्काल ज्ञानाय लिखितेषु ॥२४॥
य-

२२ स्मिन्काले कल मृदु गिरा कोकिलाना प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मर शर निभा प्रोषिताना मनासि ।
भृङ्गालीना ध्वनिरनुवन भार-मन्द्रश्च यस्मि-
न्नाधूत-ज्य धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्प-

२३ केतो ॥२५॥

प्रियतम-कुपिताना कम्पयन्बद्धराग

विकल्पमिव मुग्ध मानस मानिनीना (।*)
उत्पतति नभस्वान्मान-नद्धाय यस्मि-
न्कुसुम-समय-माले तस्य निर्म्मापितो(ऽ*)यम ॥२६॥
२४ यावत्तुङ्गैस्तरङ्गानिरप-समुदय मन्द्र-कान्त स्तङ्गै-
रालिङ्गनिन्दु-विम्ब गुरुभिरिव नर्दे भवियत्ते मुहुत्ताम् (।*)
विभ्रन्मौग्धान्त-लेखा-वलय-परिगति मुञ्चमागमिताय
सन्तु सन्तावदा-
२५ स्थानमूर्त-मन-गन-स्थन्उ-विस्यन्दितान्त ॥२७॥
धीना दक्षो दक्षिण नन्दनो
हीमान्छूरो वृद्धसेवी कृतज्ञ ।
बद्धोत्साह स्वामि-कार्य्येष्वखेदी
निर्द्दोषो(ऽ*)य पातु धर्म्म चिराय ॥२८॥
उत्कीर्णा गोविन्देन ॥

यशोधर्मन का मन्दसोर प्रशस्ति

(तिथि वि० स० ५२५-३५)

१ वेपन्ते यस्य भीम-स्तनित-भय-समुद्भ्रान्त-दैत्या दिगन्ता
शृङ्गाघातै सुमेरोर्व्विघटित-दृषद कन्दरा य करोति ।
उक्षाण त दधान क्षितिधर-तनया-दत्त-(पञ्चाङ्गुल)ङ्क
द्राघिष्ठ शूलपाणे क्षपयतु भवता शत्रु-तेजासि केतु ॥१॥

स

२ आविर्भूतावलेपैरविनय-पटुभिर्ल्लङ्घिताचार-(मा)र्गै-
र्म्मोहादैद-युगीनैरपशुभ-रतिभि पीड्यमाना नरेन्द्रै ।
यस्य क्ष्मा शार्ङ्गपाणेरिव कठिन-धनुर्ज्या किणा(ङ्क)-प्रकोष्ठ( )
बाहु लोकोपकार-व्रत-सफल-परिस्पन्द धीर प्रपन्ना ॥२॥

३ निन्द्याचारेषु यो(ऽ*)स्मिन्विनय मुपि युगे कल्पना मात्र-वृत्या
राजस्वन्येषु पाटस्विव कुसुम बलिर्न्नावभासे प्रयुक्त ।

सु

स श्रेयो धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क-(मान्धा तृ-कल्पे
कल्याणे हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरा भ्राजते यत्र शब्द ॥३॥

४ ये भुक्ता गुप्त-नाथैर्न्न सकल-वसुधाक्कान्ति-दृष्ट प्रतापै-
र्नाज्ञा हूणाधिपाना( ) क्षितिपति-मुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्टा ।
देशास्तान्धन्व शैल-द्रुम गहन सरिद्वीरबाहूपगूढा-
न्वीर्य्यावस्कन राज स्व-गृह-परिसरावज्ञया यो भुनक्ति ॥४॥

५ आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन-गह(नो)पत्यकादा महेन्द्रा-
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिनशिखरिण पश्चिमादा पयोधे ।
सामन्तैर्यस्य बाहु द्रविण हृत-म(दै) पादयोरानमद्भि-
श्चूडा रत्नाशु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमि भागा क्रियन्ते ॥५॥

शु

६ स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणता प्रापित नोत्तमाङ्ग
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्गशब्दाभिमान(म्) ।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन क्लिष्ट-मूर्द्धा
न
(चू)डा पुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्च्चित( ) पादयुग्म ॥६॥
७ (गा*)मेवोन्मातुमूर्द्ध्व विगणितमिव ज्योतिषा चक्रवाल
व
निर्देष्टु मार्गमुच्चैर्द्दिव इव (सु)कृतोपार्ज्जिताया स्वकीर्त्ते ।
तेनाकल्पान्त-कालावधिरवनिभुजा श्री-यशोधर्म्मणाय
स्तम्भ स्तम्भाभिराम स्थिर-भुजपरिघेणोच्छ्रितिं नायितो(S*)त्र ॥७॥
८ (श्ला)घ्ये जन्मास्य वंशे चरितमघहर दृश्यते कान्तमस्मि-
गो
न्धर्म्मस्यायं निकेतश्चलति नियमिता नामुना लोकवृत्तम् (।*)
इत्युत्कर्षं गुणाना लिखितुमिव यशोधर्म्मणश्चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुचिमान्य पृथिव्या विभाति ॥८॥
९ इति तुष्टूषया तस्य नृपते पुण्यकर्म्मण ।
वासुलेनोपरचिता श्लोका कक्कस्य सूनुना ॥९॥
उत्कीर्णा गोविन्देन ॥

हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर शिलालेख

का० इ० इ० भा० ३

भाषा–संस्कृत | प्राप्तिस्थान–ग्वालियर म० प्र०
लिपि–ब्राह्मी छठी सदी | तिथि–शासन काल १५ (छठी सदी)

१ स्वस्ति
(ज★) (य) ति जलद-वल घ्वान्तमुत्सारयन्स्वै
किरण-निवह् जालैर्व्योम विद्योतयद्भि (।)
उ (दय★)-(गिरि)-तटाग्र (★) मण्डयन् यस्तुरगै
चकित गमन खेद-भ्रान्त-चचत्सटान्तै ॥१॥
उदय-(गिरि)-

२ ◡ — —ग्रस्त-चक्रो (ऽ★) ति-हर्त्ता
भुवन-भवन दीप शर्व्वरी-नाश हेतु (।★)
तपित-कनक-वर्ण्णैरंशुभि ‿ पङ्कधान (।★)-
मभिनव-रमणीय यो विधत्ते स वो(★ऽ)व्यात् ॥२॥
श्री तार(माण इ★)ति य प्रथितो

३ (भूचक्र★)प प्रभूत-गुण (।★)
सत्यप्रदान-शौर्य्याद्येन मही न्यायत( ) शास्ता (॥★) ॥३॥
तस्योदित-कुल-कीर्त्तें पुत्रो(ऽ★)तुल्-विक्रम पति पृथ्व्या (।★)
मिहिरकुलेतिख्यातो(ऽ★)भग्नो य पशुपतिम ★ ★ ★ (॥★) ॥४॥

४ (तस्मिन्ना)जनि शासति पृथ्वी पृथु-विमल-लोचने(ऽ★)त्तिहरे (।★)
अभिवर्द्धमान-राज्ये पचदशाब्दे नृप-वृषस्य । (।★) ॥५॥
शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गन्ध-शीतलामोदे (।★)
कार्त्तिक-मासे प्राप्ते गगन-

५ (पतौ★) (नि★)म्मर्ले भाति । (।★) ॥६॥

द्विज-गण-मुख्यैरभिसंस्तुते च पुण्याह-नाद-घोषेण (।★)

तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते शुभगन्त-(दिने) । (।★) ॥७॥

मातृतुल्यस्य तु पौत्र पुत्रस्य तथैव मातृशलस्य (।★)

नाम्ना च मानुवेद पर्व-

६ (त-दुर्गा★) (नु) वाम्बन्द (॥★) ॥८॥

नानाधातु-विचित्रे गोपाह्वय-नाम्नि भूधरे रम्ये (।★)

कान्तिवान्निलमत मासो प्रासाद-वर-मुख्यम् (।★) ॥९॥

पुण्याभिवृद्धिहेतोर्म्मातापित्रोस्तथा मनश्चैव (।★)

वनता (★) च गिरिवरे (उ★) स्मि (न★) गान

७ ★ ★ ★ (पा) दन (॥★) ॥१०॥

ये कारयन्ति भानोश्चन्द्रागु-सम-प्रभ-गृहं-प्रवर (।★)

तेषां वास स्वर्गे यावत्कल्प-क्षयो भवति ॥११॥

तस्या रवेर्विरचित सद्धर्म्म-स्थानम् सुकीर्त्तिमत (।★)

नाम्ना च केशवेतिप्रथितेन च ।

८. ★ ★ ★ (दि?) त्येन (॥★) ॥१२॥

यावच्छर्व-जटा-कलाप-गहने विद्योतते चन्द्रमा

दिव्यस्त्री-चरणैर्विभूषित-तटो यावच्च मेरुर्नग (।★)

यावच्चोरसि नीलनीरद-निभे विष्णुर्बिभर्त्युज्ज्वला

श्रीस्तावद्गिरि-मूर्ध्नि तिष्ठति

(शिला-प्रा★)साद-मुख्यो रवे (॥★) ॥१३॥

आदित्यसेन का अपसद शिलालेख

का० इ० इ० ३

भाष–संस्कृत　　　　　　　　　　　　प्राप्तिस्थान–अवादा, गया

लिपि–कुटिल　　　　　　　　　　　　काल–सातवीं सदी ई० स० ६२७

आसीद्दन्तिमहस्त्रगाढकटको विद्याधराध्यासित ।
सद्वश स्थिर उन्नतो गिरिरिव श्रीकृष्णगुप्तो नृप ॥
दृप्तारातिमदान्धवारणघटाकुम्भस्थली क्षुन्दता ।
यस्यासर्व्वरिपुप्रतापजयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितम् ॥१॥
सकल कलङ्करहित क्षततिमिरस्तोयधे शशाङ्क इव
तस्मादुदपादि सुनो देव श्री हर्षगुप्त इति ॥२॥
यो योग्याकालहेलावनतदृढधनुर्भीमबाणोघपाती ।
मूर्ने स्वस्वामिलक्ष्मीवमनिविमुखैर्निरैरी क्षित साश्रुपातम् ॥
घोराणामाहवाना लिखितमिव जय श्लाघ्यमाविदधानो ।
वक्षस्युद्दामशस्त्रव्रणकठिनकिणग्रन्थिलेखाच्छलेन ॥३॥
श्री जीवितगुप्तोऽभूत्क्षितीशचूडामणि सुतस्य ।
यो दृप्तवैरिनारीमुखनलिनवनैकशिशिरकर ॥४॥
मुक्तामुक्तपय प्रवाहशिशिरात्सूत्तुङ्गतालीवन-
भ्राम्यद्दन्तिकरावलूनकदलीकाण्डासु वेलास्वपि ॥
श्च्योतत्स्फारतुषारनिर्झरपय शीतेऽपि शैले स्थिता-
न्यस्योर्च्चद्विपतो मुमोच न महाघोर प्रतापज्वर ॥५॥
यस्यातिमानुष कर्म दृश्यते विस्मयाज्जनौघेन ।
अद्यापि कोशवर्धननटात्स्वुन पवनजस्येव ॥६॥
प्रख्यातशक्तिमाजिषु पुर सर श्रीकुमारगुप्तमिति ।
अजनयदनेक रा नृपो हर इव शिखिवाहन तनयम् ॥७॥

उन्मर्याद्रावहेलाचलितदलितकावीचिमालाविताम ।
प्रोद्दृप्तलीनमौलिग्रथितगुरुमहामत्तमातङ्गनकः ॥
श्रीम श्रीशानवर्मक्षितिपतिनाशिन सैन्यदुग्धोदसिधु
लक्ष्मीसंप्राप्तिहेतु सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ॥८॥
शौर्यसन्द्रब्रतपरो य प्रयागगतो घने ।
अम्भसीव करीषाग्नौ मग्न स पुष्पपूजित ॥९॥
श्री दामोदरगुप्तोऽभूत्तनय तस्य सूनवे ।
येन दामोदरेणैव दैत्या इव हता द्विप ॥१०॥
यो मौखरे समितिषूद्धतहूणसैन्य
वल्गाघटा विघटयन्नुरुवारणानाम् ॥
सम्मूच्छित सुरवधूर्वरयन्ममेति ।
तत्पाणि पङ्कजसुखस्पर्शाद्विबुद्ध ॥११॥
गुणवद्द्विजकन्याना नानालङ्कारयौवनवतीनाम् ।
परिणायितवान्स नृप शत निसृष्टाग्रहाराणाम् ॥१२॥
श्री महासेनगुप्तोऽभूत्तस्मा द्वीराग्रणी सुत ।
सर्ववीरसमाजेषु लेभे यो धुरि वीरताम् ॥१३॥
श्रीम सुस्थितवर्मयुद्धविजयश्लाघापदाङ्क मुहु ।
यस्याद्यापि विबुद्धकुन्दकुमुदस्रग्गौरहार तम् ॥
लौहित्यस्य तटेषु शीतलतलेषूत्फुल्लनागद्रुम-
च्छायासुप्तविबुद्धसिद्धमिथुनै स्फीत यशो गीयते ॥१४॥
वसुदेवादिव तस्माच्छ्रीरिवनयोमितउचरायुग ।
श्रीमाधवगुप्तोऽभूत्माधव इव विक्रमैकरस ॥१५॥
[illegible] धुरि रणे श्लाघ्यावदातमग्रणी ।
सौजन्यस्य निधानमर्थनिचय यागोद्दुराणा वर ॥
लक्ष्मीस यशरस्वतीकुलगृह धर्मस्य सेतुर्दृढ ।
पृथ्वो नास्ति स भूतले [illegible] सद्गुणै ॥१६॥
चक्र पाणितलेन सौम्यवहतस्यापि शार्ङ्ग धनु ।
नागायामुहृदा सुधार मुहृदा तस्याप्यनिर्नन्दक ॥
प्राप्ते विद्विषता वधे प्रविहित तेनाप [illegible]
[illegible]न्या श्रीमुर्जना ॥१७॥
आज्ञौ मया विनिहिता बलिनो द्विषन्त ।
कृत्य न मेऽन्यपरमित्यवधार्य धीर ॥

श्रीहर्षदेवनिजसङ्गमवाञ्छया च ।
॥१८॥

श्रीमान्बभुव दलितारिकरीन्द्रकुम्भ-
मुक्तारज पटलपामु मण्डलाग्र ॥
आदित्यसेन इति तत्तनय क्षितीश ।
चूडामणिर्द ॥१९॥

मागत मरिध्वसोत्थमात्र यश ।
श्लाघ सर्वधनुष्मता पुर इति श्लाघा परा बिभ्रति ॥
आशीर्वादपरम्पराचिरसक्तद् ॥
यामाम ॥२०॥

आजौ स्वेदच्छलेन ध्वजपटशिखया मार्जनो दानपङ्क ।
खड्ग क्षुण्णेन मुक्ता शकल मिकति ॥
मत्तमातङ्गघात ।
तदगन्धाकृष्टसर्पद्बहलपरिमलभ्रातमत्तालिजालम् ॥२१॥

आबद्धभीमविकटभ्रुकुटीकठोर—
मङ्ग्राम
वबल्लभमृत्यवर्ग-
गोष्ठीपु पेशलतया परिहासशील ॥२२॥

सत्यभर्तृव्रता यस्य मुखोपधानतापनी
परिहास ॥२३॥

ज्ञ सकलरिपुबलध्वमहेतुर्गरीया
निस्त्रिंशोत्खातघातश्रमजनितजडोऽर्पूजितस्वप्रताप ।
युद्धे मत्तेभकुम्भस्थल
श्वेतातपत्रस्थगितवसुमतीमण्डलो लोकपाल ॥२४॥

आजौ मत्तगजेन्द्रकुम्भदलनस्फीतस्फुरद्दोर्युगो
ध्वस्तानेकरिपुप्रभाव यशोमण्डल ।
न्यस्ताशेपनरेन्द्रमौलिचरणस्फारप्रतापानलो
लक्ष्मीवान्समराभिमानविमलप्रख्यातकीर्तिर्नृप ॥२५॥

येनेय शारदिन्दुबिम्बधवला प्रख्याउभूमण्डला
लक्ष्मीमद्गमवाप्तया सुमहती कीर्तिश्चिर कोपिता ।
याता सागरपारमद्भुततमा मापन्नवैरादहो
तेनेद भवनोत्तम क्षितिभुजा विष्णो कृते कारितम् ॥२६॥

दग्धतन्वा महादेव्या श्रीमन्या कारितो मठ ।
धार्मिकेभ्य स्वयं दत्त सुश्लोक हेतवे ॥२७॥
गङ्गेन्दुस्फटिकप्रभानादिमनन्दगम्भु च्छीकर
नक्षत्रान्तिचन्दनरङ्गविन्दुसित ह्रनिनि ।
यत्र सान्तिमनदनुत सुनयना पेशीयमान जनै
स्वर्भैव निननार्भा नरपते श्रीकोप देव्या सर ॥२८॥
यावच्चन्द्रकला हरस्य शिरसि श्री शार्ङ्गिणो वर्तते
ब्रह्माब्दे च सरस्वती कृत . ।
नौरि सुन्दराविस्य च तटिद्यावद् घनस्योदरे
तावत्कीर्तिनिहाटनीति धवलमाविभ्यमेनो नृप ॥२९॥
नृप्त जिवेन गौडेन प्रशस्तिर्विकटाक्षरा ।
.... निता सम्यक् धार्मिके सुरीमिता ॥३०॥

मौखरि राजा ईशानवर्मन का हरहा शिलालेख

ए० इ० भा० १४ स० ५

भाषा–संस्कृत | प्राप्तिस्थान–हरहा (बाराबंकी) उ० प्र०

लिपि–छठीं सदी की गुप्त लिपि | तिथि–वि० स० ६११ (५५४ ई०)

१ लोकाविष्कृतिसंश्रयस्थितिकृता यः कारणं वेधसाम, ध्वस्तध्वान्तचया परास्त-
रजसो ध्यायन्ति यं योगिनः । यस्यार्द्धस्थितयोषितोपि हृदये नास्थायि
चेतोभुवा भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स

२ जयति श्रेयः प्रसूतिर्भवः ॥ (१) आगोणा फणिनः फणोपलरुचा
सैह्वी वसानं त्वचं, शुभ्रा लोचनजन्मना कपिशयड्भाषा कपालावलीम् (।)
तन्वी ध्वान्तनुदः मृगाकृतिभृतो बिभ्रत्कला मौलिना दिश्यादन्य-

३ कविद्विषः स्फुरदहि स्थेयं पदं वो वपुः ॥ (२) सुमनान लेभे नृपोत्वपतिर्व्वै-
वस्वताद्यद्गुणेदितम् । तत्प्रसूता दुरितवृत्तिरुधो मुखरा क्षितीशा क्षतारयः ॥
(३) तेष्वादौ हरिवर्म्मणोवनिभुजो भूतिर्भु-

४ वो भूतये (।)
रक्षाशेषदिगन्तरालयशसा रणारिमपत्तिषा । सङ्ग्रामं हुतभुक्प्रभाक्पिशित
वक्त्रं समीक्ष्यारिभिर्यो भीतैः प्रणतास्ततश्च भुवने ज्वालामुखाग्यागतः (४)
लोकस्थितीना स्थितये स्थि-

५ तस्य मनोऽजाचारविवेकमार्गे। जगाहिरे यस्य जगन्ति रम्या सत्कीर्त्तयः
कीर्त्तयितः व्यनाम्नः (५)
तस्मात्पयोधेरिव शीतरश्मिरादित्यवर्म्मा नृपतिर्ब्बभूव । वर्त्ताश्रमाचारविधि-
प्रणीते य प्राप्य

६ मापन्यमियाय धाता ॥ (६)

हुतभुजि मवनम्यानङ्गिनि ध्वान्तनीलम्
वियति पवनजन्मभ्रान्तिविजेभनूय ।
मुनरयति समन्तात्प्रतद्धूमजालम्
गिरिकुल्भुग्मेनागङ्कि यस्य

७ प्रमक्तम् ॥ (७)

तेनापीश्वरवर्म्मण निशितते क्षनवनावान्वये (।) जन्माकारि कृता नन कस्तुगउत्थाहृतवृत्तद्विष । यस्योन्मादकरिम्बनावचरितस्याचारमार्गानुगा यन्नेनापि मयाति-

८ तुम्पदमो नान्येनुगन्तु क्षमा (८)

नीचा शौर्य विशाल मुहृदमकुशलेनोमेन्छात्कुलेन न्याग पात्रेण विलसमवनपि हृया यौवन सयमेन । वाच मयेन चेष्टा श्रुतिपथविदिना प्रश्रये-

९ णोतमद्धिम

यो वन्न नैव खेद व्रजति कलिगनन्वान्तमन्नेपि लोके (९) यस्येत्मान्वनिश यथाविधि हुतज्योतिर्ज्वलज्जनना . मेनान्धनमहुमेश्वरग्चा दिक्चक्र-वाले तते । आवता नव-

१० वारिमार्गविनम्मेरावली प्रावृटि-

त्युन्मादोद्धतचेतन शिखिगा वाचान्तामावु ॥१०॥

तस्मान्पूर्व्वं दवोदनाद्रिशिरसोमानुर्म्मन्वानिव क्षीरोदादिव तज्जिहेन्दुकिरण कान्तमन कौस्तुभ (।)

११. नुतनामुदपद्यत स्थितकर स्येष्ठ महिम्न पदम्, राजनाजकमण्डलाम्बरमणी श्रीगानवर्म्मा नृप ॥११॥ लोकानामुनकारिणारिकुमुदन्यानुन्दकान्तिश्रिया (।) नितान्याम्बुरहाकरद्युतिहृता भूरि-

१२ प्रतापत्विषा ॥

येनाच्छादितसत्पथ कलियुगध्वान्तावनम्नञ्जगत्सूर्येणेव समुद्यता कृतमिद नूय प्रवृत्तक्रियम् ॥ (१२) जित्वा आन्ध्रपतिं सहस्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणम् व्यावल्गन्नियुताति-

१३ संख्यतुरगान्भङ्क्त्वा रणे शूलिकाम् (।) कृत्वा चायतिमौचितस्थलभुवो गौडान्स-मुद्राश्रयानध्यासिष्ट नतक्षितीश्वरचरण सिंहासन यो जिती ॥१३॥ प्रस्थानेषु बलास्फालनविगमनक्षोभस्फुटद्भूतल-

१४ प्रोद्भूतस्यगिताकर्कमण्डलरुचा दिव्यायिता रेणुना । यस्यामूद्दिनादिमन्द-

विरतौ लोकेऽन्धकारीकृते (।) व्यथित नाडिकयैव यान्ति जयिनो यामास्त्रिया-
मास्विव ॥१४॥
प्रविशती कलिमारतघट्टिता

१५ क्षितिरलक्ष्यरसातलवारिधौ ।
गुणशतैरववध्य समन्तत
स्फुटितनौरिव येन वलाद्धृता ॥१५॥
ज्याघातव्रणरूढिकर्क्कशभुजा व्याकृष्टशार्ङ्गच्युता-
न्यस्यावाप्य पतत्रिणो रणमखे प्राणतमुज्झ

१६ न्द्विप ।
यस्मिन्शासति च क्षिति क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी (।)
तेन ध्वस्तकलिप्रवृत्तितिमिरा श्रीसूर्यवर्म्मार्जान ॥१६॥
यो बालेन्दुकमान्ति कृत्स्नभुवनप्रेयो दधद्यौवनम्, शान्त शास्त्रविचारणा-

१७ हितमना पारङ्कलनाङ्गत ।
लक्ष्मीकीर्तिसरस्वतीप्रभृतयो य स्पर्धयेवाश्रिता, लोके कामितकामिभावरसिक
कान्ताजनो भूयसा ॥१७॥
मद्वृत्तेन वलात्कलेरवनतिस्तावत्प्रवृद्धात्मनो

१८ वाणै स्तावदवस्थित स्मृतिभुव कान्ताशरीरक्षतौ (।)
लक्ष्म्या तावदकाण्डभगजभय त्यक्तम्परापाश्रयम् (।)
यावन्नाधिरकारि यस्य जनताकान्त वपुर्व्वेधसा ॥१८॥
लक्ष्य शनुभुव कुचग्रहभयाविशभ्रम

१९ ल्लोचना (।)
येनाकृष्य भुजेन विस्फुरदमिज्योति कलासगिना ।
कान्ता मन्मथिनेव कामितविदा गाढ निपीड्योरसा
प्रायेणान्यमनुष्यसश्रयकृत भाव परित्याजिता ॥१९॥
तेनानतोन्नितिकृता

२० मृगयागतेन
दृष्ट्वायमन्धकभिदो भवन विशीर्णम् (।)
स्वेच्छाममु नदमकारि ललाम भूमे
क्षेमेश्वरप्रथितनाम शशाङ्कशुभ्रम् ॥२०॥
एकादशातिरिक्तेषु षट शातितविद्विषि ।

२१ शतेषु शरदा पत्यौ भुव श्रीशानवर्म्मणि ॥२१॥

यस्मिन्कालेम्बुवाहा नवगवजग्च प्रान्तलग्नैद्रचापा-
रवन्त्यागाविवान स्फुरदुग्तडित मान्द्रधीर ववान्त ।
वाताश्च वान्ति नीपान्नवकुसुमचयानम्रमूर्ध्नो

२२ धुनाना-
स्तस्मिन्मुक्ताम्बुमेघद्युति भवनमदो निर्मित शूल्पाणे ॥२२॥
कुमारशान्ते पुत्रेण गर्गराक्टवासिना ।
नृपानुरागात्पूर्व्वं यमकारि रविशान्तिता ॥२३॥
उत्कीर्णा मिहिरवर्म्मणा ॥

मौखरि अवन्ति वर्मन का नालदा मुद्रालेख

(संस्कृत)

चतुस्समुद्रातिक्रान्त कीर्ति प्रतापानुरागोप
(नतान्य राजा) वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत्त
चक्रश्चक्रधर इव प्रजानामर्तिहर श्री महाराज
हरिवर्मा तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोजय
स्वामिनी भट्टारिका देव्यामुत्पन्न श्री महाराज
आदित्यवर्मा तस्य पुत्रस्तत पादानुध्यातो हर्षगुप्त
भट्टारिका देव्यामुत्पन्न श्री महाराजेश्वर वर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोपगुप्ता भट्टारिका
देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री ईशानवर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातो
लक्ष्मीवती भट्टारिका महादेव्यामुत्पन्नो
महाराजाधिराज श्री सर्ववर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यात इन्द्रभट्टारिका
महादेव्यामुत्पन्न परम माहेश्वरो
महाराजाधिराज श्री अवन्ति वर्मा मौखरि ।

वर्धन सम्राट् हर्ष का बासखेड़ा ताम्रपत्रलेख

ए० इ० भा० ४

भाषा—संस्कृत	प्राप्ति स्थान—बासखेड़ा शाहजहानपुर, उ० प्र०
लिपि—ब्राह्मी छठी सदी	तिथि—(हर्ष सम्वत् २२=६२८ ई०)

ओं स्वस्ति । महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात्श्रीवर्धमानकोट्या महाराजश्रीनर-वर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराज श्रीराज्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराज श्रीमदादित्यवर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात श्रीमहासेनगुप्ता देव्यामुत्पन्नश्च-तुस्समुद्रातिक्रान्तकीर्ति प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथइव प्रजानामार्तिहर परमादित्यभक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकर वर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात सितयश प्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डल परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजा सत्पथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसम्प्री-णितार्थिहृदयातिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्न परमसौगत सुगत इव परहितैकरत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीराज्यवर्धन ।

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादय
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखा सर्वे समं संयता ।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधा कृत्वा प्रजाना प्रिय
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन य ॥२॥

तस्यानुजस्तत्पादानुध्यात परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परम-भट्टारक महाराजाधिराजश्रीहर्ष अहिच्छत्राभुक्तौ वङ्गदीयवैषयिकपश्चिमपथकसम्बद्ध-मर्कटसागरे समुपगतान्महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिक प्रमातार राजस्थानीय कुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन्प्रतिवासिजानपदांश्च समाज्ञापयति—

विदितमस्तु यथायमुपरिलिखितग्राम स्वसीमापर्यन्त सोद्रङ्ग सर्वराजकुला-भाव्यप्रत्यायसमेत सर्वपरिहृतपरिहारो विषयादुद्धृतपिण्ड पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षिति-समकालीनो भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितु परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्धनदेवस्य मातुभट्टारिकामहादेवी राज्ञी श्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृ परम भट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेव पादाना च पुण्ययशोभिवृद्धये भारद्वाज-सगोत्रबह्वृचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवाल चन्द्रभद्रस्वामिभ्या प्रतिग्रहधर्मणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितो विदित्वाभवद्भि, समनुमन्तव्य प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोग करहिरण्यादिप्रत्याया स्तयोरेवोपनेया सेवोपस्थान च करणीयमित्यपि च ।

अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भि—

रन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।

लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया

दात फल परयश परिपालन च ॥१॥

कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्य प्राणिभिर्हितम् ।

हर्षेणैतत्समाख्यात धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥२२॥

दूतकोऽत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्त महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत-महासामन्तमहाराजभानुसमादेशादुत्कीर्णमीश्वरेणेदमिति । संवत् २०२ कार्तिक वदि १ । स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य ।

मधुबन का ताम्रलेख

हर्ष—सम्वत् २५

१ ॐ स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात् कपित्थिकाया महाराजश्रीनरवर्द्धन-
स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराज-
श्रीराज्यवर्द्धन—

२ स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्न परमादित्यभक्तो महाराज
श्रीमदादित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीमहा—

३ सेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्रान्तकीर्ति प्रतापानुरागोपनतान्यराजो
वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहर —

४ परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीप्रभाकरवर्द्धनस्तस्य
पुत्रस्तत्पादानुध्यातस्सितयशःप्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डल परिगृहीत—

५ धनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजास्सत्पथोपार्ज्जितानेकद्रविण भूमिप्रदा सम-
प्रीणितार्थिहृदयोऽतिशयिति पूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्याम्—

६ श्रीयशोमत्यामुत्पन्न परमसौगतस्सुगतइव परहितैकरत परमभट्टारक-
महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धन । राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्ता—

७. दय कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्वे सम संयत । उत्खाय द्विषतो विजित्य
वसुधाङ्कृत्वा प्रजाना प्रिय प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन य ।
तस्यानुज—

८ स्तत्पादानुध्यात परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारक
महाराजाधिराजश्रीहर्ष श्रावस्तिभुक्तौ कुण्डधानिवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे—

९. समुपगतान् महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमारामा-
त्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन् प्रतिवासिजानपदाश्च समा—

१० ज्ञापयति अस्तु व सम्विदितमयम् सोमकुण्डका ग्रामो ब्राह्मणवामरथ्येन
कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनम् भङ्क्त्वा तस्मादाक्षिप्य च
स्वसीमा—

११ पर्यन्त मोद्रङ्गस्सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतस्सर्व्वपरिहृतपरिहारो विषया-
दुद्धृतपिण्ड पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षितिसमकालीनो—
१२ भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितु परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धन-
देवस्य मातुभट्टारिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्या—
१३ ज्येष्ठ भ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानञ्च पुण्ययशो-
भिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोग सब्रह्मचारिभट्टवातस्वामि—
१४ विष्णुवृद्धसगोत्रबह्वृचसब्रह्मचारिभट्टशिवदेवस्वामिभ्याम् प्रतिग्रहधर्मण ग्रहार-
त्वेन प्रतिपादितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्य प्रति—
१५ वासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोगकर हिरण्-
यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोपस्थानञ्च करणीयमित्य—
१६ पिच अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् लक्ष्म्या-
स्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया दान फल परयश परिपालनञ्च कर्मणा—
१७ मनसा वाचा कर्तव्य प्राणीभिर्हित हर्षेणैतत्समाख्यातन्धर्म्मार्जनमनुत्तमम्
दूतकोत्र महाप्रमातारमहासामतश्रीस्कन्दगुप्त महाक्षपटलाधिकरणाधि—
१८ कृत सामतमहाराजेश्वरगुप्तसमादेशच्चोत्कीर्णम्-गर्ज्जरेण सम्वत् २५ मार्ग-
शीर्ष वदि ६ ।

शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र

ए० ई० भा० ६ पृ० १४४

भाषा–संस्कृत — प्राप्ति स्थान–गंजाम, आ० प्र०

लिपि–ब्राह्मी (नुकीला सिरेवाला) — तिथि–गु० स० ३००=६१९ ई०

१. ओं स्वस्ति । चतुरुदधिसलिलवीचीमेखलानिलीनायां सद्वीपा—
२ नगरपत्तनवत्यां वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रय वर्त्तमाने
३ महाराजाधिराजश्रीशशाङ्क राज्ये शासति गगनतल—
४ विनि (*) सृतभगीरथावतारितासा हिमवद्गिरेरुपरि
५ पतना (द*) नेक शिलासंघातविभिन्नवहि‿पातालान्तर्ज्जलौघैं
६ सुरसरित इव विविधतरुवरकुसुमसञ्छन्नोभयतटा—
७ स्त्वविनिपतितजलाशयाया स (ा) लिमासरित कुल्य (प) कम्पा
८ द्विजपक्षोह्नेदात्महाराजमहासामन्त श्रीमाधवराजस्य प्रियतनयो
९ महाराज (ा) यशोभीतस्यापि प्रियसूनु स्वगुण (म) रीचिनिकर—
१० प्रबोधितशिलोद्भवकुलकमलो विकोशनीलोत्पल—
११ प्रतिस्पर्द्धि (नौ) खड्गधारानिशितनिरोपप्रनिहतरिपु
१२ बलो दीनानाथकृपणावनीपकोपभुज्यमानविभव स्वसु—
१३ जयरिपुयुगलोपार्ज्जितनृपश्री (*) कमलविमलयशर—
१४ तनुर्ज्जगत्य (प्र*) ल्पराजसुतशौर्य्यैर्गुणान्वितो महावृषभपर्यङ्क
१५ ककुभोग्रयानविन्यस्तवाहोर्व्वीश्चन्द्रोद्योतितजटाकलापैकदे—
१६ शस्य भगवतस्त्रिभुवनोत्पत्तिप्रलयसृष्टिसंहारकारणस्य
१७ नृभुवनगुरो‿पादभक्त परमब्रह्मण्यो महाराजमहासा—
१८ मन्तश्रीमाधवराज कुशली कृष्णगिरि विषयसंबद्धच्छवल—
१९ क्षयग्रामे वर्त्तमानभविष्यत्कुमारामात्यो—परिकरदायुक्तकानन्यांश्च

२० यथार्हं पूजयति मानयति च (।*)
विदितमस्तु भवतामय ग्रामो—
२१ स्वामिरर्द्धेन मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये सलिलधारापुर—
२२ स्सरेणाचन्द्रार्क्कसमकालीनाक्षयनीवे भरद्वाजसगोत्रावाह्वृ—
२३ स्सवार्हम्न भवनराय छन्दस्वामिने सूर्य्योपरागे प्रतिपादित ( )
२४ तन्मद्व स्मृतिशास्त्रे । बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभि
२५ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तदा फलं ॥ षष्टिं वर्षसहस्रा—
२६ णि स्वर्गे मोदति भूमिदः (।*) आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके
२७ वसे (त्) ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरा (म् ।) स विष्ठायां
२८ (कृमि) र्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ॥ मा भूदफलशङ्का व ( ) परदत्ते—
२९ ति पार्थिव । स्वदानात् फलमानन्त्य
३० परदत्तानु पालने
३१ प्रयन्ति

पुलकेशी द्वितीय का अयहोल लेख

ए० इ० भा० ६ पृ० ३

भाषा-संस्कृत लिपि-दक्षिण भारतीय ब्राह्मनुमा

प्राप्ति-स्थान-बीजापुर (मैसूर)
तिथि-श-श० ५५६-६३६ ई०

जयति भगवाञ्जिनेन्द्रो वीतजरामरणजन्मनो यस्य ।
ज्ञानसमुद्रान्तर्गतमखिलं जगदन्तरीपमिव ॥१॥
तदनु चिरमपरिमेयश्चलुक्यकुलविपुलजलनिधिर्जयति ।
पृथिवीमौलिललाम्नां यः प्रभवः पुरुषरत्नानाम् ॥२॥
शूरे विदुषि च विभजन्दानं मानं च युगपदेकत्र ।
अविहितयाथासंख्यो जयति च सत्याश्रयः सुचिरम् ॥३॥
पृथिवीवल्लभशब्दो येषामन्वर्थतां चिरं यातः ।
तद्वंशेषु जिगीषुषु तेषु बहुष्वप्यतीतेषु ॥४॥
नानाहेतिशताभिघातपतितभ्रान्ताश्वपत्तिद्विपे
नृत्यद्भीमकबन्धखड्गकिरणज्वालासहस्रे रणे ।
लक्ष्मीर्भावितचापलापि च कृता शौर्येण येनात्मसा—
द्राजासीज्जयसिंहवल्लभ इति ख्यातश्चलुक्यान्वयः ॥५॥
तदात्मजोऽभूद्रणरागनामा
दिव्यानुभावो जगदेकनाथः ।
अमानुषत्वं किल यस्य लोकः
सुप्तस्य जानाति वपुः प्रकर्षात् ॥६॥
तस्याभवत्तनूजः पोलेकेशी यः श्रितेन्दुकान्तिरपि ।
श्रीवल्लभोऽप्ययासीद्वातापिपुरीवधूवरताम् ॥७॥

यस्त्रिवर्गपदवीमल क्षितौ
नानुगन्तुमधुनापि राजकम्।
भूरवं येन हयमेधयाजिना
प्रापितावभृथवञ्जन बभौ ॥८॥
नलमौर्यकदम्बकालरात्रि-—
स्तनस्तस्य बभूव कीर्तिवर्मा।
परदारनिवृत्तचित्तवृत्ते-—
रपि धीर्यस्य रिपुश्रियानुकृष्टा ॥९॥
रणपराक्रमलब्धजयश्रिया
सपदि येन विरुग्णमशेषत ।
नृपतिगन्धगजेन महौजसा
पृथुकदम्बकदम्बकदम्बकम् ॥१०॥
तस्मिन्सुरेश्वरविभूतिगताभिलाषे
राजाभवत्तदनुज किल मङ्गलेश ।
य पूर्वपश्चिमसमुद्रतटोषिताश्व—
सेनारज पटविनिर्मितदिग्वितान ॥११॥
स्फुरन्मयूखैरसिदीपिकाशतै-—
र्व्युदस्य मातङ्गतमिस्रसञ्चयम्।
अवाप्तवान्यो रणरङ्गमन्दिरे
कटच्छुरि श्रीललनापरिग्रहम् ॥१२॥
पुनरपिच जघृक्षोर्सैन्यमाक्रान्तसाल
रुचिरबहुपताक रेवतीद्वीपमाशु।
सपदि महदुदन्वत्तोयसक्रान्तबिम्बं
वरुणबलमिवाभूदागत यस्य वाचा ॥१३॥
तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभावे
लक्ष्म्या किलाभिलषिते पुलिकेशी नाम्नि।
सासूयमात्मनि भवन्तमत पितृव्य
ज्ञात्वापरुद्धचरितव्यवसायबुद्धौ ॥१४॥
स यदुपचितमन्त्रोत्साहशक्तिप्रयोग—
क्षपितबलविशेषो मङ्गलेश समन्तात्।
स्वतनयगतराज्यारम्भयत्नेन सार्द्धं
निजमतनु च राज्य जीवित चोज्झति स्म ॥१५॥

तावत्तच्छत्रभङ्गे जगदखिलमरात्यन्धकारोपरुद्धं
यस्यासह्यप्रतापद्युतिततिभिरिवाक्रान्तमासीत्प्रभातम् ।
नृत्यद्विद्युत्पताकैः प्रजविनि मरुति क्षुण्णपर्यन्तभागै-
र्गर्जद्भिर्वारिवाहैरलिकुलमलिनं व्योम यातं कदा वा ॥१६॥
लब्ध्वा कालं भुवमुपगते जेतुमाप्यायिकाख्ये
गोविन्दे च द्विरदनिकरैरुत्तराम्भोधिरथ्याः ।
यस्यानीकैर्युधि भयरसज्ञत्वमेकः प्रयात-
स्तत्रावाप्तं फलमुपकृतस्यापरेणापि सद्यः ॥१७॥
वरदातुङ्गतरङ्गरङ्गविलसद्धंसावलीमेखलां
वनवासीमवमृद्नतः सुरपुरप्रस्पर्धिनीं सम्पदा ।
महता यस्य बलार्णवेन परितः संछादितोर्वीतलं
स्थलदुर्गं जलदुर्गतामिव गतं तत्तत्क्षणे पश्यताम् ॥१८॥
गङ्गालुपेन्द्रा व्यसनानि सप्त
हित्वा पुरोपार्जितसम्पदोऽपि ।
यस्यानुभावोपनताः सदास—
न्नासन्नसेवामृतपानशौण्डाः ॥१९॥
कोङ्कणेषु यदादिष्टचण्डदण्डाम्बुवीचिभिः
उदस्तास्तरसा मौर्यपल्वलाम्बुसमृद्धयः ॥२०॥
अपरजलधेर्लक्ष्मीं यस्मिन्पुरीं पुरभित्प्रभे
मदगजघटाकारैर्नावां शतैरवमृद्नति ।
जलदपटलानीकाकीर्णं नवोत्पलमेचकं
जलनिधिरिव व्योम व्योम्नः समभवदम्बुधिः ॥२१॥
प्रतापोपनता यस्य लाटमालवगुर्जराः ।
दण्डोपनतसामन्तचर्यावर्या इवाभवन् ॥२२॥
अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्तसेना—
मुकुटमणिमयूखाक्रान्तपादारविन्दः ॥
युधि पतितगजेन्द्रानीकबीभत्सभूतो
भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः ॥२३॥
भुवमुरुभिरनीकैः शासतो यस्य रेवा—
विविधपुलिनशोभावन्ध्यविन्ध्योपकण्ठा ।
अधिकतरमराजत्स्वेन तेजोमहिम्ना
शिखरिभिरिभवर्ज्यो वर्ष्मणां स्पर्धयेव ॥२४॥

विधिवदुपचिताभिः शक्तिभिः शक्रकल्प—
स्तिसृभिरपि गुणौघैः स्वैश्च माहाकुलाद्यैः ।
अगमदधिपतित्वं यो महाराष्ट्रकाणां
नवनवतिसहस्रग्रामभाजां त्रयाणाम् ॥२५॥
गृहिणां स्वगुणैस्त्रिवर्गतुङ्गा
विहितान्यक्षितिपालमानभङ्गा ।
अभवन्नुपजातभीतिलिङ्गा
यदनीकेन सकोसला कलिङ्गा ॥२६॥
पिष्टं पिष्टपुरं येन जातं दुर्गमदुर्गमम् ।
चित्रं यस्य कलेर्वृत्तं जातं दुर्गमदुर्गमम् ॥२७॥
सन्नद्धवारणघटास्थगितान्तरालं
नानायुधक्षतनरक्षतजाङ्गरागम् ।
आसीज्जलं यदवमर्दितमभ्रगर्भं
कौनालमम्बरमिवोर्जितसान्ध्यरागम् ॥२८॥
उद्धूतामलचामरध्वजशतच्छत्रान्धकारैर्बलैः
शौर्योत्साहरसोद्धतारिमथनैर्मौलादिभिः षड्विधैः ।
आक्रान्तात्मबलोन्नतिं बलरजःसञ्छन्नकाञ्चीपुर—
प्राकारान्तरितप्रतापमकरोद्यः पल्लवानां पतिम् ॥२९॥
कावेरी द्रुतशफरीविलोलनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य यस्य ।
प्रश्च्योतन्मदगजसेतुरुद्धनीरा
संस्पर्शं परिहरति स्म रत्नराशेः ॥३०॥
चोलकेरलपाण्ड्यानां योऽभूत्तत्र महर्द्धये ।
पल्लवानीकनीहारतुहिनेतरदीधितिः ॥३१॥
उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिसहिते यस्मिन्समस्ता दिशो
जित्वा भूमिपतीन्विसृज्य महितानाराध्य देवद्विजान् ।
वातापीं नगरीं प्रविश्य नगरीमेकामिवोर्वीमिमां
चञ्चन्नीरधिनीलनीरपरिखां सत्याश्रये शासति ॥३२॥
त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥३३॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥३४॥

तस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम् ।
शैलं जिनेन्द्रभवनं भवनं महिम्ना
निर्मापितं मतिमता रविकीर्त्तिनेदम् ॥३५॥
प्रशस्तेर्वसतेश्चास्या जिनस्य त्रिजगद्गुरो ।
कर्ता कारयिता चापि रविकीर्त्तिः कृती स्वयम् ॥३६॥
येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रित—
कालीदासभारविकीर्त्तिः ॥३७॥

सदर्भ ग्रथ आदि

मन्जुश्री मूलकल्प
The Imperial History of India Dr K P Jayaswal
Catalogue of The Coins of The Gupta Dynasties
Dr John Allen
Political History of Ancient India , Sixth Edition
Dr H Raychaudhari
हर्षचरित, सम्पादित प० जगन्नाथ पाठक
Harsacharita Trans Thomes & Cowell
History of Ancient India Dr R S Tripathi
Patanjali's Mahabhasya Keilhorn
कौटिल्य अर्थशास्त्र
Kautilya Arthasastra R Shamshastri
महाभारत
The Kaveri, The Maukhari and the Sangam Age
History of North-West India Dr R G Basak
History of Kanauj Dr R S Tripathi
Kadambari Peter Peterson
Harsh Dr Radhakumud Mukerji
The Early History of India V Smith III edition
On Yuan Chwang's Travels Thomas Watters
Records of the Western World S Beal
The Life of Hieuen Tsang S Beal
Vasavadatta Dr Hal
Gaudarajmala R P Chanda

Early History of Bengal Dr R C Majumdar
Harsh : Dr Panikkar
Alberuni Dr Sachau
The Sanskrit Drama Dr Keith
Harshavardhana Ettinghausen
An Advanced History of India , Edited R C Majumdar etc
Dynasties of the Kanarese District Dr Fleet
History of Medieval Hindu India C V Vaidya
Ancient History of the Deccan Prof S Dubreuil
Ancient Geography of India G Cunningham
भारतीय इतिहास की भूमिका डा० राजबली पाण्डेय
The Deeds of Harsha Prof Dr V S Agarwala,
मौर्यसाम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास म० प्र० पावगी
The Age of the Imperial Guptas Dr R D Banerji
मनुस्मृति
I Tsing Takakusu
Coulumbia University Indo-Iranian Series.
Gaekwad's Oriental Series.
Prasana Raghava ed Pranjpe and Panse
हर्षवर्धन गौरीशंकर चटर्जी
Subhasitaratna bhandagara
Classical Sanskrit Literature, Dr Keith
The Sanskrita Poems of Mayura Quackenbos
Theism In Medeival India Dr Carpenter
The Folk Elements In Hindu Culture F K Sarkar
An Early History of Kausambi N N Ghosh
The Travels of Fa-Hien James Legge
Mahavamsa Geiger
Cambridge History of India, Vol I
विष्णुपुराण
Vishnu Purana ed. Prof Wilson
Cave Temples Fergusson and Burgess

*मुद्राराक्षस (नाटक)
Intercourse Between India and The Western World
Rawlinson
The Age of Imperial unity
Through Asia Dr Sven Hedin.
Pre-Aryan and Pre-Dravidian In India P Bagchi

Magzine & Journals

Slect Inscriptions Dr P. C Sarkar,
C I I Vol III Dr Fleet
J R A S (Journal of Royal Asiatic Society)
Ep Ind (Epigraphia India)
Arch Sur Ind. Rep (Archaeological Survey of India Report)
I A (Indian Antiquary)
I H. Q (Indian Historical Quarterly)
Quarterly Oriental Magzine
J B O R. S (Journal of Bihar & Orissa Royal Society)